ISSN.2347-6648

हिंदी-विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़

परिशोध

अंक 67, वर्ष 2021-2022

मुख्य संपादक
बैजनाथ प्रसाद

संपादक
अशोक कुमार

परामर्श मंडल

- प्रोफेसर संतोश कुमारी शर्मा,
  पूर्व अध्यक्ष, पत्राचार विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़
- प्रोफेसर चमन लाल गुप्त,
  पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला
- प्रोफेसर संजीव कुमार,
  पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी–विभाग, महर्शि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

संपादक मंडल

1. प्रो॰ नीरजा सूद
2. प्रो॰ अशोक कुमार
3. डॉ॰ गुरमीत सिंह

मुख्य संपादक

बैजनाथ प्रसाद
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिन्दी–विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

संपादक

अशोक कुमार
प्रोफेसर हिन्दी–विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

मूल्य : पाँच सौ रुपये

पत्रिका के लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनसे संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं है।

कार्यालय :
हिन्दी–विभाग,पंजाब विश्वविद्यालय
आर्ट्स ब्लॉक–2, सेक्टर–14, चंडीगढ–160014
दूरभाशः 0172–2534616
ईमेल–parishodh@pu.ac.in
वैबसाइट–http://parishodh.puchd.ac.in

परिशोध

ISSN 2347-6648

अंक 67, वर्ष 2021–22

हिन्दी – विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय
चण्डीगढ़

मुख्य संपादक
बैजनाथ प्रसाद

संपादक
अशोक कुमार

विषयानुक्रम

शीर्षक		लेखक	पृष्ठ क्रमांक
मुख्य संपादक की कलम से	:	बैजनाथ प्रसाद	
संपादक की कलम से	:	अशोक कुमार	
'परेश' काव्य और राष्ट्रीय चेतना	:	अंजू बाला	
राधेश्याम शुक्ल के काव्य में राष्ट्रीय चेतना	:	अनुपमा	11
राष्ट्रीय चेतना	:	भूमिका	22
राहुल सांकृत्यायन के उपन्यास 'जीने के लिए' में राष्ट्रीय चेतना के स्वर	:	गुरप्रीत कौर	27
दशम् ग्रंथ : राष्ट्रीय चेतना का अजस्र स्रोत	:	हरीश कुमार सेठी	34
राष्ट्रीयता की सशक्त अभिव्यक्ति : भारत–भारती	:	कुलभूषण शर्मा	53
दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय चेतना की अमृतधारा	:	कुलविंदर कौर	61
राष्ट्रीय चिंतन के परिप्रेक्ष्य में पं. सोहनलाल द्विवेदी का काव्य	:	मधु कुमारी	72
देश प्रेम और राष्ट्रीय चेतना की कवयित्री : सुभद्रा कुमारी चौहान	:	नरेश कुमार	80
बाणभट्ट की आत्मकथा और राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन	:	पिंकी देवी	87
हिंदी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना के स्वर का अनुशीलन	:	राजिंदर कुमार सेन	93
राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना के अग्रदूत : गुरू तेग बहादुर	:	सुरिन्द्र सिंह	103
रीतिकालीन कवि भूषण के वीरपरक काव्य में राष्ट्रीयता का स्वर	:	स्वर्ण कौर	116
आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद की भूमिका	:	आदित्य अंगिरस	123

मुख्य संपादक की कलम से .....

भारतीय चिंतनधारा के मूल में 'सत्यं शिवम् सुन्दरम्' की संकल्पना है, इसलिए इसकी व्यापकता धर्म, संस्कृति, दर्शन, कला, साहित्य इत्यादि में असामान्य रूपों में दृश्टिगोचर होती है। 'सुन्दरम्' से अभिप्राय सौन्दर्य से है और इसका आधार 'शिवम्' अर्थात 'कल्याण' है। 'शिवम्' सत्य के बिना कदापि संभव नहीं होता है। 'सत्य' ब्रहम है । देश, काल, परिस्थिति में परिवर्तन से ब्रहम में विकार उत्पन्न नहीं होता है। ब्रहम अनंत, अजन्मा और अजर–अमर है। वह सर्वव्यापी और निर्लिप्त है। जब मनुष्य की चेतना में ब्रहम के अस्तित्व सम्बन्धी इन तथ्यों का प्रवेश हो जाता है तब वह नैतिक बनने लगता है और उसका जीवन सार्थक होने लगता है। वैदिक काल के ऋषियों ने इसके लिए जो प्रयास किये हैं, उसे भारतीय साहित्य का आरंभिक रूप स्वीकार किया जाता है। वह साहित्य व्यष्टि और समष्टि दोनों के परिष्कार कर दोनों को नैतिक बनाने के लिए सृजित किया गया है। परवर्ती काल–खण्डों से होते हुए यह धारा आज तक अजस्र रूप में प्रवाहित होती चली आ रही है। भारतीय राष्ट्रीय चेतना से प्रेरित साहित्य में इसकी अभिव्यंजना है और इसलिए 'परिशोध' का यह 'आजादी का अमृत महोत्सव' अंक अद्वितीय है।

–बैजनाथ प्रसाद

सम्पादकीय

'परिशोध' अभी तक की अपनी यात्रा में गुणों को प्रश्रय देने और शोध–जगत को समृद्ध करने में सफल रही है। राष्ट्रीय स्तर पर ख्यातिलब्ध चिंतक, विचारक, आलोचक एवं समीक्षक इस पत्रिका के लेखन–संसार को समृद्ध करते रहे हैं तो नवांकुरों के लिए यहाँ होना उनकी प्रतिष्ठा और अस्मिता को बढाने जैसा रहा है। यहाँ 'वाद' और 'गुट' की प्रधानता न होकर 'मूल्य' एवं 'दृष्टि' की प्रधानता रही है इसलिए आप कह सकते हैं कि विमर्श–संसार प्रभावित करने और विस्तार देने में भी इस शोध पत्रिका ने अपनी विशेष भूमिका समय–समय पर निभाई है।

भाव और भाषा के उत्थान में भी इस पत्रिका ने समय–समय पर हस्तक्षेप किया है जिसका साहित्य–जगत में बराबर स्वागत होता रहा है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी सदृश संपादक का इस पत्रिका से जुड़ा होना इसके सार्थक उद्देश्यों को प्रमाणित तो करता ही है व्यावहारिकता भी दिखाता है। कोई भी पत्रिका महज सैद्धांतिक होकर नहीं चल सकती। यह जब भी हम परिशोध की यात्रा को देखते हैं तो पाते हैं कि समय और परिवेश की जरूरत को ध्यान में रखकर इसके अंक निर्मित हुए हैं और गंभीर विमर्श को आगे लेकर आए हैं।

यह दौर सृजन में 'अस्मिता' और 'अस्तित्व' के तलाश का दौर है जहाँ जीवन को एक प्रेरणा के तहत सार्थक दिशा दी जा रही है। साहित्य इस अर्थ में 'क्या करना चाहिए' और 'क्या नहीं करना चाहिए' के अतिरिक्त किस तरह कोई चिंतन हमारे परिवेश को समृद्ध बना सकता है, इस दिशा में भी एक गंभीर प्रयास है। जब हम अभिव्यक्त के धरातल पर होते हैं तो देशकाल परिस्थिति से जुड़ना और उसकी अभिव्यक्ति अपनी सृजनात्मक परिधि में करना आवश्यक हो जाता है। हर लेखक और विचारक का अपना एक दायरा होता है कई बार वह उसे तोड़ते भी हैं और बनाते भी हैं।

हिंदी साहित्य अपनी समृद्धि में आदर्श, नैतिकता और व्यावहारिक यथार्थ का गुलदस्ता है जिसमें पाठक अपनी सुविधा और जरूरत के मुताबिक ग्रहण करता है। एक आलोचक और शोधार्थी के लिए जहाँ ग्रहण करना जरूरी होता है वहीं यह बताना भी आवश्यक होता है कि सम्बन्धित पाठ या विधा अथवा सृजन में कोई क्या प्राप्त कर सकता है? मुझे इस बात की खुशी है कि सम्बन्धित लेखकों द्वारा इस अंक में इन बातों पर विशेष ध्यान दिया गया है। सुधी लेखकों, आलोचकों ने इस बात का बराबर ध्यान रखा है कि मूल्य विघटन के दौर में नव–सृजित मूल्य अपना स्थान ग्रहण तो करें ही परंपरा से चले आ रहे मूल्य भी उसमें अपना स्थान बनाकर रहें।

राष्ट्र की निर्मिति में सबका अपना योगदान है। साहित्य का योगदान इसलिए विशिष्ट रहा है कि इसमें दशा और दिशा निर्धारित करने की क्षमता अन्य माध्यमों से कहीं अधिक है। जीवन के तमाम लक्ष्य होते हैं लेकिन उनमें से सबसे अधिक जरूरी और महत्त्वपूर्ण होता है अपने राष्ट्र

ऊर्जावान और समर्थ बनाना। साहित्य का लक्ष्य यही है और वह भी बगैर किसी भेदभाव के। इस अंक में शामिल लेखों में ये भाव वर्तमान हैं, जिन्हें देखकर साहित्य के उद्देश्यों के प्रति आश्वस्ति का भाव बढ़ जाता है।

परिशोध शोध मानकों पर गंभीर है तो इसका ध्यान भी सम्बन्धित लेखकों द्वारा बराबर रखा गया है। सन्दर्भ ग्रंथों की सूची से लेकर व्याकरण–शुद्धि तक का ध्यान रखा जाना इस पत्रिका को अन्य से अलग तो बनाता ही है इसकी विशिष्टता को भी प्रदर्शित करता है। मुझे उम्मीद ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्वास है कि इस पत्रिका को आप सुधी पाठकों और साहित्य–अध्येताओं का सहयोग बराबर मिलता रहेगा। इस उम्मीद और अपेक्षा के साथ यह अंक आपके हाथों में सौंपते हुए एक अलग तरह की खुशी का आभास हो रहा है–

डॉ. अशोक कुमार
प्रोफेसर, हिन्दी–विभाग,
पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़, 160014

'परेश काव्य और राष्ट्रीय चेतना'

अंजु बाला, शोधार्थी*

अपने देश के प्रति अगाध प्रेम रखते हुए उसकी संस्कृति, सभ्यता, एकता और अखंडता को बनाए रखना राष्ट्रीयता कहलाती है लेकिन अपने देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक स्थिति की वास्तविकता का ज्ञान राष्ट्रीय चेतना कहलाती है। देश में फैली बुराईयों, रूढ़ियों, कुरीतियों को समाप्त करने के लिए तुलसीदास, कबीर और विवेकानन्द जैसे महापुरूषों के समान प्रतिबद्धता राष्ट्रीय चेतना का विस्तार है। स्वामी विवेकानन्द ने राष्ट्र के प्रति अपनी चेतना को इस प्रकार प्रकट किया था– "हर राष्ट्र के पास एक संदेश होता है, जो उसे पहुँचाना होता है। हर राष्ट्र का एक मिशन होता है जो उसे हासिल करना होता है। हर राष्ट्र की नियति होती है जिसको वह प्राप्त होता है।" रचनाकार परेश की राष्ट्रीय चेतना उनके साहित्य में स्पष्ट झलकती है। प्रत्येक देशवासी के मन में अपने देश के प्रति अगाध प्रेम भरा होता है। वह अपने देश की उन्नति के लिए दिन–रात मेहनत करता है और आवश्यकता पड़ने पर देश की प्रभुता की रक्षा के लिए अपने प्राणों तक का बलिदान दे देता है। इसी प्रकार एक साहित्यकार अपनी रचना के माध्यम से अपने देश की परंपरा, संस्कृति को सुरक्षित रखता है और पाठकों में देश प्रेम की भावना को भी भरता रहता है। कवि परेश को अपने देश के कण–कण से प्रेम है। वे अपने देश के स्वर्णिम इतिहास से भली– भांति परिचत हैं। कवि ने 'पृथ्वी की प्रत्यंचा' काव्य संग्रह में संकलित 'मेरा देश सुंदरं' कविता में देश के गौरवपूर्ण इतिहास के प्रति अपने प्रेम को इस प्रकार प्रकट किया है–

"मेरे भारत का कण–कण, तृण–तृण
वीरुध–लता–गुल्म सुंदरं, शिव सुंदरं,
गर्जितोर्मि सागरजलमध्ये विवेकमन्दिरं,
बद्री–केदार–कालड़ी,
शंकर का स्वर्ण–चतुष्क सुंदरं,"[1]

इसके अतिरिक्त परेश जी के साहित्य में देश की वर्तमान स्थिति के प्रति चिंता और अपनी संस्कृति के प्रति गर्व की भावना से अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्र प्रेम झलकता है। कवि को भारतीय सनातन संस्कृति से बहुत लगाव है। कवि के अनुसार राम –सीता, लक्ष्मण, भरत आदि का आचरण भारतीय संस्कृति और सनातन परंपरा के ऐसे उदाहरण हैं, जो अनेक युग बीत जाने के बाद भी भारतीय संस्कृति को पोषित कर रहे हैं। सहनशीलता, त्याग, बलिदान, समर्पण और न्याय जैसे गुण इसी सनातन संस्कृति और परंपरा के कारण हमारे व्यवहार में आज भी विद्यमान हैं। इसीलिए हमारी संस्कृति विश्व की सभी संस्कृतियों

* हिंदी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़। Email: anju87287@gmail.com

से श्रेष्ठ है। कवि ने राक्षसों का उद्धार करने वाले और सज्जनों की रक्षा करने वाले श्री राम को करूणा निधान कहते हुए उन्हें हृदय में निवास करने की प्रार्थना की है–

"नटेश्वर की समाधि
करती है तुम्हारा ही ध्यान
अयोध्या को धन्य किया
लेकर वहां जन्म, आनन्द–गान,
विश्वामित्र का संग, ताड़का–वध
फिर उद्धार अहिल्या का, जानकी मंगल–वरण,
करो जन को धैर्य का दान
बसो इस हृदय–धाम
हे करुणा–निधान"[2]

वर्तमान समय के भारतीय जनमानस में फैली बुराईयों को देखकर मन बहुत दुःखी है। कवि का मानना है कि हमारे भारतीय समाज में युवाओं का जो नैतिक पतन हो रहा है उसके पीछे पश्चिमी सभ्यता का अंधाधुंध अनुकरण सबसे बड़ा कारण है। इस अंधानुकरण से हम अपनी सनातन संस्कृति से विमुख हो रहे हैं। हमारी प्राचीन भारतीय संस्कृति के मूल में त्याग की भावना है लेकिन पश्चिमी संस्कृति उपभोगतावादी है। कवि ने पश्चिमी सभ्यता को राक्षसी कहकर संबोधित किया है। कवि के अनुसार इस राक्षसी को खत्म करना बहुत आवश्यक है। इसलिए वे पुनः श्री कृष्ण भगवान से अवतरित होकर इस राक्षसी का वध करने का आह्वान करते हैं ताकि समाज में खुशहाली स्थापित हो जाए। 'शुभा' कविता में कवि परेश श्री कृष्ण का आह्वान करते हुए कहते हैं –

"मारना कृष्ण ! जन्म लेकर इस पश्चिमी
सभ्यता की पूतना को उसके स्तन भींच
पी जाओ दुष्टों के प्राण, फिर से बहे इस देश में
दूध दही की धार"[3]

देश की वर्तमान भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था के प्रति भी कवि बहुत आक्रोशित हैं। देश में नेतृत्व की समस्या का चिंतन करते हुए लिखते हैं कि पूंजीपति वर्ग देश की सत्ता से मधुमक्खियों की तरह चिपक कर लोगों का खून चूस रहे हैं। संसद के भीतर सत्ता का खेल चल रहा है और जनता ताश के अनुपयोगी पत्तों की तरह पड़ी है। प्रधानमंत्री कुछ लोगों के हाथों की कठपुतली बने हुए हैं। जनता पर अत्याचार हो रहे हैं, लेकिन शासन व्यवस्था को इसकी कोई प्रवाह नहीं है। जनता की शिकायतें सुनने वाला कोई नहीं है। कवि का मानना है कि यह जनतंत्र नहीं वनतंत्र है। 'धुंध में धूमिल' कविता में इस स्थिति को चित्रित किया है –

"सारी यह कहानी भूख और ठंड की,
कवि विकल बोले,

नहीं है यह जनतंत्र, वनतंत्र है,
रूचिका राठौर की उसने नहीं सुनी कहानी,"[4]

कवि इस समस्या का सबसे बड़ा कारण यह मानते हैं कि लोकतंत्र होने के बावजूद भारत में एक ही पार्टी का शासन अधिक रहा है, जिसके कारण लोकतंत्र की गरिमा समाप्त हो गई है। विपक्ष की भूमिका नगण्य हो गई है। सारी राजनीति एक ही परिवार की कठपुतली बनकर रह गई है। कुछ शिक्षित लोग हैं जो चाटुकारिता कर अपना काम निकालने में लगे रहते हैं। वे सरकार का विरोध कर स्वयं को किसी समस्या में नहीं डालना चाहते । इसलिए उन्हें सरकार की खुशामद करने में ही अपनी भलाई नज़र आती है। चाटुकार मंत्रियों को मालाएं पहनाते हैं, कभी चाँदी की गदा भेंट करते हैं चाहे आर्थिक स्थिति कितनी ही खराब क्यों न हो, बस मंत्री की कृपा दृष्टि बनी रहे। 'मंत्री की पुत्री का विवाह', 'भागो कार्यकर्ता भागो' कविता में ऐसे लोगों की स्थिति पर व्यंग्य किया है। इसी प्रकार 'संसद चालू आहे' और 'वाह वाजपेयी' कविता के माध्यम से भारतीय राजनीति पर कटाक्ष किया है। 'शेष तुक' कविता के माध्यम से लोकतंत्र के चौथे स्तंभ मीडिया पर सवाल उठाया है कि वे खबरों को इतना घुमा देते हैं कि सच और झूठ में अंतर कर पाना मुश्किल हो जाता है। कहीं सरकार के कार्यो की खिलाफत होती है तो उसे समाचार नहीं बनाया जाता, उसे दबा दिया जाता है। देश में लोकतंत्र केवल दिखावे के लिए है जनता की समस्याओं की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता।

"दिल्ली से मेरी कोई शिकायत नहीं
क्योंकि दिल्ली और बाकी देश के बीच
जो जाल फैला है
संवाददाताओं का
वस्तुतः यही वह अंधड़ है
जो कोई चीज
साफ–साफ नहीं देखने देता
इसलिए क्रांति
पटना की एक कुटिया में कैद है"[5]

कवि कहना चाहता है कि वर्तमान समय में मीडिया भी स्वतंत्र और निष्पक्ष होकर अपना कार्य नहीं कर रही। वह भी सत्ताधारी पार्टी के दबाव में आ गई है। इसका प्रभाव यह हो रहा है कि जनता द्वारा की जाने वाली क्रांति उसी क्षेत्र विशेष में कैद होकर रह जाती है वह सम्पूर्ण देश की क्रांति नहीं बन पाती जिसके कारण उसका प्रभाव व्यापक रूप नहीं ले पाता और लोगों में जागरूकता भी नहीं फैलती। देश की आर्थिक स्थिति और न्याय व्यवस्था भी चौपट है।

''कैसी भयानक है यह डेमोक्रेसी ,
गरीब दे वोट
लालू–कचालू हजम कर नहीं लेते डकार

फट जाती है होरी की धोती ,
गांधी की लंगोटी ,
नंगा है देश भूखा है पेट
कहाँ है ईश्वर ,
द्रोपदी की कौन बचाता है अब इज्जत ,
जिलाधीश ही ले जाता है उठाकर कालेज जाती कन्या"[6]

देश की सुरक्षा व्यवस्था भी चरमरा गई है। विश्व के सभी देश अपनी सुरक्षा के लिए परमाणु हथियारों की संख्या लगातार बढ़ा रहे हैं। हमारे नेता देश की सुरक्षा को दरकिनार कर विदेशी शासकों को खुश करने में लगे हुए हैं। देश के प्रधानमंत्री ने बिना सोचे समझे अपने देश की सुरक्षा को ताक पर रखकर अमेरिका के साथ आणविक समझौता कर लिया है।

"मनमोहन बुरे फंसे,
एटमी करार पर कर दिए दस्तखत
अब क्या हो सकता है वीर ! गोगापीर !
चुपचाप चले आओ अपने गांव
धनुष से छूट गया है तीर"[7]

'हरिण', 'भरोसिह', 'अकाव्य', आदि अनेक कविताओं के माध्यम से कवि ने समकालीन भारतीय राजनीति का दृश्य प्रस्तुत किया है। यह सत्य है भारत में नेता या मंत्री देश सेवा के लिए नहीं बनते बल्कि धन जोड़ने के लिए बनते हैं। 'अपना काम बनता भाड़ में जाए जनता' की नीति अपनाकर चलते हैं।

देश का भार युवा कंधों पर होता है क्योंकि वे ऊर्जा का अथाह सागर होते हैं। आज का युवा हताशा और निराशा से घिरा है। वह परिस्थितियों से टकराना नहीं चाहता बल्कि उनसे बचना चाहता है। वह बिना मेहनत किए ही अपने सपने पूरे करना चाहता है। समय गुजरता रहता है और वह केवल प्रतीक्षा करता रह जाता है। उसे हताशा और निराशा के अतिरिक्त कुछ हासिल नहीं होता। 'प्रतीक्षा' कविता के माध्यम से कवि कहते हैं–

''प्रतीक्षा.....
ताँबइ चमक से
चमकते हुए चेहरों के
सूर्यास्त की प्रतीक्षा"[8]

ऐसा इसलिए भी हो रहा है क्योंकि आज के युवा में कुछ नया करने का जज्बा नहीं है। वह अपने जीवन का एकमात्र लक्ष्य नौकरी प्राप्त करना मानता हैं। उसका सारा यौवन और ऊर्जा नौकरी प्राप्त करने में ही बीत जाती है। कुछ युवा नौकरी प्राप्त कर लेते

हैं तो घर और दफ्तर की चारदीवारी में अपने आपको सीमित कर कैदी जैसा जीवन व्यतीत करने लगते हैं। जिन युवाओं को नौकरी नहीं मिलती वे हीन भावना का शिकार होकर स्वयं को अयोग्य समझ कुंठाग्रस्त हो जाते हैं।

"हम सभी लोग कितने अधिक कैद है
अपनी ही बनाई हुई
बाहरी और भीतरी जेल में
दफतरों के कमरे और केबिन में"[9]

कहने का भाव यह है कि युवा पीढी अंतर्मुखी होती जा रही है। परिवार और समाज से दूर होती जा रही है। युवा जीवन का रस और सौंदर्य भी समाप्त होता जा रहा है। कुछ युवा ऐसे भी हैं जो अपनी प्रेमिका के न मिलने पर आत्महत्या कर लेते हैं। 'क्यों की आत्महत्या' कविता के माध्यम से कवि ने इस समस्या का चित्रण किया है।

कवि ने ऐसे युवाओं को 'महेन्द्र सिंह धोनी', 'ए.पी. जे. अब्दुल कलाम आजाद', 'दलाई लामा' जैसे लोगों से प्रेरणा लेने को कहा है। युवाओं को अपने व्यक्तिगत स्वार्थ से उपर उठकर समाज और देश के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। अपने सामर्थ्य के अनुसार इस संसार के लिए कुछ करके अपने जीवन को सार्थक बनाना चाहिए।

"और फिर देखो ए.पी.जे. कलाम,
तुमने नहीं किया उनको सलाम,
कैमरा लेकर चले जाते गांधी धाम,
भूकंप के बाद बच्चों के भूखे किंतु मुस्कराते चेहरे देखते
नाइजीरिया की उस खातून को दूरदर्शन पर देखते
जिसने मातृत्व के लिए पत्थरों की मार से
मरना किया स्वीकार,
नहीं बंद की अपने स्तनों से झरती
मासूम के मुंह में दूध की धार"[10]

कवि युवा वर्ग को प्रेरणा देते हुए कहते हैं कि युवाओं को अंतर्मुखी होने की बजाय बहिर्मुखी होना चाहिए। जीवन केवल सबकुछ पा लेना ही नहीं है खोना भी जीवन का हिस्सा समझना चाहिए। जीवन के एक से अधिक लक्ष्य भी होने चाहिए। कोई भी लक्ष्य अंतिम लक्ष्य नहीं होता। विपरित परिस्थितियों से लड़ना ही जीवन है। यह सत्य है कि आज का युवा अपने सामर्थ्य और उद्देश्य को भूलकर दिशा विहीन हो गया है। जब वे युवा की बात करते है तो उनके शब्दों में स्वामी विवेकानन्द बोलते हैं। उनके अनुसार युवा शक्ति को आकांक्षा से परिपूर्ण होना चाहिए। 'ओ आकांक्षा' कविता में आकांक्षा का आह्वान करते हुए कहते हैं–

"हिला देती हो समुद्र को

भूधरों को देती हो धक्का
विशाल हस्ती–यूथ में बदल अपना रूप
तुम भूप, तुम जनक तन्या, तुम वाल्मीकि
रचती हो रामकथा"[11]

कवि की राष्ट्रीय चेतना इतनी इतनी विस्तृत है कि समाज का कोई भी वर्ग उनकी लेखनी से छूटा नहीं है। देश के किसानों की दुर्दशा ने कवि मन को बहुत आहत किया है। आंध्रप्रदेश और महाराष्ट्र के किसानों की आत्महत्या के बढ़ते आंकड़ों ने कवि मन को झकझोर दिया है। उन्हें 'प्रेमचंद' के 'होरी' और वर्तमान के किसानों की हालात में ज्यादा अंतर नहीं दिखाई देता। कवि का मानना है कि स्वतंत्रता के बाद सरकारों ने बहुत भारी भरकम बजट पेश किए हैं जिनमें किसानों की स्थिति में सुधार के लिए कोई प्रयास नहीं है। लालू प्रसाद जैसे नेता पशुओं का चारा अपने गोदामों में भर लेते है। किसानों को दिए जाने वाले कर्ज की रकम को लगातार बढ़ाया जाता है लेकिन उसकी समस्याओं का समाधान नहीं किया जा रहा। सरकार यह नहीं देखती कि किसान यदि कर्ज ले लेता है तो उसे चुकाएगा कैसे ? हमारे देश का विशाल भू–भाग आज भी वर्षा पर आधरित है ऐसे में यदि वर्षा ना हो और फसल अच्छी ना हो तो कर्ज का पैसा तो बढ़ता ही जाएगा जिसका परिणाम 'होरी' की ही तरह अधिक मेहनत करते हुए खेत में ही दम तोड़ने या आत्महत्या होगा। जमींदारों का स्थान अब साहुकारों ने ले लिया है। कर्जदार किसान के परिवार की स्थिति को अपनी संवेदना के साथ कवि ने इस प्रकार चित किया है –

"नहीं कहीं आशा ,
विदर्भ में साहूकार मांगता है उधार के बदले
कृषक की नव–विवाहित वधू ,
अन्यथा पुत्री ,
पंवार ! क्या तुम देख नहीं रहे
खेतों में मरते चमार, आत्महत्या करता
पूरा का पूरा परिवार"[12]

पहाड़ी क्षेत्रों में दूर–दराज के गाँवों में रहने वाले किसानों की हालत तो और भी खराब है। स्वास्थ्य जैसी बुनियादी सुविधाओं के न मिलने और कोई सरकारी हस्पताल न होने के कारण प्राइवेट प्रयोगशालाओं के चक्कर काटने पड़ते हैं। 'कविता के सत्व' कविता में कवि पहाड़ी किसानों की समस्याओं का चित्रण करते हुए लिखते हैं–

"शहरों में कोठियाँ है, बँगले हैं,
अस्पताल जादूनगरी के जंजाल में
गाँवों, देहातों और अविकसित अंचलों से चलकर
गरीब किसान प्राचीन घरों में विश्वास करने वाले
अपने गाय बैल छोड़कर
एक पर्ची लेकर घूमता है,

प्राइवेट प्रयोगशालाओं में
उसे एक्स–रे करवाना है,
क्योंकि पहाड़ी गाँवों में कोई अस्पताल नहीं है
हो गया एक्स–रे, अब क्या होगा उस फोटो का,
क्या उसकी आर्थिक दशा ठीक होगी या
उसकी तेरह वर्षीय पुत्री अपना पागलपन छोड़ पुनः स्कूल जाएगी?"[13]

कवि का मानना है कि ऋण की रकम जितनी बढ़ेगी किसानों की आत्महत्या की घटनाएं भी बढ़ती रहेंगी। 'गोदान' को कवि किसान के जीवन की यम गाथा मानते हैं लेकिन साथ–साथ कवि यह भी कहते हैं किसान गोदान नहीं पढ़ता। किसान के पास न गोदान पढ़ने का समय है और ना ही इच्छा। उसका पूरा जीवन अपनी दैनिक जरूरतों से जूझने और कर्ज उतारने में बीत जाता है। प्रजातंत्र में भी भ्रष्टाचारी मंत्रियों के रूप में महाजनों ने घूसकर किसानों पर शिकंजा कस लिया है जिसके कारण किसानों की हालत में आजादी के वर्षों बाद भी कोई सुधार नहीं हो पाया है।

इनके अतिरिक्त देश में एक और बड़ी समस्या है और वह है कुछ कटटरपंथी लोग जो अपनी संकीर्ण मानसिकता के कारण देश की जनता के मन में नफरत के बीज बोते रहते हैं। झूठ की दुनिया के बादशाह बनकर मानव धर्म का नाश करते हैं। वास्तव में ऐसे लोग धर्म का वास्तविक अर्थ ही नहीं जानते। कवि का मानना है कि इस पृथ्वी पर सभी मनुष्य एक समान हैं चाहे वह किसी भी धर्म या संप्रदाय से जुड़ा हो। सभी धर्म और सम्प्रदाय मनुष्य द्वारा ही निर्मित हैं। सम्पूर्ण जगत प्रकृति की देन है और प्रकृति सभी प्राणियों के लिए एक समान है।

"कोई भी धर्म हो
कोई भी देश
चंद्रमा और सूर्य ही
देते हैं रोशनी
ताप और सुधा"[14]

कुछ घृणित मानसिकता वाले लोग धर्म का चोला ओढ़कर स्त्रियों और बच्चों पर अत्याचार करते हैं। 'बांगलादेशी' और 'एक लेखिका की आत्मकथा' कविता के माध्यम से बांगलादेशी लेखिका पर धर्म के नाम पर होने वाले अत्याचारों के खिलाफ आवाज़ उठाई है।

"एक बांगलादेशी लेखिका
एक अकेली निहत्थी आवाज
रवींद्रनाथ की मानस पुत्री ,
देह का एक एक रोंआ पाठक को दिखती है,
सगे मामा, सगे चाचा
इस सात वर्ष की बालिका से

बलात्कार करते हैं"[15]

ये धर्म के ठेकेदार धर्म की आड़ लेकर व्यक्तिगत विचारों की कट्टरता फैलाने का प्रयास करते रहते हैं। कवि का मानना है कि ऐसी विचारधारा के लोग इंसान नहीं भेड़िये हैं। 'चरार' कविता में वे लिखते हैं –

"न गुम्बद न मजार
नुंद ऋषि के आश्रम का
खुदा के बंदों ने रख दिया
नाम चरार.....
हिंदु घर की एक बहुत
सताई नार
बन गई लल्ला अरीफ
आखिर कार"[16]

लोगों को डराकर और विवश करके धर्म परिवर्तन की समस्या को भी कवि ने उठाया है। कवि का मानना है कि जो लोग इसे धर्म की स्थापना मानते हैं वे नहीं जानते की यह धर्म की हार है, क्योंकि धर्म विनाश नहीं हर हाल में निमार्ण पर आधारित होता है। कुछ लोग दूसरे धर्मो के पवित्र स्थलों पर मूत्र विसर्जन जैसे घिनौने कृत्य भी करते हैं। इससे पता लगता है कि ऐसे लोग मानसिक रूप से बीमार और कुंठाग्रस्त हैं। वे किसी भी धर्म के अनुयायी नहीं हो सकते। 'हे जन्म दिन' कविता में 'परेश' इस समस्या पर विचार करते हुए लिखते हैं –

"जो मानते हैं कुरान, रामायण नहीं
बाइबिल वाले कुरान नहीं, धर्म के नाम पर
पनप रही है कट्टरता, एक दूसरे की सम्पत्ति,
स्त्री रही हड़पने का बाजार, क्या जरूरत
अब पुरातन मीना बाजार की, शहंशाह जहांगीर की
इज्जत लुटती है राह चलते राहगीर की ''[17]

कवि सभी धर्मो को समानता की दृष्टि से देखते हैं। 'ईद' कविता में वे कहते हैं कि एक ही सूर्य और चंद्रमा सभी धर्मों के लोगों को समान रूप से ताप और अमृत प्रदान करते हैं। लेकिन ऐसे दुष्टों के विनाश के लिए कवि ने सर्वगुण सम्पन्न, दुष्टों का विनाश करने वाले श्री राम जैसे व्यक्तित्व का आह्वान किया है। कवि का विश्वास है कि राम जैसे गुणों को अपने अंदर विकसित करके ही इस धरती और मानव समाज को बचाया जा सकता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के कई वर्ष बीत जाने के बाद भी भारत की शासन व्यवस्था लोककल्याणकारी नहीं बन पायी। प्रत्येक सरकारी और निजी क्षेत्रों में भ्रष्टाचार अपनी जड़े जमाए हुए है। समाज में गुंडागर्दी, बलात्कार, चोरी–डकैती, साम्प्रदायिक दंगों जैसी

घटनाओं के कारण अराजकता का माहौल बना हुआ है। बढ़ती जनसंख्या के कारण बेरोजगारी की समस्या विकराल रूप ले रही है। चारों ओर निराशा ही निराशा फैली हुई है लेकिन कवि निराशा में भी आशा की किरण खोजने का प्रयास कर रहा है। 'अँधेरे में एक छटपटाहट' कविता में परेश देश की जनता में नव ऊर्जा का संचार करते हुए लिखते हैं –

''लो अब उठो
पलक तुम खुलो
अंधेरा टूट गया है
देखो खोले द्वार उषाओं की देहरी पर
रक्तिम चुम्बन निखर गया है जल में,
थल में सदल कमल में
मैदानों के दुर्वादल में
स्वप्नों का छल बिखर गया है''[18]

निष्कर्ष – कवि का विश्वास है कि इस व्यवस्था को सुधारने की ताकत हम सब में है, जरूरत है तो बस इतनी कि हमें अपनी ताकत को पहचानना है। इसके लिए हमें अपने स्वप्न लोक से निकलकर यथार्थ के धरातल पर उतरकर इन समस्याओं की जड़ो को खोदना है। इस प्रकार परेश जी के काव्य का विश्लेषण कर हम कह सकते हैं कि इनका काव्य राष्ट्रीय चेतना से परिपूर्ण है। इन्होंने अलग–अलग संदर्भों में अपनी राष्ट्रीय चेतना को प्रकट किया है। देश की प्रत्येक स्थिति का सुक्ष्मता से निरीक्षण किया है। यही कारण है कि कवि इतनी बारीकी से समस्याओं से कारणों को जान और समझ पाए है। कवि 'परेश' की राष्ट्रीय चेतना देश की समस्याओं के प्रति सजगता और चिंता के रूप में प्रकट हुई है। इन समस्याओं के समाधान निकालना और भी सराहनीय प्रयास है।

संदर्भ सूची :–

1. परेश पृथ्वी की प्रत्यंचा, चंडीगढ़, गजानन प्रकाशन, 2008, पृ॰सं॰ 10
2. वही, पृ॰सं॰ 79
3. वही, पृ॰सं॰ 46
4. परेश दरवाजे में तुम, चंडीगढ़, गजानन प्रकाशन, 2014, पृ॰सं॰ 11
5. परेश ओ आकांक्षा, चंडीगढ़, गजानन प्रकाशन, 2003, पृ॰सं॰ 27
6. परेश पृथ्वी की प्रत्यंचा, चंडीगढ़, गजानन प्रकाशन, 2008, पृ॰सं॰ 42
7. वही, पृ॰सं॰ 62
8. परेश वे बाघ आँखें, चंडीगढ़, गजानन प्रकाशन, 2004, पृ॰सं॰ 62
9. परेश ओ आकांक्षा, चंडीगढ़, गजानन प्रकाशन, 2003, पृ॰सं॰ 13
10. परेश पृथ्वी की प्रत्यंचा, चंडीगढ़, गजानन प्रकाशन, 2008, पृ॰सं॰ 38
11. परेश ओ आकांक्षा, चंडीगढ़, गजानन प्रकाशन, 2003, पृ॰सं॰ 9

12. परेश पृथ्वी की प्रत्यंचा, चंडीगढ़, गजानन प्रकाशन, 2008, पृ॰सं॰ 21
13. परेश दरवाजे में तुम, चंडीगढ़, गजानन प्रकाशन, 2014, पृ॰सं॰ 8
14. परेश वे बाघ आँखें, चंडीगढ़, गजानन प्रकाशन, 2004, पृ॰सं॰ 26
15. परेश पृथ्वी की प्रत्यंचा, चंडीगढ़, गजानन प्रकाशन, 2008, पृ॰सं॰ 25
16. वही, पृ॰सं॰ 67
17. वही, पृ॰सं॰ 42
18. वही, पृ॰सं॰ 12

राधेश्याम शुक्ल के काव्य में राष्ट्रीय चेतना

अनुपमा कुमारी (शोधार्थी)*

राष्ट्रीयता की संकल्पना बहुत प्राचीन है। राष्ट्रीयता एक ऐसा मनोभाव है, जिसका मुख्य उद्देश्य मातृभूमि की स्वतंत्रता और उसकी संस्कृति की रक्षा है। यह एक आध्यात्मिक भावना है जो उन लोगों में पनपती है, जिनका देश, नस्ल, साहित्य, इतिहास, भाषा, धर्म, राजनीतिक आकांक्षाएँ तथा आर्थिक हित एक समान होते हैं। राष्ट्रीयता की परिभाषा एक ऐसे जनसमूह के रूप में की जा सकती है जो कि एक भौगोलिक सीमा में, एक निश्चित देश में रहता हो, जो समान परंपरा, समान हितों तथा समान भावनाओं से बँधा हो और जिसमें एकत्व की भावना से पूरित उत्सुकता तथा समान राजनैतिक महत्वकांक्षाएँ पाई जाती हैं। राष्ट्रवाद के निर्णायक तत्व में राष्ट्रीयता की भावना किसी राष्ट्र के सदस्यों में पाई जाने वाली सामुदायिक भावना है, जो उनका संगठन सुदृढ़ करती है और सामुदायिकता में पिरोने का प्रयास करती है। एक राष्ट्र में चेतना मरने के लिए और अपने निजी स्वार्थ का बलिदान करने के लिए प्रेरित करती है। यदि ऐसा कर सकें, तभी हम राष्ट्र के लिए परोपकार का कार्य कर सकते हैं। दूसरे के हित का ध्यान रखकर ही हम राष्ट्र के लिए कार्य कर सकते हैं। राष्ट्रीय चेतना तभी जागृत होती है जब धर्म का समन्वय हो और तभी राष्ट्र बुलंदियों के शिखर को छू सकता है। राष्ट्र चेतना नि:स्वार्थ भाव में छिपी हुई है।

राष्ट्र की परिभाषा और स्वरूप–

"राष्ट्र जातीय एकता के सूत्र में बंधी हुई वह जनता है जो किसी अखंड भौगोलिक प्रदेश पर निवास करती है। जातीय एकता से उनका अभिप्राय से आबादी से है जिसकी एक सामान्य भाषा और साहित्य, सामान्य परंपरा अथवा इतिहास, सामान्य रीति–रिवाज तथा उचित और अनुचित की सामान्य चेतना है"[1]

"राष्ट्र ऐसे लोगों का समूह होता है जो घनिष्ठता, अभिन्नता और प्रतिष्ठा की दृष्टि से संगठित हैं और एक मातृभूमि से संबंधित हैं। "इसके साथ ही यह विचारा जाता है कि राष्ट्र के व्यक्तित्व निर्माण में सामान्य भाषा, सामान्य ऐतिहासिकता का आधार, सामान्य परंपराएँ और समृद्ध समाज के विशिष्ट सांस्कृतिक दायित्व बोध के साथ धर्म और राजनीति की भी गौण गुणों के रूप में उपस्थिति अपेक्षित है"[2]

वैदिक काल में सुख और शांति का युग था। तब राष्ट्र भावना का इतना अधिक विस्तार हुआ कि राष्ट्र शब्द का अर्थगत स्वरूप वसुधैव कुटुम्बकम को भी समाहित करने लगा, परंतु अशांति, दुर्व्यवस्था, आंतरिक कलह और विदेशी आक्रमणों की विषमता के

* हिंदी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़। **Mob.** 9915916759, **Email -** anupamayashnayak@gmail.com

कारण बाद में आदिकाल, भक्तिकाल और रीतिकाल में राष्ट्र शब्द अपने अत्यंत संकुचित अर्थ में ही जीवित रहा है।

चेतना की परिभाषा और स्वरूप

"चेतना शब्द चेतन से या सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो 'चेत' शब्द से बना है 'चेत' शब्द चेतस का पर्याय है जो संस्कृत से ग्रहण किया गया है। 'चेत' या 'चेतन' शब्द भी संस्कृत का है जिसका अर्थ आत्मा, जीव परमेश्वर, मनुष्य, प्राणी आदि से है। 'चेतना' शब्द अकर्मक क्रिया अर्थ में होश में आना, बुद्धि विवेक से काम लेना, सावधान होना है और सकर्मक क्रिया के अर्थ में सोचना, विचारना आदि अर्थ देता है। 'चेतना' शब्द का संस्कृत में स्त्रीलिंग में प्रयोग होता है तो इसका अर्थ ज्ञान, होशियार, बुद्धि, चेतन, जीवन शक्ति, जीवन आदि होता है"।[3]

राष्ट्रीय चेतना–

'राष्ट्र' में 'ईय' प्रत्यय लगाने से राष्ट्रीय शब्द बनता है। यह एक विशेषण है। राष्ट्र पुरुष वाचक संज्ञा का, जिसका अर्थ है राष्ट्र का, राष्ट्र की अथवा राष्ट्र संबंधी।[4]

परंतु राष्ट्र का यह राष्ट्रीय रूप संस्कृत व्याकरण में असिद्ध माना गया है जबकि यह भाषा में प्रयुक्त होता आ रहा है। हमारे आलोच्य कवि माखनलाल चतुर्वेदी के लिए राष्ट्र, संस्कृति और मनुष्य की त्रिवेणी का संगम है राष्ट्रीयता अथवा राष्ट्रीय चेतना। यह बात वे सदैव ध्यान में रखते हैं कि राष्ट्रीय चेतना ही जातीय तेजस्विता का पर्याय है।

राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप–

'घटनाओं में व्यक्त होने वाली चेतना जो राष्ट्र को सशक्त बनाती है।

'समाज में घटित होने वाली घटनाओं की परवाह न कर व्यक्त की जाने वाली तेजस्विता जो राष्ट्र की धमनियों को शक्ति प्रदान करती है।

'वह मस्ती या तेजस्विता की जब विश्व भर की सूझें एकत्रित की जाएँ तो भारतीय सूझें अपना व्यक्तित्व अंकित कर सकें।

भौगोलिक एकता– भौगोलिक एकता के अभाव में राष्ट्रीय भावना की कल्पना भी नहीं की जा सकती। अर्थात् किसी भी स्वतंत्र राष्ट्र के निर्माण हेतु किसी भी जन समुदाय के पास निश्चित भूभाग का होना राष्ट्रीयता के लिए एक अनिवार्य शर्त है। कोई भी जाति अपनी भूमि के बिना राष्ट्रीय चेतना को नहीं प्राप्त कर सकती, चाहे वह कितनी वैभवशाली और संपन्न क्यों न हो। किसी भी जन समुदाय का उस क्षेत्र विशेष से रागात्मक संबंध स्थापित करने के लिए वहाँ पर काफी समय तक रहना आवश्यक है तभी तो उस जगह से मोह पनप पाएगा। हम हिंद देश के निवासी सब कुछ अलग होते हुए भी हमारे पास भाव एक हैं क्योंकि हम एक निश्चित भूभाग में निवास करते हैं। हम अलग जाति, धर्म, संप्रदाय के होते हुए भी हमारी राष्ट्रीय भावना एक है। शुक्ल जी के शब्दों में–

"देश की धरती शिवाजी की कहानी,
देश की धरती शहीदों की जवानी,
देश अपना गरज कर जब बोलता है,
क्रोध में अपने नयन जब खोलता है,
तो हजारों जुल्म डर कर काँप जाते है,
और यम के दूत इससे खौफ खाते हैं"[5]

हिंदुस्तान की धरती शिवाजी की वीर गाथा का गुणगान करती है। शहीदों ने जो बलिदान दिया, आत्मोत्सर्ग किया उसकी कहानी आज भी दोहराई जाती है। इन शहीदों के क्रोध से धरती कांप जाती है। इस क्रोध के डर से यमराज भी खौफ खाते हैं।

"देश ने जब भी कभी बलिदान मांगा,
देश का सोया हुआ अभिमान जागा,
एक–दो क्या सर हजारों कट गए हैं,
और काले घन दहल कर फट गए हैं,
तब बनेगी माँ हमारे देश की धरती,
है हमारी जाँ हमारे देश की धरती"।[6]

राधेश्याम शुक्ल जी द्वारा रचित कविता हमारे देश की धरती हमारी भौगोलिक एकता को दर्शाती है। साथ ही साथ राष्ट्रीय चेतना को जागृत करती है। देश को जब भी बलिदान की जरूरत पड़ी है, हमारे शहीदों ने हँसते–हँसते आत्मोत्सर्ग कर दिया। देश के सोए हुए अभिमान को जगाने के लिए कितने ही वीर नींव की ईंट बन गए। हजारों ने अपने सर मातृभूमि पर न्यौछावर कर दिए। राष्ट्रीयता और देश में इतनी घनिष्ठता है कि यूरोप तथा कई अन्य देशों में राष्ट्रीयता के नाम पर ही उस देश का नामकरण तक किया गया है। जिस प्रकार ब्रिटेन जाति के नाम पर उस देश का नाम ब्रिटेन पड़ा, इसी प्रकार से फ्रेंच जाति के नाम पर उनके देश का नाम फ्रांस पड़ा। जर्मन से जर्मनी, पोल से पोलैंड, डेन से डेनमार्क, स्वेड से स्वीडन, अफगान से अफगानिस्तान, हिंदू से हिंदुस्तान और तुर्क से तुर्किस्तान पड़ा।

"जमीन, मात्र एक शब्द नहीं,
शब्द शक्तियों से परे एक अखंड अर्थ है,
समष्टि को समाहित करने में समर्थ है।
आकाश की शब्दवत्ता,
हवाओं का स्पर्श,
जल की समरसता,
और आग की तपन इसके समक्ष एकांगी है।"[7]

भूमि प्रभाव के कारण वहाँ की आबोहवा, प्राकृतिक सौंदर्य, रूप–रंग, रहन–सहन, शारीरिक– मानसिक विकास सभी कुछ मानवीय एकता में सहायक होते हैं।

जातीय एकता– विश्व की विभिन्न जातियों के उत्थान–पतन के इतिहास पर नजर डालें तो पता चलता है, कि किसी समाज के ऊँचा उठने और नीचे गिरने का कारण उसका आंतरिक संगठन, एकता, प्रेम और सहयोग है। इसी कारण जातीय एकता को राष्ट्रीय चेतना का महत्वपूर्ण पोषक तत्व माना गया है। एक ही वंश या जाति के लोगों में आपसी मेल और भ्रातृत्व की भावना देखी गई है। राधेश्याम शुक्ल का कवि मन आदर्शवादी होकर भी यथार्थ की अवहेलना नहीं कर पाता। उन्होंने यथार्थ के इस दाहक परिवेश का साक्षात्कार धर्म और जाति दोनों ही धरातलों पर किया है। आतंकवाद और दुर्घटनाएँ सांप्रतिक जीवन के अपरिहार्य अंग बन चुके हैं। प्रादेशिक राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आज आतंकवाद ने अपने खूनी पंजे फैला रखे हैं।

"पल भर में जाने क्या होता है,
जगह–जगह जलता है जलगाँव,
तड़पता है चिकमंगलूर,
और पश्चिम बंगाल तड़फड़ाता है,
बेगुनाह खून और मासूम दरिया में नहाकर,
कुछ लोग मुस्कुराते हैं।'[8]

आतंकवाद के साथ–साथ ऊब, घुटन, संत्रास और व्यर्थताबोध जीवन के ऐसे पहलू है जो जाति और धर्म के नाम पर सियासी खेल खेल रहे हैं।

"माँ गंगा और यमुना रोई, मंद हुई उनकी धारा,
मंदिर मस्जिद मौन हो गए गिरिजाघर और गुरुद्वारा,
काँप उठे खलिहान, खेत सीमाओं पर बदली छाई,
किसका है सिंदूर लुटा बिछुरा किस बहन का भाई,
यमुना तट पर चिता जली या विश्वशांति का दीप जला,
देशवासियों मुझे बताओ किसका प्यारा लाल मरा।'[9]

जब राष्ट्र और देश की बात आती है तो भारतवर्ष में धर्म, जाति, क्षेत्र सब कुछ भुला कर कौमी एकता सर्वत्र नजर आती है। सारे जाति, धर्म भुलाकर हिंदुस्तान एक हो जाता है। मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारा सब एक हो जाते हैं। कभी इकबाल की पंक्तियाँ भी बहुत ही सुंदर संदेश देती हैं –

"मजहब नहीं सिखाता,
आपस में बैर रखना,
हिंदी हैं हम वतन है,
हिन्दोस्ताँ हमारा"।

भारतवासी अनेक जाति, धर्म के होने पर भी विविधता में एकता चहुँ ओर दिखाई देती है। रंग, रूप, वेष भाषा अनेक होने के बाद भी राष्ट्रीय एकता के दर्शन होते हैं। कौमी एकता का सबसे सुंदर उदाहरण यह है कि गरीब नवाज ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह पर हिंदू, मुस्लिम, सिख और इसाई सभी धर्मों के लोग जियारत के लिए आते हैं।

अनेकता में एकता के साक्षात् दर्शन होते हैं। राष्ट्रीय एकता हर हिंदुस्तानी के रग–रग में बसी है। राष्ट्रीयता में एक विशेष प्रकार की सामूहिक आत्मचेतना का भाव विद्यमान होता है।

सांस्कृतिक एकता– भारत की संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। प्राचीन भारत में एक राष्ट्रीय संस्कृति थी। यह संस्कृति राष्ट्रीय जीवन के अंग प्रत्यंग में उल्लासित थी। इसी राष्ट्रीय संस्कृति ने भारतवासियों में एकता, सद्भाव, संगठन के बीज बोकर राष्ट्रीय चेतना को उजागर करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। अतएव संस्कृति के द्वारा भारत की एकता को प्रोत्साहन मिला है। **"सांस्कृतिक विकास के विविध क्षेत्रों के लिए भारत के सभी भागों की देन, सारे देश की उन्नति के लिए उपयोगी रही है।"**[10] भारतीय संस्कृति के प्रति देशवासियों के दिलों में स्वाभाविक रूप से गौरव की भावना विद्यमान रहती है। सांस्कृतिक एकता जनता में राष्ट्रीय एकता के अंतर्गत व्यक्तियों में अपनी संस्कृति को कायम रखने का संदेश देती है।

भारतीय सांस्कृतिक संदर्भ में पारिवारिक रिश्तों को डॉ. राधेश्याम शुक्ल ने जितनी आत्मीयता से अनुभव किया है और सुंदर शब्दों के माध्यम से रिश्तो की गर्माहट को तुषारापात से बचाया है। अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।

शुक्ल जी के शब्दों में–

"रिश्ते मरुस्थल की नदी, हरते तपन पियास।
ये भूगोल जुड़ाव के नेह भरे इतिहास"।[11]

भारतीय संस्कृति में मानवीय रिश्तों को बहुत अधिक महत्व दिया गया है। रिश्ते मरुस्थल में नदी के समान शीतल हैं, जो मन और हृदय की तपन और प्यास को हर लेते हैं। यह जुड़ाव या अपनत्व के भूगोल हैं। स्नेह और प्यार के इतिहास हैं। अतः शुक्ल जी ने मानवीय रिश्तों को सहेज कर रखने का संदेश दिया है।

"अम्मा शब्दों से परे,
संज्ञा एक अनाम,
उसके आंचल में बंधे,
चारों पावन धाम"।।[12]

माँ शब्द अनमोल है। इसे किसी संज्ञा में नहीं बांधा जा सकता। उसका आंचल चारों पावन धाम के समान है। माँ की सेवा सुश्रुता के सामने सारे तीर्थ छोटे पड़ जाते हैं। अतः घर में अपने बुजुर्ग माँ–बाबूजी को पूरा सम्मान देना चाहिए।

"पत्नी आँगन की नदी,
बिरवा है घर बार।
सींच–सींच कर सूखती,
ढोती रेत अपार"।।[13]

पत्नी आँगन की उस नदी के समान है जो सभी को नि:स्वार्थ सींच कर स्वयं शुष्क ही रह जाती है। जीवन भर पारिवारिक जिम्मेदारियों को निभाती है।

प्रत्येक देश की अपनी संस्कृति और परंपरा होती है। देशवासियों में पाए जाने वाले संस्कार, समान रीति–रिवाज, समान जीवन, समान रहन–सहन, समान आचार–विचार, समान वेश–भूषा, उनकी सांस्कृतिक तथा पारंपरिक संपदा होती है। जिसके प्रति देशवासियों में स्वाभाविक रूप से गौरव की भावना विद्यमान रहती है। भारतीय संस्कृति में संयुक्त परिवार को बहुत ही महत्व दिया गया है, जिसमें दादा–दादी, चाचा–चाची, भाई–बहन, माता–पिता सब मिलजुल कर रहते हैं। हर रिश्ते की अपनी अहम् भूमिका होती है। कवि डॉ. राधेश्याम शुक्ल ने इन पारिवारिक रिश्तों को बहुत अधिक महत्व दिया है।

"भाभी पीली रोशनी करती घर उजियार,
सोन चिरैया थी, मगर, उड़ी ना पंख पसार"[14]

पारिवारिक रिश्तों में भाभी की अहम भूमिका होती है। वह अपने प्यार, बलिदान तथा त्याग से घर को रोशन कर देती है। वह सोने की चिड़िया यानि अमीर परिवार से होते हुए भी अपनी इच्छाओं को कभी नहीं जीती। पंख पसार कर कभी भी उड़ान नहीं भरती। यानि अपने को परिवार को समर्पित कर देती है। यही हमारे संस्कार हैं। यही हमारी भारतीय संस्कृति। भारतीय संस्कृति एक व्यापक संस्कृति है, इसका आशय सिर्फ हिंदू संस्कृति नहीं है। वैदिक संस्कृति, पौराणिक संस्कृति, संत संस्कृति, इस्लाम संस्कृति और ईसाई संस्कृति के अंतर समन्वय से जिन मानवतावादी संस्कृति का जन्म हुआ है, वही सच्ची और आदर्श भारतीय संस्कृति है। पंजाब, कश्मीर, असम आदि, कहीं का भी उग्रवाद संस्कृति के इन्हीं अंतर्संबंधों पर चोट करता है। इसलिए उससे उपजने वाली आग, आँख के पानी के इतिहास के लिए गंभीर चुनौती भी है और खतरा भी। यह देश के उस सनातन मूल्य के विरुद्ध है, जिसने उदार चरिताम वसुधैव कुटुंबकम् की उद्घोषणा की है। कवि इन्हीं चिंताओं की पुष्टि अपने इस गीत में करते हुए कहते हैं–

"इतिहासों के,
पंख जलाकर,
मजहब ताप रहे,
पुरखों की ऊँची बिसात को"।[15]

स्वार्थ से वशीभूत होकर धर्म के नाम पर मासूम जनता को गुमराह किया जा रहा है। पुरखों ने जो इज्जत कमाई थी उस को धूमिल किया जा रहा है। मूल्यहीनता ने सांस्कृतिक सरोकारों के सारे बंधनों को तोड़ दिया है।

राजनैतिक एकता– राजनैतिक एकता राष्ट्रीय चेतना के पोषक तत्व के रूप में महत्वपूर्ण कार्य करती है। राष्ट्रीयता के विकास के लिए राजनीतिक स्वाधीनता आवश्यक है। दासता प्राणी मात्र के लिए सभी दुखों का मूल कारण है। यही कारण है कि पराधीनता में संगठन का भाव विद्यमान रहता है। इसी भाव ने राष्ट्रीय एकता को विकासोन्मुख

बनाया। अपने आप को और अपने देश को स्वतंत्र रखने की अभिलाषा प्रत्येक देशवासी में रहती है। नि:संदेह विदेशी शासन के कारण ही भारत में राजनैतिक एकता उत्पन्न हुई। डॉ. राधेश्याम शुक्ल के अनुसार किसी भी देश के वासियों में रागात्मक संबंध स्थापित करते हुए जल्दी ही राष्ट्रीयता को जागृत करने में इन्हीं तत्वों की प्रमुख भूमिका रहती है। कहने को तो देश आजाद हो गया है पर आजादी में सत्ताधारी वर्ग का वर्ग–चरित्र नहीं बदला। आम जनता का शोषण, दमन और उत्पीड़न बदस्तूर जारी रहता है। सभी राजनेता और राजनीतिक पार्टियाँ, एक थैली के चट्टे–बट्टे हैं। हर आम चुनाव के बाद सत्ता हस्तांतरण हो जाता है। राजा–महाराजा बदल जाते हैं पर आम जनता का शोषण और दमन जारी रहता है।

"वीर पृथ्वीराज की पावन धरा पर,
खेद है जयचंद भी होते रहे हैं,
और जिसमें थे बहादुर शाह जैसे,
मीर जाफर विष वहाँ बोते रहे हैं"।[16]
"संसद अपने देश की बनी तमाशा शाह,
नेता करते वाह हैं प्रजा भर रही आह"।[17]

राधेश्याम शुक्ल ने लोकतंत्र को लक्षित कर कई दोहे लिखे हैं। इन दोहों में कवि ने भारतीय लोकतंत्र की सच्ची और वास्तविक तस्वीर से लोगों को रूबरू कराया है। उन्होंने बड़े ही स्पष्ट शब्दों में कहा है कि भारतीय लोकतंत्र गुंडों का पर्याय बन गया है। सांप्रदायिकता, हिंसा का हिमायती हो गया है। चोर उच्चकों का रक्षक हो गया है। कागजी योजनाओं को बनाने वाला हो गया है, और कुर्सी के वास्ते नया प्रयोक्ता हो गया है।

"कितनी छोटी पड़ गई जब से तू कुर्सी हो गया,
हम तुझे इंसाँ समझ टोपी सिया करते रहे।"[18]

प्रभुता मिल जाने पर इंसान की फितरत बदल जाती है। भोली–भाली जनता से किए वादे सिर्फ वादे ही रह जाते हैं। हकीकत में उनका कोई मोल नहीं रह जाता।

"अरी प्रजा!!
तू तंत्र से नाहक करती रश्क।
भूख लगे खा आंकड़े प्यास लगे पी अश्क ।"[19]

शुक्ल जी ने लोकतंत्र पर करारा प्रहार किया है। अपनी व्यंग्यात्मक भाषा से बरबस ध्यान आकर्षित करने की अद्‌भुत क्षमता उनमें है।

"जब से बना सियासती गठरी का सामान,
पाँव आदमी का हुआ तब से लहूलुहान।"[20]

जबसे व्यक्ति राजनीति का हिस्सा हुआ है वो गठरी के सामान की तरह रहस्यमयी हो गया है। मन की थाह पाना मुश्किल ही नहीं असंभव है।

"जब से बहुचर्चित हुए यह बेतुके पलाश।
पंखुरी पंखुरी झर गए गीत गुलाब उदास।"[21]

जब कोई अयोग्य और विवेकी व्यक्ति सत्ता को प्राप्त कर लेता है यानी गुलाब के होते हुए पलाश के फूल चर्चित हो जाते हैं, तो उदास होकर गुलाब पंखुरी–पंखुरी झरने लग जाते हैं।

"सुर्खियां ऐलान करती, हर सुबह अखबार में,

लो खरीदो खास सपने, आ गए बाजार में।"[22]

आज का पूरा युग संत्रास का युग है। जीवन की सहजता नष्ट हो गई है। मानवीय मूल्य मिटते जा रहे हैं। सब कुछ दिखावे के लिए होता है। उसका हकीकत से कोई भी वास्ता नहीं है।

"आँकड़े आकर करेंगे
भूख की पैमाइशें,
फिर गरीबी पर बहस होगी,
नई सरकार में।"[23]

धार्मिक एकता– धर्म राष्ट्रीय एकता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। धर्म राष्ट्र की नींव है। धर्म ही एक ऐसा महत्वपूर्ण तत्व है जिसे राष्ट्र का आधार माना जाता है। धार्मिक एकता से राष्ट्र और राष्ट्रीय चेतना को बल मिलता है। धर्म की एकता का पालन करने वाले लोग राजनीतिक एकता में भी शीघ्र बँध जाते हैं। एक ही धार्मिक विधि–विधानों का आचरण करने वाले तथा एक ही प्रकार की धार्मिक श्रद्धा रखने वाले लोगों में आपसी स्नेह भाग का पनपना स्वाभाविक है। यही प्रेमभाव राष्ट्रीय भावना का पोषक बनकर उसे और अधिक मजबूत बनाता है। शुक्ल जी ने राष्ट्रीय एकता में धार्मिक एकता को आवश्यक माना है। आज की वैश्विक बाजार संस्कृति की चपेट में देश और राष्ट्र की पारंपरिक मौलिक आस्तिक भाव भूमि में जो बिखराब आया है तथा जिससे राष्ट्र की अस्मिता ही संकट में पड़ गई है उसे कोई बचा सकता है तो वह है माँ यानी ममता। डॉ. राधेश्याम शुक्ल ने माँ को संबोधित करते हुए एक गीत में मां की ममता का उल्लेख किया है–

"चूल्हे तक बाजार आ गया,
अम्मा, घर संभाल कर रखना,
सदियाँ तिनके जोड़–जोड़ कर,
नीड रचा था एक बया ने।"[24]

माँ से कवि ने निवेदन किया है कि बाजारीकरण की नीति ने घर के चूल्हे चौके को भी नहीं छोड़ा। यहां तक भी अपने पाँव पसार लिए हैं। घर की अस्मिता को भी नहीं छोड़ा पर माँ तुझे घर को बचाना है।

आज इंसानियत का रिश्ता बिखरता जा रहा है। आर्थिक संबंध इंसान को अपनी गिरफ्त में ले रहे हैं। आज इंसान का इंसान से रिश्ता आर्थिकता के आधार पर बनने लगा है। देश की राष्ट्रीयता को बचाने के लिए इससे ऊपर उठना पड़ेगा।

"देश को मत देख,
आँखें हैं तो सरकारों को देख,
सर नवा, कंधे झुकाकर,
चंद परिवारों को देख।"[25]

उपर्युक्त पंक्तियों में साहूकारी गुणगान की बढ़ती प्रवृत्ति पर करारा प्रहार किया गया है। कवि के मन में आशंका आज के तथाकथित विकास के प्रति ग्लोबल अर्थव्यवस्था के प्रति भी है। कवि मन जानता है कि यह व्यवस्था आसुरी है। इस बाजारी अर्थव्यवस्था में जो चमक–दमक है वह सोने की लंका के जैसी ही है। उस की चकाचौंध में मनुष्य की स्थापित अस्मिता खोने का डर बना हुआ है।

"चमकदार चीजों से,
भरा पड़ा ग्लोबल बाजार,
कबीरा क्या लेगा,
इधर देख,
सोने की लंका,
जहाँ सभी हैं सात हाथ के।"[26]

निष्कर्ष– राष्ट्रीयता एक ऐसा मनोभाव है, जिसका मूल्य मातृभूमि की स्वतंत्रता और संस्कृति की रक्षा है। मातृभूमि के प्रति देशभक्ति की भावना का संचार राष्ट्रीय चेतना है। राष्ट्रीयता एक विशुद्ध आध्यात्मिक भावना है, जो उन सभी लोगों में समान रूप से पाई जाती है जिनका देश, भाषा, धर्म, राजनीति, इतिहास, साहित्य, नस्ल एक समान होते हैं। राष्ट्रवाद के निर्णायक तत्व में राष्ट्रीयता की भावना सबसे महत्वपूर्ण है। राष्ट्रीय एकता एक सामुदायिक भावना है।

आज एशिया, यूरोप और अफ्रीका आदि के तमाम देश कुछ स्वदेशीय, कुछ विदेशी आतंकियों से जूझ रहे हैं। कुछ देशों के बीच शीत युद्ध चल रहा है। प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से तटस्थ से लगने वाले देश भी कहीं न कहीं किसी के हिमायती बने हुए हैं। ऐसे में मानवीय भावनाओं से मतलब रखने वाले मनीषी और चिंतक साहित्यकार 'पूरब' के हो या 'पश्चिम' के, उद्विग्न हो गए हैं। इस तरह विकसित पूंजीवादी एवं तथाकथित उदारवादी देशों द्वारा भूमंडलीकरण की जो परिकल्पना की गई है, वह व्यवहारिकता पर खरी उतर ही नहीं सकती। वह दिवास्वप्न ही बनकर रह गई है। दूसरी बात यह है कि पश्चिमी प्राद्यौगिकी के अंधानुकरण के बलबूते पर चमकीले विकास या मनमोहक भ्रम जाल लिए एक आंधी सी भारत में आई, जिसके विवेकहीन प्रभाव में पड़कर भौतिक उपलब्धियाँ ही हमारा लक्ष्य बन गया। गैर जरूरी वस्तुओं को महत्व दिया जाने लगा। बाजारवाद और उपभोक्तावाद के चलते क्रय शक्ति का आधार पैसा सर्वोपरि हो गया। फलत: युवा पीढ़ी,

येन, केन प्रकारेण इसे प्राप्त करने के लिए विवेकहीन होकर इस दौड़ में शामिल हो गई है। जिसकी कोई मंजिल ही नहीं है। इस अंधी हवस के चलते स्वदेश प्रेम, देश भक्ति, राष्ट्र के प्रति लगाव दृष्टि से ओझल होते जा रहे हैं। आवश्यकता है इन सब को बचाने की, देशवासियों में राष्ट्रीयता के प्रति अनुराग जगाने की, देशभक्ति रूपी प्रकाश स्तंभ को सहेज कर रखने की, हमारा भारतवर्ष निराशा का नहीं आशा का देश है। डॉ. राधेश्याम शुक्ल के शब्दों में–

"देश ने जब भी कभी बलिदान मांगा,
देश का सोया हुआ अभिमान जागा,
एक, दो क्या सर हजारों कट गए हैं,
और काले घन दहल कर फट गए हैं।"[27]
"छोड़ दो मत भेद सारे वक्त ऐसा आ पड़ा है,
देश हित सब स्वार्थ त्यागो, देश हम सबसे बड़ा है।"[28]

संदर्भ सूची -

1. अग्रवाल रामचंद्र, राजनीति शास्त्र के सिद्धांत, पृ॰–83
2. शर्मा देवराज पथिक नई कविता में राष्ट्रीय चेतना, पृ॰–24
3. प्रसाद, कालिका, वृहत् हिंदी शब्द कोश, पृ॰–384
4. पालिवाल कृष्ण दास, सृजन की नई भूमिका, पृ॰–13
5. डॉ. शुक्ल राधेश्याम, 'देशराग', हमारे देश की धरती पृ॰–12
6. वही, पृ॰–13
7. वही, पृ॰–50
8. डॉ. शुक्ल राधेश्याम, 'देशराग', इंद्रजाल और हम, पृ॰–53
9. डॉ. शुक्ल राधेश्याम, 'देशराग', राष्ट्रीय स्वाभिमान, पृ॰32
10. गोस्वामी शिवाकांत, दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय भावना, पृ॰–25
11. डॉ. शुक्ल राधेश्याम, 'देशराग', पृ॰–78
12. डॉ. शुक्ल राधेश्याम, 'त्रिकाल के गीत' पारिवारिक रिश्ते, पृ॰–209
13. डॉ. शुक्ल राधेश्याम, पंखुरी पंखुरी झरता गुलाब, त्रिकाल के गीत, पृ॰–209
14. डॉ. शुक्ल राधेश्याम, 'त्रिकाल के गीत' पारिवारिक रिश्ते, पृ॰–209
15. डॉ. शुक्ल राधेश्याम, बेपीर सदी के साक्षी रचनाकार, पृ॰–21
16. डॉ. शुक्ल राधेश्याम, 'देशराग', देश मेरे, पृ॰–14
17. डॉ. शुक्ल राधेश्याम, 'दरपन वक्त के, पृ॰–23
18. डॉ. शुक्ल राधेश्याम, 'त्रिकाल के गीत', पृ॰–45
19. वही, पृ॰–48
20. वही, पृ॰–48

21. डॉ. शुक्ल राधेश्याम, पंखुरी पंखुरी झरता गुलाब, पृ॰—28
22. डॉ. शुक्ल राधेश्याम, एक बादल मन, पृ॰—63
23. वही, पृ॰—63
24. डॉ. शुक्ल राधेश्याम, 'त्रिकाल के गीत', पृ॰—46
25. वही, पृ॰—60
26. डॉ. शुक्ल राधेश्याम, बेपीर सदी के साक्षी रचनाकार, पृ॰—21
27. डॉ. शुक्ल राधेश्याम, 'देशराग', देश मेरे, पृ॰—10
28. डॉ. शुक्ल राधेश्याम, 'देशराग', देश मेरे, पृ॰—13

राष्ट्रीय चेतना

भूमिका*

इस विषय के संदर्भ में आगे बढ़ने से पहले यह जानना लाज़िमी है कि एक राष्ट्र की परिभाषा क्या है? इस प्रश्न के उत्तर की ओर बढ़ने से पहले इस बात की स्पष्टता आवश्यक है कि देश और राष्ट्र पर्यायवाची नहीं है। देश एक भौगोलिक इकाई है और भूमि, जन और संस्कृति के संघात से जन्म होता है एक राष्ट्र का। देश को आप चिह्नित कर सकते है, किंतु राष्ट्र एक सोच का नाम है, एक भावना का नाम है । और ये भावना तब जन्म लेती है, जब हम अपनी जन्मभूमि के प्रति कृतज्ञता का भाव रखते हैं, अपनत्व और अगाध प्रेम की भावना रखते हैं। ये तब जन्म लेती है जब हम विभिन्न जाति, धर्मों, भाषाओं और राज्यों की मौजूदगी में भी खुद को एकता के सूत्र में बंधा हुआ महसूस करते हैं। और इन भावों का फलीभूत होना ही राष्ट्र के प्रति चेतना का परिचायक है। और कवि रामावतार त्यागी के शब्दों में इस चेतना की पराकाष्ठा है–

तन समर्पित, मन समर्पित और यह जीवन समर्पित
चाहता हूँ, देश की धरती तुझे कुछ और भी दूँ।

एक जीवन में व्यक्ति माँ के गर्भ के साथ–साथ एक संस्कृति से भी जन्म लेता है। जिस संस्कृति से हमने जन्म लिया है, उसका नाम है भारतीय और जिस धरा पर हमने जन्म लिया है, वह है भारत। इसी भारतवर्ष के प्रति चेतना के भाव बोध की मैं बात करने जा रही हूँ।

गत वर्ष केंद्रीय सरकार ने भारतीय स्वतंत्रता की 75वीं वर्षगांठ (जो 15 अगस्त, 2022 को मनाई जाएगी) के उपलक्ष्य में 'आज़ादी का अमृत महोत्सव' का आगाज़ किया। जिसका एक उद्देश्य यह भी है कि प्रत्येक भारतीय उन शहीदों और वीर बलिदानियों के अदम्य साहस, त्याग व त्पस्या से भी अवगत हो जो एक स्वतंत्र भारत का वजूद तो सुनिश्चित कर गए, परंतु उनके बलिदान की गाथाएं कभी गाई नहीं गई, जिन पर ना कभी पुष्प अर्पित हुए, ना दीप जले। जब–जब आज़ादी की बात होती है, तो कुछ गिने–चुने आठ–दस लोगों को स्वतंत्रता का श्रेय देकर वाणी को विराम दे दिया जाता है। किंतु ऐसे असंख्य वीर सपूत हैं जो अपना सर्वस्व मां भारती के चरणों में अर्पित कर गए। और ऐसे ही नाम हैं –शहीद खुदी राम बोस और प्रुफल्ल कुमार चाकी। खुदीराम का जन्म 3 दिसंबर, 1889 को मिदनापुर के हबीबपुर मुहल्ले में हुआ था। इनके पिता त्रैलोक्यनाथ बसु ने ड़ाजल इस्टेट के तहसीलदार कुमार थे और माँ लक्ष्मीबाई देवी गृहिणी। खुदीराम ने कक्षा 9 तक पढ़ाई की और फिर अनुशीलन समिति नाम एक संस्था से जुड गए जो क्रांति के प्रचार–प्रसार का काम करती थी। 15 वर्ष की आयु में खुदीराम पहली बार गिरफ्तार

* विद्यार्थी (एल.एल.एम) पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

हुए, जुर्म था अंग्रेज़ी सरकार के खिलाफ पर्चे बांटना। उन दिनों जिला सेशन जज हुआ करते थे डग्लस किंग्सफोर्ड, जिन्हें भारतीय इतने नापसंद थे कि छोटे से छोटे केस में भी वे उन्हें 15 कोड़े की सज़ा देते थे। अनुशीलन समीति ने तय किया कि डग्लस को मार कर भारतीयों पर होने वाले जुल्म का बदला लिया जाएगा। पहली कोशिश में किताब में छुपाकर एक बम डग्लस के पास भेजा गया, परंतु उसने वह किताब खोली ही नही और कोशिश नाकाम रही। और तब तक अंग्रेज सरकार ने उनका तबादला मुज़फ्फ़रपुर, बिहार में कर दिया। और समिति के मिशन को अंजाम देने के लिए खुदीराम अप्रैल, 1908 में मुज़फ्फ़रपुर पहुंचें। उनके साथ थे– प्रफुल्ल कुमार चाकी।

दोनों ने पहुंचकर मोतीझील इलाके में एक धर्मशाला में कमरा किराए पर लिया। इस धर्मशाला का मालिक एक बंगाली ज़मींदार था। उन्हें लगा कि दो बंगाली अगर एक बंगाली धर्मशाला में रहेंगे, तो किसी को शक नहीं होगा।

दो बंगाली एक अनजान शहर में थे, जिसकी भाषा भी वे नहीं जानते थे, इसके बावजूद वे वहाँ डटे रहे। सही मौका देखकर व डग्लस की दिनचर्या का पता लगाकर वे 30 अप्रैल की शाम को किंग्सफोर्ड हाउस के बाहर पहुँच गए। वहाँ मौजूद सिक्योरिटी गार्ड ने उन्हें वहाँ से भगाना चाहा, लेकिन दोनों नजदीक ही एक पेड़ के पास जाकर बैठ गए। जैसे ही रात 8 बजे घर से बग्गी निकली तो खुदीराम ने दौड़ते हुए उसकी ओर एक बम फेंका, जिससे बग्गी में धमाका हो गया। खुदीराम को लगा वे अपने मिशन में कामयाब हो गए हैं। लेकिन जिस बग्गी में बम फेंका गया उसमें डग्लस था ही नहीं। उसमें वहां के लोकल बैरिस्टर प्रिंगल केनेडी की बेटी और पत्नी बैठे थे जो किंग्सफोर्ड हाउस डग्लस से मिले आये हुए थे। इस हमले में दोनों की मौत हो गई।

जैसे ही बम धमाका हुआ खुदीराम तथा चाकी वहाँ से भाग निकले। दोनों को शहर में कोई जानता भी नहीं था, इसलिए संभव था कि वो वहां से निकल जाते। परंतु दुर्भाग्यवश गलती से उनकी चादर और जूते वहीं छूट गए, जो पुलिस के हाथ लग गए। उसी रात पुलिस ने सारे शहर में मुनादी करवा दी –दो बंगाली लड़के हत्या के जुर्म में फरार है और जो उनकी खबर देगा, उसे 5000 रूपए का इनाम दिया जाएगा। दोनों को लगा कि अगर साथ भागे तो लोगों को शक होगा, इसलिए दोनों ने अलग–अलग होना बेहतर समझा।

1 मई, 1908 को चाकी समस्तीपुर रेलवे स्टेशन पहुंचे। परंतु वहां पर पकड़ लिए गए और जब खुद को पुलिस के चंगुल से आज़ाद करने की असमर्थता का आभास हुआ तो पुलिस कांस्टेबल की रिवॉल्वर से खुद को गोली मार दी। चाकी ने पुलिस को अपना नाम दिनेश चंदरे बताया था। उसकी शिनाख्त करने के लिए पुलिस ने चाकी का सिर काटकर, कलकत्ता भिजवाया ताकि ये पक्का हो सके कि यही प्रफुल्ल कुमार चाकी है। इधर खुदीराम रेलवे ट्रैक पर चलते–चलते 30 किलोमीटर चल चुके थे और वैनी रेलवे स्टेशन पहुंच गए। भूख–प्यास से उनका बुरा हाल था। जैसे ही वो स्टेशन में पानी पीने पंप के पास गए, उन्हें पुलिस ने चारों ओर से घेर लिया। खुदीराम के पास बंदूक भी थी,

पर वे इतना थक चुके थे कि कुछ कर नहीं पाए। पुलिस उन्हें पकड़कर मुज़फ्फ़रपुर, स्टेशन ले गई। तब तक उनकी गिरफ्तारी की खबर चारों तरफ आग की तरह फैल चुकी थी। किसी को यकीन नहीं हो रहा था कि 18 साल के लड़के ने किसी अंग्रेज को मार गिराया है। जैसे ही खुदीराम पुलिस वैन से उतरे, तो ज़ोर से चिल्लाए– वंदें मातरम्।

13 जून, 1908 को इस मामले में फ़ैसला सुनाते हुए जज ने खुदीराम को फांसी की सजा सुनाई। जज भी हैरान था कि मौत सामने थी, लेकिन 18 साल के उस लड़के के चेहरे पर शिकन तक ना थी। तो फ़ैसला देने के बाद जज ने खुदीराम से पूछा– 'क्या तुम फैंसला समझ गए हो?' खुदीराम ने जवाब दिया– 'हां, लेकिन मैं कुछ कहना चाहता हूं अगर मुझे मौका दिया जाए तो मैं ये बता सकता हूं कि बम कैसे बनाया गया था'। जहाँ खुदीराम को मौत की सज़ा दी जा रही थी, वहाँ वे इस फिक्र में थे कि बम बनाने का फॉर्म्युला ज़्यादा से ज़्यादा लोगों तक पहुंचा सकें।

11 अगस्त, 1908 को प्रातः 6 बजे खुदीराम को फांसी पर चढ़ा दिया गया। जहाँ मरने से पहले बेबाकी से से खुदीराम ने गाया–

हाँसी–हाँसी चोडबों फांसी, देखबे भारतबासी
एक बार बिदाय दे मां, घूरे आसी।

हिंदी में जिसका अर्थ है, एक बार मुझे विदा दो माँ मैं जल्दी लौटूंगा। पूरे भारत के लोग मुझे देखेंगे और मैं हँसते–हँसते फांसी पर झूल जाऊंगा।

खुदीराम के बलिदान ने आज़ादी के आंदोलन को एक नई ऊर्जा दी। पहली बार भारतीयों को लगा कि जब एक छोटा सा लड़का आज़ादी के लिए जान दे सकता है, तो वो क्यों नहीं । बच्चे–बच्चे के लिए खुदीराम एक मिसाल बन गए। खुदीराम जनता के बीच इतने लोकप्रिय थे कि उनकी चिता की भस्म लेने दाहस्थल पर लागों में होड़ लग गई थी। माताओं ने बच्चों के गलों में उनकी राख के ताबीज बांधे। बंगाल के जुलाहे एक खास किस्म की धोती बुनने लगे थे, जिनके किनारे पर 'खुदीराम' लिखा होता था। स्कूल–कॉलेज में पढ़ने वाले लड़के इन धोतियों को पहनकर सीना तान कर चलते थे। कुछ इस प्रकार का जुनून प्रत्येक भारतीय के हृदय में अपने राष्ट्र को लेकर समाहित था। माताओं की चाहत थी कि उनके लाल भी खुदीराम बोस बनें।[1]

आज मुज़फ्फ़रपुर, एक शहर नहीं बल्कि इन क्रांतिकारियों की चेतना का स्मृति–स्थल भी है। यहाँ पर 'शहीद खुदीराम बोस केंद्रीय कारा' के द्वारा पर शहीद की काल कोठरी और कारागार परिसर में लगी उनकी प्रतिमा को देखने के लिए किसी को भी घंटों प्रतीक्षा करनी पड़ सकती है। और यह इतनी दुर्भाग्यपूर्ण्ज़ बात है क्योंकि इस प्रतीक्षा का कारण आप और मुझ जैसे नागरिकों द्वारा इस अमर बलिदानी के प्रति श्रंद्धाजंलि अर्पित करने हेतु उमड़ी भीड़ नहीं होगी, वरन् यह देरी जेल परिसर में मौजूद बेशुमार झाड़ियों और कूड़े के ढेर के कारण होगी। जिस फांसीघर में उन्हें लटकाया गया था, उसे भी आज बंद किया जा चुका है और जेल अधिकारी प्रायः उनकी कोठरी को देखने की

अनुमति ही नहीं देते। और जिस वैनी स्टेशन पर खुदीराम को पकड़ा गया था वहां आसपास के ही कुछ लोगों ने चंदा इकट्ठा करके उनकी एक प्रतिमा लगवा दी है, लेकिन उसकी देखरेख करने वाला कोई नहीं है। और ठीक इसी प्रकार जिस सड़क पर स्थित किंग्सफोर्ड़ के बंगला के सामने बंम फैंका गया था वहाँ पर लगी खुदीराम और चाकी की तस्वीर उनके चित्रों से मेल नही नहीं खाती। ये स्मारक उपेक्षित से कर दिए गए हैं। चाकी की प्रतिमा के नीचे तो उनका परिचय भी अंकित नहीं है। इस पर लगी पट्टिका शायद खंडित होकर टूट–बिखर गई होगी जिसे ठीक कराने की जिम्मेदारी का बोध किसी को हुआ नहीं होगा। खुदीराम पर बांगला में कई पुस्तकें लिखी गई, जिनमें रक्षित राया, ईशनचंद्र महापात्र, दीपक राय, विपल्प चक्रवर्ती तथा नागेंद्र कुमार गुहाराय का लेखन विशेष महत्व रखता है। लेकिन कभी इन पुस्तकों को हिंदी में छपाने के प्रयास नहीं हुए। मजिस्ट्रेट के सामने दिए खुदीराम के सभी बयान बांगला में थे जो आज मूल रूप में उपलब्ध ही नहीं है। सरकारी रिकार्ड में केवल उनका अंग्रेजी अनुवाद ही सुरक्षित है।[2]

ये तो केवल दो शहीदों के बलिदान की गाथा है, ऐसे हज़ारों व लाखों शहीदों की कुर्बानी से राष्ट्र निर्माण का वह स्वप्न सिंचित हुआ है, जिसे चाणक्य ने देखा था, 1857 के गदर ने चिंगारी दी थी, सत्याग्रह ने बल दिया था और जो अंततः 1947 में एक स्वतंत्र भारत के रूप में विश्वपटल पर आया।

और आज जब उस आजाद भारत की आज़ादी को 75 वर्ष पूरे होने जा रहे हैं, वहीं दूसरी और खुदीराम और चाकी जैसे शहीदों की विलुप्त होती विरासत देख मन में प्रश्न उठता है– हम इतने अविनम्र कैसे हो गए? ऐसा कैसे हो सका कि हम इनके विचारों को अपनी जीवन में स्थान नहीं दे सके? रेडियों से कभी गूंजा यह संबोधन ''मैं सुभाष बोल रहा हूँ'' नए युवाओं के हृदय से कभी क्यों नहीं जुड़ सका? आज़ाद हिंद फौज की रचना, सावरकर की काले पानी की सज़ा को हम क्यों केवल एक इतिहास की घटना की तरह देखकर आंख मूंद गए?

महाभारत के युद्ध के बाद पितामह भीष्म ने युद्धिष्ठर से कहा था कि राष्ट्र ही सबसे बड़ा धर्म है और देशभक्ति ही सबसे बड़ी पूजा। शहीदों के लहू से तो यह राष्ट्र पहले ही सिंचित किया जा चुका है। अब इसे आवश्यकता है एक नई पौध की, जो भले ही बलिदान ना हो, परंतु अपने ज़हन में बलिदानियों के प्रति सम्मान व कृतज्ञता का भाव आवश्य रखती हो, उनके विचारों का अनुसरण करती हो, उस दृष्टिकोण का पालन करती हो जिसके चलते उनके लिए भारत एक भूखंड नहीं अपितु उनकी भारत माता थी। और इस भारत माता के प्रति कृतज्ञता का भाव, भक्ति का भाव केवल राष्ट्रगीत व राष्ट्रगान की पंक्तियों में समाहित नहीं है, ना ही ये भारत माता की जय के नारों की अधिकतम आवृत्ति में समाहित है, ये तो जनमानस के हृदय में विद्यमान वह पवित्र भावना है, जिसकी उद्देश्य प्राप्ति में देशभक्त अपने प्राणों को उत्सर्ग करता है और कामना करता है–

सुर मेरी साधना का शेष रहना चाहिए
मैं रहूं या ना रहूं, भारत ये रहना चाहिए।

तो आज ये भी इन शहीदों के प्रति एक श्रद्धांजलि है, राष्ट्र के प्रति कृतज्ञता के भाव की अभिव्यक्ति, है कि हम इन महापुरूषों राष्ट्र निर्माताओं की मूर्तियाँ तो लगवाएं मगर उससे पहले इनके सपनों व आदर्शें के भारत के निर्माण की बात करें। इनकी मूर्तियों को मालाएँ तो पहनाएं, पर यह ज़रूर सुनिश्चित करें कि इनके विचार उन मालाओं के तले ना दबे रह जाएं।

और जो हम सब सुनते आए हैं–

शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले।
वतन पर मिटने वालों का बाकी यह निशां होगा।

आज इसे एक नया आयाम देने का प्रयास करें। उनकी चिताओं पर मेले तो अवश्यक लगें, परंतु उनका केवल यही निशां बाकी न रह जाए। इस और अवश्य प्रयास हो कि जो खुद ख़त्म हो गए ताकि हम वजूद में आए जो अपनी सांस छोड़ गए ताकि हम सांस ले पांए, उनकी शैर्य गाथा, उनके जीवन मूल्य व जीवन दर्शन को हम आरती के थाल में सजाकर प्रत्येक घर की चौखट तक पहुंचाएँ और हमारा समाज इन्हें अपने चरित्र में और जीवन में आत्मसात कर राष्ट्र निर्माण की ओर बढ़ें।

संदर्भ–सूची

1. भट्ट कमल खुदीराम बोस : 18 साल का लड़का, जो फांसी का फंदा देख मुस्कुरा उठा,Thellallantop11August2011.www.thelallantop.com/bherant/thestory-of-one-of-the-youngest-martyrs-of-India-independence-movment-khudiram.bose/amp/
2. विद्यार्थी सुधीर, आज भी कैद में है खुदीराम बोस, अमर उजाला 26 नवंबर, 2021 पृष्ठ सं॰ 6

राहुल सांस्कृत्यायन के उपन्यास 'जीने के लिए' में राष्ट्रीय चेतना के स्वर

गुरप्रीत कौर*

मानव का अस्तित्व समाज में तथा समाज का अस्तित्व मानव में निहित है। समाज में मानव, उसकी संस्कृति रहन–सहन, भाषा सभी कुछ निहित होता है। इन सब से ही राष्ट्र का निर्माण होता है। "भूमि पर निवास करने वाले मनुष्य तथा उन मनुष्यों की संस्कृति– ये तीन तत्व मिलकर राष्ट्र का स्वरूप बनाते हैं। भूमि अर्थात् भौगोलिक एकता, जन अर्थात् जनगण की राजनीतिक एकता और सांस्कृतिक एकताः तीनों के संगठित रूप को राष्ट्र कहते हैं।"[1] राष्ट्र और चेतना दोनों ही शब्द स्वतंत्र है। दोनों को मिलाने से राष्ट्रीय चेतना एक शक्ति के रूप में बदल जाती है। वर्तमान समय में मानव जिस स्थिति में पहुँचा है वह उसकी चेतना का ही परिणाम है। मानव में चेतना जड़ या अपूर्ण न होकर पूर्णता की ओर अग्रसर है। मानव की चेतना अन्य प्राणियों से सर्वथा भिन्न है। यह मनुष्य को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाती है। मानव चेतना के द्वारा ही विशाल, स्थूल, सूक्ष्म, भेद, अभेद, के अंतर को जान पाता है। मानव अपनी बुद्धि की सक्रियता के कारण ही अन्य प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ स्थान रखता है। बुद्धि की सक्रियता भी चेतना पर ही निर्भर करती है। इसी चेतना के द्वारा ही मानव आदिकाल से सामूहिक जीवन जीता आ रहा है तथा अनेक प्रकार की कला तथा कौशलों का विकास करता रहा है। चेतना का संबंध मानव शरीर तथा आत्मा के साथ है। जिस प्रकार सूर्य अपनी रोशनी के द्वारा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करता है। उसी प्रकार ही चेतना भी आत्माको प्रकाशित करती है। जब तक शरीर में आत्मा रहती है चेतना का प्रचार–प्रसार तथा वह प्रफुलित होती रहती है। जब शरीर से आत्मा निकल जाती है या देह त्याग देती है तो चेतना भी लुप्त हो जाती है। चेतना के कारण ही व्यक्ति अपनी आस–पास की घटनाओं को जानने की क्षमता रखता है।

राष्ट्र को हम अपनी सांस्कृतिक धरोहर मान सकते हैं क्योंकि यह आधुनिक संकल्पना न होकर बहुत ही प्राचीन है। इसका संबंध साहित्य के साथ भी पुराना ही है। राष्ट्र तथा साहित्य, एक दूसरे में संलग्न होने के कारण जनमानस में राष्ट्र के प्रति चेतना को जगाने, मजबूत करने में बल मिलता है। किसी भी काल की परिस्थितियों को साहित्य के द्वारा ही समझा जा सकता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने भी कहा है कि "प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चितवृति का संचित प्रतिबिंब होता है।"[2] हिन्दी साहित्य के प्रत्येक कालखण्ड में राष्ट्रीयता के स्वर देखने को मिलते हैं। आदिकाल में चन्दबरदाई जैसे कवियों ने कलम द्वारा राष्ट्रीयता की भावना को बढ़ावा दिया। भक्ति काल में अनेक संत कवि तथा रीतिकाल में भूषण ने शिवाजी और छत्रसाल की वीरता के द्वारा राष्ट्रीयता का जयघोष किया। राष्ट्रीय चेतना अपनी पूरी शक्ति के साथ आधुनिक काल में प्रवाहित होती है।

* (शोधार्थी), हिन्दी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल की प्रमुख विशेषता राष्ट्रीय चेतना ही कही जा सकती है क्योंकि यह काल परतंत्रता का काल था। स्वतंत्रता के लिए जनता के मन में राष्ट्र के प्रति चेतना के भाव पैदा करना अतिआवश्यक था। भारत में राष्ट्रीयता का विकास तब से माना जाता है जब से अंग्रेजी राज की सत्ता पूर्ण रूप से केन्द्रीय सत्ता के रूप में विकसित हो गई थी। राष्ट्रीय चेतना की भावना साहित्यकारों में ऐसी घटी कि वह साहित्य का सुर बनकर जनमानस में भी राष्ट्र के प्रति कुछ कर गुजरने की भावना को पैदा करने में कामयाब सिद्ध हुई। "देश भक्ति का उद्वेलन कभी समर्पण तो कभी आंदोलन का रूप धारण कर लेता है। जिससे व्यक्ति के स्वत्व से लेकर राष्ट्र तथा देश की स्वतंत्रता और समानता की सुरक्षा के लिए र्स्वस्व समर्पण तक के भाव समाविष्ट होते हैं।"[3] स्वतंत्रता मानव का मूल सिद्ध अधिकार भी है, मानव जीवन का लक्ष्य भी। परिस्थितियाँ चाहे कैसी भी हो मानव को उनसे समझौता नहीं अपितु डटकर मुकाबला करना या संघर्ष करना चाहिए। समझौता तो आम आदमी जो भला हो या साधारण हो वही करता है। जब बात साहित्यकार की आती है तो वह तो प्रतिभावान व्यक्ति होता है। जो किसी भी तरह के परिवेश से समझौता नहीं अपितू लड़ाई करके अपनी स्वतंत्रता को हासिल कर लेता है। हिन्दी के विभिन्न उपन्यासकारों ने स्वतंत्रता प्राप्ति के विचारों का निर्वाह, विभिन्न स्वाधीनता संघर्ष के दौर में हुए आंदोलनों के प्रति सरकार की दमन नीतियों तथा क्रांतिकारियों की घटनाओं को उपन्यास के विषयों का आधार बनाया। मुंशी प्रेमचंद, जैनेन्द्र, अज्ञेय, यशपाल, वृंदावनलाल वर्मा, राहुल सांस्कृत्यापन जैसे उपन्यासकारों ने स्वाधीनता संग्राम को अपने उपन्यास का विषय बनाया है।

महापंडितराहुल सांस्कृत्यायन एक ऐसे ही उपन्यासकार है जिन्होंने 'जिन के लिये' उपन्यास में स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए विभिन्न आंदोलनों के द्वारा जो जनता में राष्ट्रीय चेतना की जागृति हुई है उसको उभारा है। इस उपन्यास में उनके मार्क्सवादी तथा प्रगतिवादी रूप की झलक स्पष्ट दिखाई देती है। इस उपन्यास में रूस–जापान युद्ध में जापान की विजय के कारण उत्पन्न भारतीय राष्ट्रीयता का भाव, बंगभंग, गरम और नरम दल, कृषक आंदोलन, मजदूर आंदोलन आदि के द्वारा राष्ट्रीय चेतना का वर्णन किया गया है साम्यवादी दर्शन के द्वारा लेखक ने 1905 से 1940 तक की विभिन्न गतिविधियों का वर्णन किया है।

आरम्भ में तो भारतीयों ने पूर्ण रूप से ही पराधीनता स्वीकार कर ली थी। अंग्रेजों ने अपने शासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए आवागमन के नये साधनों की स्थापना कि जिससे एक–दूसरे के सम्पर्क में आने में सहायता प्राप्त हुई। अपने स्वरूप को जानने का अवसर भारतीयों को प्राप्त हुआ। अंग्रेजों की नीतियों के बारे में भारतीय समझने लगे। शिक्षा के प्रसार ने भी राष्ट्रीय चेतना को जागृति प्रदान की। बंगभंग आंदोलन के कारण ही अंग्रेज सरकार को पुनः बंगाल को एक करना पड़ा। राहुल जी ने 'जीने के लिए' उपन्यास में बंगभंग की घटना का वर्णन किया है –

"यह वह समय था जब कि, बंगभंग के बाद सारे देश में खासकर बंगाल में जबरदस्त आंदोलन उठ खड़ा हुआ या और उसने सिर्फ वाचनिक रूप न धारणकर दूसरे

भयंकर आकार धारण किए थे। बड़े–बड़े अंग्रेज अफसर खुलकर बाहर निकलने की हिम्मत न करते थे। चारों ओर खुफिया पुलिस का दौर–दौरा था। हर हफ्ते कहीं न कहीं बम पकड़े जाने या गोली चलने की खबर आती थी।"[4]

विदेशी शासन की नीतियों के कारण जनता का जो शोषण तथा क्षोभ पैदा हुआ था उसका ही परिणाम 1857ई. में प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की चिंगारी को जन्म दिया था। स्वतंत्रता की चिंगारी भले ही देश में उठी थी परन्तु वह देश के राजाओं, धनिकों की स्वार्थता के कारण धीमी पड़ गई। जनता में तो राष्ट्रीय चेतना का प्रसार अवश्य ही हो चुका था।

"सन् सत्तावन के युद्ध में हम क्यों अपनी स्वतंत्रता नहीं पा सके? इसी एकता के अभाव के कारण। इसमें शक नहीं कि धनिकों और राजाओं ने स्वार्थ के कारण स्वतंत्रता के सैनिकों का विरोध किया और पराजय का वह भारी कारण हुआ। तो भी, यदि राष्ट्रीय एकता होती तो उस बड़े तूफान के सामने ये क्षुद्र स्वार्थी जीव टिक न सकते।"[5]

हर व्यक्ति तथा देश को स्वतंत्र रहने का अधिकार है। कोई भी सत्ता किसी को ज्यादा देर तक परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़कर नहीं रख सकती। देश के कितने ही नौजवानों ने अपनी जान पर खेलकर देश को आजाद करवाने में अहम भूमिका निभाई है। जांबाज नौजवानों की गतिविधियों के द्वारा ही जनता में चेतना जागृत हुई। सरकार ने अपनी गलत नीतियों द्वारा बेकसूर जनता को मौत के घाट उतारने से भी परहेज नहीं किया। उपन्यास में जब मोहनलाल को फाँसी की सजा सुनाई जाती है तो भी उसके चेहरे में उदासी न थी। वे कहते है –

"हरेक देश को अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए चाहे जो भी रास्ता स्वीकार करने का अधिकार है। मेरी तरह के हजारों नवयुवक देश की आजादी के लिए बेकरार है। हमारे लिए इससे बढ़कर अच्छी बात नहीं हो सकती कि अपनी मातृभूमि के लिए मरे।"[6]

राहुल जी ने 'जीने के लिये' उपन्यास में असहयोग आंदोलन के समय जो स्थितियाँ थी उनको दिखाया है। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, सरकारी स्कूलों तथा कचहरियों में जाना छोड़ दिया था लोगों ने। मजदूर हड़ताल पर थे। उपन्यास के नायक देवराज ने भी इस आंदोलन में भाग लिया था। तब वे भी इंग्लैंड से भारत आकर ब्रिटिश सेना द्वारा दिये तगमों को वायसराय को लौटा देता है। भारतीयों ने चाहे तन–मन से ब्रिटिश सरकार की सेवा कि लेकिन सरकार ने जलियाँवाला बाग हत्याकांड में निहत्थे तथा मासूम लोगों की हत्या कर अपनी बर्बरताका परिचय दिया है। देवराज अपने तगमों को लौटाते वक्त देश प्रेम का परिचय देता है तथा वायसराय को पत्र में लिखता है –

"इन तगमों से आपको मालूम होगा कि मैंने अंग्रेज सरकार की कुछ सेवा की है। लेकिन हमारी सेवाओं के बदले ब्रिटिश सरकार ने जलियाँवाला बाग जैसे हत्याकांड किए और वह ऐसे अत्याचारों को हर वक्त दुहराने को तैयार है। ऐसी अवस्था में इन पदकों को रखने में मेरे दिल को चोट पहुँचती है।"[7]

स्वाधीनता के लिए देश में अनेक ही छोटे बड़े आंदोलन होते रहे। इन आंदोलनों से जनता में जो राष्ट्रीय चेतना जागृत हुई उससे उन्होंने अपने हकों को प्राप्त करने में अहम भूमिका निभाई। देश में कितने ही मजदूर, कृषक आंदोलन हुए। 'जीने के लिये' उपन्यास में राहुल जी ने एक कृषक आंदोलन का प्रत्यक्ष रूप से अंकन किया है। मीनापुर के जमीदार रायबहादुर कन्हाई सिंह के अत्याचारों से तंग आकर देवराज तथा अन्य किसान उसके खिलाफ संघर्ष छेड़ देते है तथा अंत में विजय किसानों को मिलती है।

"अकेले मीनापुर से कन्हाई सिंह को दबते न देखकर उनकी जमीदारी के सभी गाँवों में किसानों ने जमींदार के साथ असहयोग शुरू किया। उनके नौकरों चाकरों पर बिरादरी का दबाव पड़ने लगा और वे भागने लगे। नौ मास बीतते–बीतते कन्हाई सिंह ने देखा कि वह अपने किसी नौकर–चाकर पर विश्वास नहीं कर सकते। पुलिस, जिलाधिकारी और सरकारी मदद होने पर भी उनकी इज्जत जनता की आँखों में खाक में मिल चुकी थी।"[8]

चेतना का संबंध मानव शरीर तथा आत्मा से है तो यह चेतना हर व्यक्ति में विद्यमान है।देश की आजादी या राष्ट्रीय चेतना के प्रति जागृति पुरुषों के साथ–साथ महिलाओं में भी आई। वह भी घर की चारदीवारी तथा चूल्हे–चौके से बाहर निकल कुछ करना चाहती थी। इतिहास गवाह है इस बात का कि कितनी ही वीरांगनाओं ने देश की आजादी में योगदान दिया है। पुरुषों के समान ही महिलाओं में भी राष्ट्रीय चेतना के भाव जागृत हुए। इसका उदाहरण 'जीने के लिये' उपन्यास के मीनापुर के कृषक आंदोलन में मिलते हैं।

"घर के पुरुषों के चले जाने पर किसान स्त्रियों ने बगावत का लाल झंडा उठाया। पुराने गीतों की जगह अबवह क्रांति के गीत गाती फिरती थी। सैकड़ों वर्षों तक सुधारकों के उपदेश जो काम नहीं कर पाए, वह इस छोटे से आन्दोंलन ने चंद महीनों में कर दिखाया। वह अब मुक्त थी और अपने पतियों की तरह अपने खेतों पर डटी हुई थी।"[9]

लेखक ने इस उपन्यास में मार्क्सवादी या साम्यवादी दृष्टि के द्वारा गरीब मजदूरों तथा किसानों में राष्ट्रीय चेतना की जागृति को अभिव्यंजित किया है। मार्क्सवादी विचारधारा के लोग मजदूर, गरीब तथा किसानों के बीच रहकर उनमें राष्ट्रीय चेतना को जागृत करते तथा राजनीतिक शिक्षा भी प्रदान करते थे। उपन्यास का नायक देवराज भी झरिया भी कोयला की खानों में मजदूर बनकर दो साल के लिये रहते हैं तथा मजदूरी करते और लोगों में चेतना फैलाते हैं। वह मजदूरों से कहते हैं –

"मजदूरों की तकलीफों के बारे में हम कर ही क्या सकते हैं जब कि उन्हें अच्छी तरह हम जानते भी नहीं है। मैंने कोइलरी में आकर स्वयं सब कठिनाइयों को देखा और इस अनुभव ने मुझे आपकी सेवा के लिए अधिक योग्य बनाया है।"[10]

1914 में जिस वक्त भारत पर ब्रिटिशों का शासन था तब प्रथम विश्व युद्ध छिड़ गया। इस युद्ध ने पूरे यूरोप महाशक्तियों को दो गुटों में बाँट दिया था। ब्रिटेन, फ्रांस, रूस तथा दूसरी तरफ जर्मन, आस्ट्रिया–हंगरी, इटली थे। भारत पर ब्रिटेन का शासन होने की

वजह से भारतवासियों ने पूरी लगन के साथ ब्रिटेन की तरफ से जर्मन सैनिकों का मुकाबला किया। ब्रिटिशों द्वारा भारतीय सैनिकों के साथ भेदभाव किया जाता था। उन्हें पैदल और सवार पलटन को छोड़ सैनिक बनने के सभी रास्तों पर मनाही थी। तोपखानों या शस्त्रों के ज्ञान से उन्हें वंचित रखा जाता था। उस समय भारतीय बुद्धिजीवियों को समझ आ चुका था कि भारत की स्वतंत्रता युद्ध–विज्ञान के उपयोग के बिना नहीं ली जा सकती। 'जीने के लिये' उपन्यास में राहुल ने इस बात को स्पष्ट किया है। जब देवराज सेना में युद्ध कौशलों को सीखने के लिए भर्ती होकर ब्रिटेन की तरफ से जर्मनी के खिलाफ युद्ध मोर्चों पर वीरता से लड़ता है। उसके मन में भारतीय या राष्ट्रीय चेतना का स्वर प्रखर रूप से मुखरित होता है।

"तोपखाने बिना देखे झंडियों, सीटियों और बिगुल की आवाज के इशारे से गोला छोड़ते हैं। सिपाही धावा बोलते हैं। मेरा चित्त कितना प्रसन्न होता, यदि मुझे स्वतंत्र भारत की तरफ से लड़ना पड़ा होता। मुझे तुम्हारे जैसे सौ ही जवान मिलते तो भी मैंदिखला देता कि हिन्दुस्तानी दिमाग भी आधुनिक सैनिक–विज्ञान का कितना अच्छा इस्तेमाल कर सकता है।"[11]

भारत भूमि के प्रति देशवासियों का जो अथाह प्रेम है।लेखक ने उसे इस उपन्यास में देवराज के माध्यम से व्यक्त किया है। कोई भी व्यक्तिजिस स्थान पर जन्म लेता है, पलता बढ़ता है उस स्थान को छोड़कर जब उसे अन्यत्र कहीं जाना पड़ता है तो उसकी भावनाओं को जो ठेस पहुँचती है उसे वही जान सकता है। अपनी जन्मस्थली को एक संवेदनशील व्यक्ति के लिए छोड़ना उसी प्रकार ही कष्टपूर्ण होता है जिस प्रकार एक माँ को अपने बच्चे से बिछुड़ने पर दुख होता है। देवराज युद्ध के लिए जब ब्रिटेन रवाना होता है तो वह जहाज कि डेक पर खड़े होकर भारत भूमि के लिए कुछ न कर पाने के लिए खुद को कोसता है। राष्ट्र के प्रति कुछ कर पाने की चेतना तो उसमें पहले से ही व्याप्त थी। उसी चेतना की वजह से ही वह सेना में भर्ती होता है।

"उस वक्त हृदय में विचित्र भाव पैदा हो रहे थे। जिस भूमि को इक्कीस साल से वह अपने जीवन का एक अंग समझ रहा था। आज वह उसे आश्रयहीन बना रही है। जिस भूमि को बन्धन मुक्त करने के लिए वह इतने दिनों से कड़ी साधना कर रहा था आज उन साधनाओं से कुछ भी फल प्राप्त किए बिना वह किसी अज्ञात स्थान के लिए प्रयाण कर रहा है।"[12]

देवराज में देश के लिए कुछ कर गुजरने की चेतना कूट–कूट कर भरी हुई थी। यह बात उपन्यास में कई स्थानों पर अभिव्यंजित हुई है। परतंत्रता के समय ऐसे कितने ही देशभक्त थे जिन्होंने राष्ट्र को आजाद करवाने के लिए देश की जनता में चेतना लाने का प्रयास किया। जिनमें भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरु, उधम सिंह, बाल–पाल–लाल ऐसे और भी कितने देशभक्त थे। देवराज की जेनी से वार्तालाप में उसकी देश भक्ति तथा चेतना स्पष्ट होती है।

"जीवन को गँवाना ही है तो किसी अच्छे काम के लिए और जिस देश ने इस शरीर को जन्म दिया उसकी करोड़–करोड़ सन्तानों के लिए अर्पण करने से बढ़कर इस जीवन का दूसरा उपयोग क्या हो सकता है।"[13]

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय देश में जितने भी आंदोलन तथा सत्याग्रह हुए उसमें देश की जनता ने बढ़–चढ़ कर भाग लिया। गाँधी जी ने तिलक स्वराज्य फंड के नाम पर जो एक करोड़ की अपील की थी जनता ने उसमें पूर्ण सहयोग दिया। आंदोलनों में देश की अनपढ़ गाँवों की जनता ने भाग भी लिया तथा सहायता भी प्रदान की। राष्ट्रीय चेतना गाँवों तक भी पहुँच चुकी थी।

"तिलक स्वराज्य फंड के लिए लोग किस तरह जोश दिखला रहे हैं। अभी मार्च समाप्त भी नहीं हुआ, तीन महीने के भीतर पचास लाख रुपये जमा हो गए। जरा ख्याल तो करो, हिन्दुस्तानी जनता के लिए इस तरह का सर्वव्यापी आंदोलन एक नई बात है और फिर तुमको मालूम होना चाहिए कि इस फंड में देने वाले अधिकांश गाँवों की अनपढ़ जनता है।"[14]

जब देश की एकता की बात आती है तो उसमें किसी धर्म का महत्व ज्यादा या कम नहीं अपितू एक समान ही होना चाहिए। देश की स्वतंत्रता में धर्म को आड़ नहीं आने देना सच्चे देशभक्तों की कोशिश थी। राष्ट्रीयता की चेतना को जागृत करने में जब धर्म आड़े आता है तो वह देश को परतंत्रता की ओर भी अग्रसर करता है। राजनीति के क्षेत्र में जब धर्म आड़े आता है तो इसमें देश को भारी क्षति ही पहुँचती है। राहुल जी ने भी उपन्यास में कई स्थानों पर स्पष्ट किया है कि देश की स्वतंत्रता में धर्म कहाँ आड़े आ रहा है। सेना के चप्पल–जूते उतारकर चूल्हा–चौंका करने से तो दुश्मन तब तक तो गोलियों की धड़ाधड़ बौछार से सैनिकों के चिथड़े उड़ा सकता है। देवराज स्वतंत्रता के लिए किसी भी तरह की बाधा को स्वीकार नहीं कर सकते। देशभक्तों या स्वतंत्रता प्रेमियों के भाषणों, सम्मेलनों ने जनता में धर्म से बढ़कर देश की स्वतंत्रता की चेतना जागृत की।

"अपनी राजनीतिक समस्याओं का हल धर्मों में खोजना बड़ी भारी गलती थी। धार्मिक विचारों के लिए स्वतंत्रता भले ही रहे लेकिन राजनीति में धर्म या दखल बहुत ही हानिकारक बात है। उसकी बातों का यह असर हुआ कि लोगों ने अर्थशास्त्र और राजनीति की किताबें पढ़नी शुरु की। सस्ती शहीदी से देश की परतन्त्रता को हटा देने का ख्याल निर्बल पड़ने लगा।"[15]

स्वतंत्रता की खुशबू या महत्व क्या होता है यह तो स्वतंत्र व्यक्ति या देश ही जान सकता है। विभिन्न देशों ने समय–समय पर दूसरे निर्बल देशों पर अपना अधिकार जमाया है। परतंत्रता को कोई भी ज्यादा दिनों तक सहन नहीं कर सकता। इतिहास को देखे तो कितने ही देशों ने आपस में युद्ध किए स्वतंत्रता के लिए। जापान के लोगों ने रूस से विजय प्राप्त की। ऐसे देशों के युद्ध से अन्य परतंत्र देशों को भी प्रेरणा मिली तथा उनमें राष्ट्रीयता चेतना के भाव जागृत हुए। स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए जान माल की हानि तो

उठानी ही पड़ती है परन्तु स्वतंत्रता कि महक जब देश में फैलती है तो देश का कौना–कौना खिल उठता है।

"मुझे अफसोस है कि आज आप स्वतंत्रता के महत्व को स्वीकार नहीं करना चाहते। आपयदि ठिगने जापान को यूरोप के शहरों में सर ऊँचा करके घूमते और लोगों को अदब से झुकते देखते, तब आपको मालूम होता कि स्वतंत्रता क्या चीज़ है।"[16]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि स्वाधीनता प्राप्ति के लिए किये गये संघर्षों का स्पष्ट प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा है। जहाँ एक ओर राष्ट्रीय नेता या स्वतंत्रता सेनानियों जनता में विभिन्न आंदोलनों, सत्याग्रहों तथा क्रांतियों के द्वारा जनता में राष्ट्रीय चेतना तथा जागृति लाने का प्रयास किया है वहीं दूसरी ओर साहित्यकारों ने उन घटनाओं का अंकन साहित्य में करके जनता में राष्ट्रीय चेतना लाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। इसकी स्पष्ट झलक राहुल सांस्कृत्यायन के उपन्यास 'जीने के लिये' में दिखलाई पड़ती है। इसमें 1905 से 1940 तक की स्वतंत्रता प्राप्ति की तमाम गतिविधियों के द्वारा भारतीय जनता में किस प्रकार राष्ट्रीय चेतना के भाव जागृत हुए को स्पष्ट देखा जा सकता है। वह चाहे बंगभंग आंदोलन हो, अन्य क्रांतिकारी आंदोलन, रूस जापान युद्ध, प्रथम विश्वयुद्ध, कृषक आंदोलन, मजदूर आंदोलन आदि को राहुल ने कथानक का विषय बनाकर स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए राष्ट्रीय चेतना के जो स्वर जनता में परिलक्षित हुए उनको अभिव्यक्ति दी है।

संदर्भ सूची–

1. डॉ॰ चातक, लक्ष्मीनारायण, आधुनिक हिन्दी कविता का इतिहास, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, 2009, पृ॰ सं॰ 92
2. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2008, पृ॰सं॰ 21
3. https://www.apnimaati.com. 4.08.2019
4. सांस्कृत्यायन, राहुल, जीन के लिये, किताब महल, इलाहाबाद, 1940, पृ॰सं॰ 52
5. वही॰ 54
6. वही॰ 69
7. वही॰ 241
8. वही॰ 365
9. वही॰ 365
10. वही॰ 321
11. वही॰ 115
12. वही॰ 119
13. वही॰ 161
14. वही॰ 234
15. वही॰ 269
16. वही॰ 291

'दशम ग्रंथ' : राष्ट्रीय चेतना का अजस्र स्रोत

डॉ॰ हरीश कुमार सेठी*

भक्ति और शक्ति के पुंज दशमेश गुरु गोविंद सिंह ने राजनीतिक अत्याचारों–अनाचारों से धर्म–विनष्ट हो रही जन–शक्ति में व्यावहारिक एवं साहित्यिक आधार पर पूर्ण सक्षमता के साथ शक्ति का संबल प्रदान किया। संगठन एवं शक्ति संचय की राजनीति से परिचित दशमेश, राजनीति के क्षेत्र में मुगल–शासक औरंगज़ेब की कूटनीति अथवा दुष्टनीति के विरोधी और त्याग–नीति के पक्षधर थे। राजनीति को लोकनीति से जोड़कर उन्होंने शक्ति एवं सामग्री का संचयन किया। मानव–मात्र के कल्याण के लिए उन्होंने 'खालसा–पंथ' का सृजन करके राष्ट्रीय आदर्श की स्थापना हेतु भक्ति–शक्ति से संपन्न एक कर्तव्यनिष्ठ सेना तैयार की और पद–दलितों को शूरवीर योद्धा बनाया। अपनी राष्ट्रीय भावना के अनुसार वे युद्ध को टालने की कोशिश करते, किंतु युद्ध लड़ने से कतई कतराए नहीं। उन्होंने मुगल साम्राज्य के साथ–साथ विरोधी पहाड़ी राजाओं तक का डटकर सामना किया। सीमित संसाधनों और मुगलों की विशाल सेना की तुलना में अत्यल्प सेना से सुसज्जित गुरु गोविंद सिंह एक से सवा–लाख सैनिक लड़ाने के संकल्प से उद्धृत होकर युद्ध करते एवं विजयी रहते।

समसामयिक राजनीतिक परिस्थितियों एवं विचार–दृष्टियों का साहित्यकार पर व्यापक पड़ना सहज स्वाभाविक है। अपने बाल्यकाल से लेकर जीवन–पर्यंत विषम राजनीतिक परिस्थितियों से जूझने के कारण दशमेश की विभिन्न रचनाओं में उसी के अनुरूप राष्ट्रीयता को भास्वर प्राप्त हुआ। हालाँकि उन्होंने राष्ट्रीयता का उद्घोष करने वाले किसी ग्रंथ का प्रणयन नहीं किया, किंतु अपनी विभिन्न रचनाओं में यत्र–तत्र राजनीतिक धारणाएँ उद्घाटित कीं, राष्ट्रीय चेतना की अलख जगाई। लेकिन, उनकी राजनीति विषयक दृष्टि न केवल राष्ट्रीय भावना में अंतर्भूत थी, अपितु अत्यंत व्यापक एवं उदार भी थी, जिसका चरम था – मानव कल्याण। इसे लक्षित करती उनकी साहित्यिक–निधि 'दशम–ग्रंथ' में युगीन राजनीतिक जीवन के परिपार्श्व में राष्ट्रीय एकता की उद्भावना नियोजित नजर आती है।

'राष्ट्र' विषयक भावना और गुरु गोविंद सिंह : दृष्टि और सृष्टि

मनुष्य ने अनादिकाल से ही मातृभूमि को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की है। मातृभूमि की रक्षा की भावना, मनुष्य के दायित्व–बोध को स्वर प्रदान करती है। दायित्व की इस पुनीत भावना को जन–समुदाय द्वारा अपने कर्तव्य के रूप में अपनाना राष्ट्र के अस्तित्व के लिए आवश्यक है। राष्ट्र, भौगोलिक रूप से ऐक्यबद्ध क्षेत्र में रहने वाली जातीय एकता की जनसंख्या के रूप में व्यक्त किया जाता है, जिनमें भाषा, धर्म, रीति–रिवाज,

* असिस्टेंट प्रोफेसर, एअनुवाद अध्ययन एवं प्रशिक्षण विद्यापीठ, ब्लॉक 15–सी, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली–110 068.

अध्यात्म, मनोविज्ञान आदि की एक–जैसी चेतना बनी हो और जो राष्ट्रहित में सहायक हो। एक बार यह चेतना प्राप्त कर लेने पर जातीय विभिन्नता का महत्व घट जाता है और 'राष्ट्र' जातीय एकता का वाचक बन जाता है। इस प्रकार, एक ही राज्य अथवा शासन के अंतर्गत लोगों की एकता की चेतना राष्ट्र है। राष्ट्रीय भावना का संबंध किसी निश्चित भूखंड के स्थायी निवासियों में आध्यात्मिक एवं मनोवैज्ञानिक कारणों से मूलतः आशाओं, आकांक्षाओं, इतिहास, संस्कृति और व्यापक कल्याण की परिकल्पनाओं से पुष्ट एकता की चेतना से है।

राष्ट्रीय चेतना का संबंध राष्ट्रीयता की भावना की अभिव्यक्ति से है। लेकिन, यह कोरी भावुकता न होकर इसमें राष्ट्र के हित में सामाजिक–सांस्कृतिक, धार्मिक एवं जातीय ऐक्यबद्धता एवं समन्वय की कामना निहित है। इसी कामना से 'वसुधैव कुटुंबकम्' की मानवीय अनुभूति सार्थक हो पाती है और व्यक्ति निजी स्वार्थों से ऊपर उठकर समष्टि कल्याण की ओर उन्मुख होता है। मनुष्य समाज का अंग है, समाज राज्य का, राज्य राष्ट्र का और राष्ट्र संपूर्ण विश्व का। इस कारण जहाँ व्यष्टि–कल्याण एवं विश्व–कल्याण का भाव दो धुरियाँ हैं जो मूलतः एक–दूसरे में अंतर्निहित है, वहीं मनुष्य का 'स्व' से राष्ट्र के स्तर पर 'पर' की ओर उन्मुख होना राष्ट्रीयता की भावना को उद्‌भूत करता है।

सामान्यतः राष्ट्र का संबंध किसी निश्चित भूभाग में बाहरी नियंत्रण से लगभग पूरी तरह से स्वतंत्र व्यक्तियों का समूह परस्पर सहयोग–दायित्व भावना से शासन–व्यवस्था से संबंधित सत्ता से है। प्राचीन काल में सत्ता की बागडोर राजा के आधिपत्य में रही है। राष्ट्र के शरीर को अनेक संकटों से सुरक्षा प्रदान करने और उसके आंतरिक गठन को मजबूत बनाए रखने में यह सत्ता ढाल का काम करती है। वंशानुक्रम में बनी रहने वाली इस शासन–व्यवस्था में सत्ता का हस्तांतरण राजा के पुत्रों को किया जाता था। शक्ति से संपन्न एवं प्रजा के कल्याणार्थ कार्य करने वाले राजा के राष्ट्र में शांति–सुरक्षा का वातावरण बन जाता था जिससे आदर्श शासन–व्यवस्था स्थापित हो जाती थी। लेकिन राजा के शासनकाल की आंतरिक कमजोरी के कारण शांति–सुरक्षा के छिन्न–भिन्न होने पर बाहरी शासक अवसर का लाभ उठाता एवं युद्धादि द्वारा अपने राज्य का विस्तार कर लेता। इस संदर्भ में डॉ॰ ममता सिंगला का कहना है कि 'उस युग में राष्ट्रीयता की भावना भी अत्यधिक संकुचित थी। प्रजा अपने प्रदेश के राजा अथवा जाति के नायकों के प्रति ही कर्तव्यनिष्ठ थी। जन–समुदाय संपूर्ण राष्ट्र के स्थान पर एक छोटे–से प्रदेश को ही अपना सर्वस्व मानकर सुख–सुविधाओं को एकत्रित करने में संलग्न रहता था। यही कारण है कि जब भी भारत जैसे महान राष्ट्र पर विदेशी जातियों ने आक्रमण किया, तो जातीयता के संकुचित दायरे ने ही उन्हें विजयी होने के सुअवसर प्रदान किए। महाराष्ट्र के मराठे शासक, राजस्थान के राजपूत नायक आदि इसी भाँति अपने प्रदेशों के शासक अपने–अपने राज्य की सुरक्षा के लिए तो कटिबद्ध रहे, किंतु उन्होंने प्रादेशिकता के दायरे को लाँघकर संपूर्ण राष्ट्र की सुरक्षा के विषय में कभी भी गंभीर चिंतन नहीं किया। किंतु जब कभी इन शासकों ने अपनी शक्ति को एक राष्ट्र के अधीन समन्वित करने का प्रयास किया, तो

उसके शुभ–परिणाम संपूर्ण विश्व के समक्ष उभरकर सामने आए। 1857 का विद्रोह तथा भारत का स्वाधीनता आंदोलन इस तथ्य के ज्वलंत उदाहरण हैं।'[1]

आज के संदर्भ में 'राष्ट्र' की धारणा सीमित एवं राज्य–क्षेत्र से संबंधित संकुचित दृष्टि में आबद्ध नहीं है। अब सत्ता की स्थिति भिन्न नज़र आती है क्योंकि अब राष्ट्र की सत्ता अर्थात् शासन की व्यवस्था प्रत्यक्ष रूप से किसी राजा अथवा अधिपति का दायित्व नहीं रह गया, वह 'प्रजा' के हाथों में आ चुका है। आधुनिक संदर्भ में प्रयुक्त 'सरकार' और 'जनता' क्रमशः प्राचीनकालीन 'अधिपति' और 'प्रजा' का द्योतक है। शासन व्यवस्था, राष्ट्र का अनिवार्य तत्व है। राष्ट्र की सत्ता अर्थात् सरकार के रूप में शासन–व्यवस्था राष्ट्र के प्रत्येक कार्य को मूर्त्तता प्रदान करती है। हालाँकि इस संदर्भ में 'राष्ट्र' एवं 'सरकार' दोनों में समानता का बोध होता है, किंतु वास्तविकता यह है कि दोनों में अंतर के कुछ आधार मौजूद हैं। जैसे, 'सरकार' मूर्त होती है जबकि 'राष्ट्र' एक धारणा है। राष्ट्र सर्वोच्च होता है और सरकार उसका केवल एक–तत्व है; राष्ट्र स्थायी है और सरकार अस्थायी। इसी तरह से, सरकार की शक्ति सीमित होती है, किंतु उसके कई रूप हो सकते हैं। जबकि राष्ट्र की शक्ति असीमित होती है, उसका स्वरूप सभी जगह एक ही होता है। राष्ट्र से ही राष्ट्रवाद की भावना का विकास होता है। राष्ट्रवाद, भौगोलिक, सामाजिक अथवा धार्मिक कारणों से प्रबल होकर हृदयों में एकता की भावना को जन्म देने वाली भावनाओं का विकास है। राष्ट्रवाद की चेतना से हममें अपनी मातृभूमि के प्रति अनुराग की भावना जाग्रत होती है।

दशमेश गुरु का संबंध 'रीतिकाल' से है जिसमें प्राचीनकालीन 'राष्ट्रीय' सत्ता के अनुरूप शासन–व्यवस्था पर राजा का आधिपत्य होता था। 'राजनीतिक दृष्टि से यह काल मुगलों के शासन के वैभव के चरमोत्कर्ष और उसके बाद उत्तरोत्तर ह्रास, पतन तथा विनाश का युग कहा जा सकता है।'[2] हिंदू जनता शसित वर्ग थी और उसपर मुगलों का शासन था। मुगल शासक औरंगज़ेब, हिंदू जनता पर अपना कहर बरपा रहा था, उसके अत्याचारों–अनाचारों ने हिंदू जाति को इतना अधिक त्रस्त कर दिया था कि उसमें नैराश्य–कुंठा का गहन अंधकार आच्छादित हो चुका था। जबकि हिंदू सभ्यता की परंपरागत मान्यता के अनुसार निजी स्वार्थों की अपेक्षा प्रजा–हितलाभ को प्रश्रय देना, उन्हें महत्वपूर्ण समझने वाला और अन्याय का दमन करके न्याय की स्थापना करने में समर्थ व्यक्ति ही राष्ट्र के बहुमुखी विकास के लिए सदैव कार्यरत रहकर शासन कर सकता है। किंतु दशमेश युगीन मुगल शासक इसके विपरीत प्रवृत्ति का था। उन्होंने शासन व्यवस्था पर बलपूर्वक आधिपत्य स्थापित किया था। उनके द्वारा शासन–व्यवस्था पर बलात् कब्जा करना और सत्ता को प्राप्त करना किंचित अधिक महत्वपूर्ण हो गया था कि अपने पिता एवं भाइयों तक को कैद किया या उन्हें मौत के घाट उतार दिया। औरंगज़ेब इस महत्वाकांक्षा का प्रत्यक्ष प्रमाण था।

---

1 गुरु गोविंद सिंह के साहित्य में जातीय संघर्ष, डॉ. ममता सिंगला, पृ. 209

2 हिंदी साहित्य का उत्तर मध्यकाल : रीतिकाल, डॉ. महेंद्र कुमार, पृ. 11

हालाँकि यह सही है कि यवनों के आक्रमण के दौरान भी भारतीय राजाओं में अद्‌भुत युद्ध–कौशल एवं वीरता की भावना विद्यमान थी। उनके हृदयों में देशभक्ति और राष्ट्रीय एकता की भावना की कमी नहीं थी। इसके बावजूद उन्हें पराजय का सामना करना पड़ा था। इसका प्रमुख कारण यह था कि तद्‌युगीन भारतीय राजाओं की राष्ट्र के संबंध में दृष्टि अत्यंत संकुचित थी, जिसके आधार पर 'राष्ट्र' की धारणा की परिधि के अंतर्गत उनका राज्य–क्षेत्र ही आता था। इसलिए उनका सरोकार अपने इसी राष्ट्र (प्रदेश–विशेष) को सुरक्षित रखना रहा। इसके लिए और अपनी सुख–सुविधाओं की वृद्धि के निमित्त यदि उन्हें उपयुक्त प्रतीत हुआ तो उन्होंने विदेशी जातियों को अपने राष्ट्र (प्रदेश विशेष) में आमंत्रित किया, उन्हें पूरी तरह से सहयोग प्रदान किया और अंततः अपनी स्वतंत्रता को विनष्ट करवा लिया। भारतीय राजाओं की राष्ट्र के संदर्भ में इस संकुचित दृष्टि की भारत राष्ट्र के विखंडन–विघटन के रूप में स्वाभाविक परिणति हुई।

गुरु नानक ने जिस 'सहज अद्वैतवाद' का प्रचार किया था, उसमें आस्था रखने वाले सिक्ख धर्म के अंतिम सशरीरी गुरु, गुरु गोविंद सिंह ने अव्यवस्था, अशांति और अराजकता की इन्हीं विकट परिस्थितियों में नौ वर्ष की अल्पायु में गुरु–पद प्राप्त किया। गुरु गद्दी पर नशीन होते ही वे यह जान गए कि धार्मिक रूढ़िवादिता और कट्टरपंथी सुन्नी राज्य के संस्थापक औरंगज़ेब ने अपने पिता शाहजहाँ को बंदी बनाकर एवं दाराशिकोह आदि अपने भाइयों की निर्मम हत्या करके स्वयं को भारत का बादशाह घोषित कर दिया था। औरंगज़ेब की कट्टरवादी नीति यह थी कि वह संपूर्ण राज्य को इस्लामी बनाना चाहता था – 'His policy towards mohammadans was one of suspicion, while his bigotry and presecutions rendered him hateful to his Hindus subjects. In his old age his wearied spirit could not find no solace no tribe of brive and confiding men gathered round him.'[3] तलवार की धार पर हिंदुओं को धर्म परिवर्तन के लिए बाध्य करने और देव मंदिरों को भूसात् करके उनके स्थान पर मस्जिदों का निर्माण करने में ही वह अपनी राजनीति की सफलता समझता था। उसकी धर्मांधपूर्ण नीतियों के विरोधस्वरूप हिंदुओं के रक्षार्थ एकमात्र छत्रपति शिवाजी ही ऐसे वीर पुरुष थे जिन्होंने उसे वर्षों तक परेशान किए रखा। जब शिवाजी ने मुगलों की सेना को 1670 ई. में पराजित कर दिया, तब औरंगज़ेब ने अपनी पराजय से क्रुद्ध होकर जन–सामान्य, सूफियों तथा गुरुओं पर अत्याचार प्रारंभ कर दिए। उसकी इस दुर्नीति का परिणाम हमें नौवें गुरु, गुरु तेग बहादुर की क्रूर हत्या के रूप में नज़र आता है। औरंगज़ेब, उनकी हत्या कराके दोहरी चाल चलना चाहता था। एक ओर वह यह चाहता था कि गुरु की नृशंस हत्या से हिंदुओं में त्राहि–त्राहि मच जाएगी और वे भय पीड़ित होकर अधिक से अधिक संख्या में धर्म परिवर्तन के लिए तैयार हो जाएँगे। उसकी दूसरी चाल यह थी कि गुरुओं के बढ़ते हुए प्रभाव को समाप्त कर हिंदू जाति में जन्म ले रहे राष्ट्रीयता के भाव को भी प्रारंभिक अवस्था में ही मटियामेट कर दिया जाए।

---

3 History of Sikhs, J.D. Cunnigham, p. 67

इस प्रकार से वे अपने शासन और अपनी जाति के गौरव की बात तक को आंदोलित कर भी नहीं सोच सकेंगे।[4]

गुरु गोविंद सिंह ने मुगल सम्राट औरंगज़ेब की इस दुर्नीति को विफल करने के लिए समूचे देश में 'राष्ट्रीय एकता' की मशाल को प्रज्वलित किया। औरंगज़ेब के शासनकाल में उनके पिता एवं नौवें गुरु, गुरु तेग बहादुर को हिंदू धर्म के रक्षार्थ 'स्वयं इच्छित बलिदान' देना पड़ा था ताकि इस विकट घड़ी में बलिदान के माध्यम से हिंदू जनता की जड़त्व चेतना को झकझोरा जाए। अपने पिता के बलिदान से दशमेश यह भली–भाँति समझ गए थे कि उन्हें राष्ट्रीय चेतना का निर्माण करना होगा। इस चेतना–निर्माण के संकल्प के लिए उन्हें सुदृढ़ ध्वज के अधीन अपनी शक्ति को एकत्रित करके संघर्ष करना अनिवार्य प्रतीत हुआ ताकि अपने देश पर अनधिकृत दावा जमाकर बैठी विदेशी जाति से राष्ट्र को स्वतंत्र कराया जा सके। किंतु उन्होंने इस राष्ट्रीय चेतना के निर्माण में स्वयं को संकीर्णता के वृत्त में आबद्ध नहीं किया क्योंकि वे जानते थे कि इससे राष्ट्र एवं राष्ट्रीयता की उन्नति और विकास अवरुद्ध हो जाएगा। इसलिए उन्होंने संघर्ष का जो मार्ग चुना उसमें सत्ता–प्राप्ति, आधिपत्य स्थापित करना अथवा किसी राज्य की कामना नहीं थी। इसके स्थान पर उन्होंने मानव–जाति को अत्याचारी–नृशंस शासकों के अमानुषिक अनाचारों से मुक्त करने के निमित्त संघर्ष रूपी शस्त्रों को धारण करके मानवीयता का व्यापक एवं असीम प्रकाश–पुंज प्रस्फुटित करने का प्रयत्न किया।

हिंदू धर्म के रक्षार्थ अपने पिता गुरु तेग बहादुर के बलिदान एवं त्याग ने गुरु गोविंद सिंह को अंतर्तम तक झकझोर कर रख दिया। जहाँ उनकी हिंदुओं के प्रति आसाक्ति बढ़ी वहीं उन्होंने नृशंस शासकों के अत्याचारों का विरोध करने के लिए 'राष्ट्रीय एकता' की मशाल को प्रज्वलित करने का निश्चय किया। इसके लिए गुरु गोविंद सिंह ने अपनी 'राष्ट्र' संबंधी अपनी व्यापक सोच, दृष्टि एवं अनुभूति को अमली–जामा पहनाने हेतु भक्ति के साथ–साथ शक्ति का सामंजस्य किया। 'गुरु साहब का मत था कि अनाचार एवं अत्याचार का सामना करने के लिए जान हथेली पर रखकर कर्म–भूमि में प्रवेश करना अनिवार्य है। मनुष्य का दृढ़ संकल्प ही उसे विकट परिस्थितियों से उबरने की शक्ति प्रदान करता है। किंकर्त्तव्यविमूढ़ व्यक्ति अत्याचार की नींव पर दृढ़तापूर्वक आघात करने में कदापि समर्थ नहीं हो सकता। हिंदू समाज की खंडों में विभक्त शक्ति को अपना योग्य नेतृत्व प्रदान करके इन्होंने अपनी योग्यता, सूझ–बूझ तथा अचूक दृष्टि का ही परिचय दिया है।'[5] उन्होंने धर्म की रक्षा के लिए, अन्याय के विरुद्ध विद्रोह करके भारतीयों में वीर–भावना जाग्रत कर राष्ट्रीय एकता की मशाल प्रज्वलित की। दशमेश की आत्मकथा 'विचित्र नाटक' इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है जिससे ज्ञात होता है कि उन्होंने 'राष्ट्र' के रक्षार्थ विदेशी आक्रांतों के साथ संघर्ष किया और यह भावना व्यक्त की कि यवनों के विरुद्ध संघर्ष में साथ न देने वालों पर मुगल–शासक अत्याचार का कहर ढाएँगे – गुरुजी भी उनकी रक्षा नहीं करेंगे। इससे उनका लोक और परलोक, दोनों ही बिगड़ जाएँगे। अन्याय–अधर्म के विरुद्ध विद्रोही

---

4 परिशोध संपा. आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी (अध्यात्म सेनानी गुरु गोविंद सिंह (आलेख) – डॉ. हरवंशलाल शर्मा), छठा अंक, पृ. 79

5 गुरु गोविंद सिंह के साहित्य में जातीय संघर्ष, डॉ. ममता सिंगला, पृ. 211

भावना जगाकर उन्होंने व्यक्ति के आत्म–सम्मान, राष्ट्र की स्वतंत्रता एवं धर्म की रक्षा हेतु सार्थक सत्प्रयास किया।

राष्ट्र–हित में सामाजिक–सांस्कृतिक, धार्मिक एवं जातीय समन्वय की कामना एवं संपूर्ण विश्व की उद्धारक 'वसुधैव कुटुंबकम्' की मानवीय अनुभूति के स्तवन की अनुगूँज के रूप में राष्ट्रीयता की भावना वैदिक–युग से ही साहित्य में अपने सर्वोत्कृष्ट रूप में वर्णित होती रही है। समाज और राष्ट्र के अविच्छिन्न संबंध के कारण समाज का हित राष्ट्रीय हित से संबंधित है। राष्ट्र रूपी ऐक्यबद्ध इकाई के हितार्थ उदात्त मानवीय भावना द्वारा अभिव्यंजित राष्ट्रीय मूल्य हेतु यह परम आवश्यक है कि व्यक्ति स्वयं को राष्ट्र का महत्वपूर्ण और अनिवार्य अंग माने और मनुष्य 'स्व' से 'पर' की ओर उन्मुख होते हुए अपने श्रम, धन एवं बुद्धि का प्रयोग राष्ट्र के अभ्युत्थान में करे। इस भावना को उद्‌भुत करने के लिए व्यक्ति के स्तर पर अपने राष्ट्र के लिए गौरवान्वित महसूस करना एवं राष्ट्र को ही सबसे उत्तम मानना अपेक्षित है। ऋग्वेद में व्यक्ति को अपने राष्ट्र के लिए गौरवान्वित होने एवं उत्तम मानने संबंधी भावना को व्यक्त करते हुए कहा गया है कि 'मैं इस राष्ट्र में उत्पन्न हुआ हूँ, ईश्वर मेरे राष्ट्र में कीर्ति और वृद्धि प्रदान करे तथा राष्ट्र में तेज और बल की अभिवृद्धि हो।'[6] 'जननी जन्मभूमि गरियसि स्वर्गादपि' की भावना का वैदिक–काल में प्रस्फुटन हो चुका था। अथर्ववेद में मातृभूमि के प्रति मातृत्व की भावना अभिव्यंजित हुई है। अथर्ववेद में यह उल्लेख मिलता है कि 'हे पृथ्वी! अपने शरीर की शक्ति से निकलने वाली धाराओं से हमें उसी प्रकार संयुक्त करो जिस प्रकार माता पुत्र के लिए दूध का विसर्जन करती है। भूमि माता है और मैं उसका पुत्र हूँ' :

यते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः।
तारसु नो धेहि अभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।[7]

राष्ट्र की उन्नति के लिए जरूरी है कि प्रत्येक व्यक्ति दृढ़निश्चयी और अज्ञेय हो। इसी भाव की अव्यक्त करते हुए ऋग्वेद में कहा गया है कि 'हे अग्नि! मेरा तेज युद्धों में व्याप्त हो। तुझे प्रदीप्त करते हुए हम अपने शरीर को पुष्ट करें। चारों दिशाएँ मुझे नमस्कार करें। तेरे नेतृत्व में हम शत्रु सेनाओं को जीतें।'[8] राष्ट्रीयता की भावना से अभिभूत वैदिक मनीषी शूरवीरों से देश के लिए बलिदान होने का आह्वान करता है।[9]

चूँकि राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्रीयता की भावना और देशभक्ति का प्रवाह आधुनिक काल की घटना है और इससे पूर्व के साहित्य में संकीर्ण राष्ट्रीयता की बात की जाती है। लेकिन, उदार राष्ट्रवादी दृष्टि से देखा जाए तो स्थान–भक्ति के रूप में देशभक्ति के स्तवन के मूल में राष्ट्रीयता की भावना विद्यमान मानी जा सकती है। हालाँकि उसमें आधुनिक संदर्भों में राष्ट्रीयता एवं देशभक्ति का स्पष्ट रूप से उत्कर्ष भले ही न हो, किंतु

---

6 ऋग्वेद, 2.7.4

7 अथर्ववेद, पृथ्वी सूक्त, 12.1.12

8 ऋग्वेद, 10.128.1

9 ऋग्वेद, 10.154.3

इसके स्तवन के पक्ष को उपेक्षित नहीं किया जा सकता। दशमेश–साहित्य में राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यंजना को इसी परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है। उन्होंने ज्वलंत युगीन परिस्थितियों में 'संघर्ष' का मार्ग अपनाकर राष्ट्रीयता का उद्घोष किया और आत्मोत्सर्ग की प्रेरणा से लोगों में जागृति की अपूर्व लहर दौड़ा दी।

'दशम ग्रंथ' : राष्ट्रीय चेतना का संदर्भ

मानवता के कवि गुरु गोविंद सिंह का ह्रदय देशभक्ति एवं राष्ट्रीयता की भावना से ओत–प्रोत था। वे राष्ट्र के प्रति सदैव समर्पित रहे। उनकी राष्ट्र विषयक मनोभावना का संघर्ष एवं आत्मोत्सर्ग की प्रेरणा के आलोक में अनुशीलन किया जा सकता है। 'राष्ट्र' की स्वतंत्रता और मुगलों के विरुद्ध 'संघर्ष' के लिए उनके द्वारा तैयार की गई दृढ़ निश्चयी योद्धाओं की एक विशाल सेना इस 'संघर्ष' में संलग्न हुई। किंतु ध्यातव्य यह है कि उनके इस 'संघर्ष' के मूल में उनकी किसी प्रकार की महत्वाकांक्षा नहीं पल रही थी जिसके अनुसार वे भू–क्षेत्र की सीमाओं का अतिक्रमण करते और अन्य राष्ट्र की सीमाओं को अपनी सीमाओं में शमिल कर अपना आधिपत्य स्थापित कर लेते। वस्तुतः गुरु गोविंद सिंह का इस 'संघर्ष' के मूल में राष्ट्र, समाज, धर्म, संस्कृति पर होने वाले अत्याचार–अनाचार का दमन करना था। उनके इस एकमात्र लक्ष्य को रेखांकित करते हुए डॉ. मनमोहन सहगल ने लिखा है –'उनका योद्धा रूप अन्याय, अत्याचार और अनास्था से जाति को बचाने और राष्ट्रीय–संस्कृति की रक्षा के लिए प्रकाश में आया है। उन्होंने स्वयं कभी किसी पर आक्रमण नहीं किया, किसी के प्रदेश को जीतने एवं बलपूर्वक अपने अधिकार में लाने के लिए उन्होंने कभी युद्ध नहीं लड़ा। पहाड़ी राजा अनेकों बार उनके हाथों पराजित हुए, परंतु उन्होंने कभी किसी का राज्य नहीं लिया या राज्य की जनता से कोई कर ग्रहण नहीं किया। निश्चय ही उनके युद्ध दूसरों के मिथ्याभिमान और मिथ्या–भय के कारण लड़े गए थे। किसी भी युद्ध की पृष्ठभूमि से यह सिद्ध नहीं होता कि गुरु जी किसी स्वार्थ, लोभ अथवा धर्म–प्रचार के लिए लड़ रहे थे। युद्धों में उनका दृष्टिकोण सदैव मानवतावादी रहा।'[10] स्पष्ट है कि गुरु गोविंद सिंह द्वारा खड्ग धारण करने के मूल में किसी भी प्रकार की राजशक्ति की कामना नहीं थी।

(i) मातृभूमि के प्रति अनुराग की भावना : राष्ट्रीय चेतना संपन्न साहित्य की प्रथम एवं प्रमुख विशेषता है – रचनाकार की देशभक्ति, देश–प्रेम की भावना। इस भावना की सघनता ही 'राष्ट्रवाद' को वाणी प्रदान करती है। 'राष्ट्रवाद हमें अपनी मातृभूमि से प्रेम करना सिखाता है। राष्ट्रवादी अपने देश की भूमि, नदियों, पर्वतों, फूलों और पशु–पक्षियों से असीम प्रेम करते हैं और कहते हैं मातृभूमि स्वर्ग से बढ़कर है।'[11] देश–प्रेम, देशभक्ति का पहला ही नहीं, अपितु अंतिम सोपान भी है। देश–प्रेमी, देशभक्ति के आसव का पान करता है और बाहरी आक्रमणकारी से टकराने, उससे जूझने एवं मर–मिटने की आकांक्षा से ओत–प्रोत रहता है। देश–प्रेम की भावना को राष्ट्रीय काव्य का केंद्रीय ज्योति भवन (सेंट्रल

---

10 परिशोध, गुरु गोविंद सिंह विशेषांक, संपा. आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी (अध्यात्म सेनानी गुरु गोविंद सिंह (आलेख)– डॉ.मनमोहन सहगल), पृ. 144

11 हिंदी की राष्ट्रीय काव्यधारा : एक समग्र अनुशीलन, डॉ. देवराज पथिक, पृ. 35–36

पॉवर हाउस) कहा जा सकता है। 'यह केंद्र जितना शक्तिशाली होता है, काव्य–भूमि भी उतनी ही अधिक दूरी तक तीव्र और एकरस प्रकाश से आलोकित हुआ करती है। केंद्र यदि दुर्बल हुआ तो प्रकाश अधिक दूर तक नहीं जाता, वह क्रमशः मंद होने लगता है और अंत में कवि को किसी दूसरे केंद्र की खोज करनी पड़ती है। राष्ट्रीय काव्य की सूक्ष्म या आंतरिक प्रेरणा देश–प्रेम की अत्यंत पवित्र भावना है। यह इस काव्य की नींव है, जिसपर समस्त काव्य–निर्माण आधारित होता है। यही सूक्ष्म भावना कवि को वह राष्ट्रीय दृष्टि देती है, जिसे पाकर कवि अनायास हिमकिरीट की ऊँचाइयों को छू लेता है और उसकी कविता कोटि–कोटि कंठों की सहज वाणी बन जाती है। व्यक्ति के समष्टि तक पहुँचने की इतनी सुगम विधि दूसरी नहीं है, साधारणीकरण की इतनी सहज प्रक्रिया और कहीं नहीं दिखलाई पड़ती। राष्ट्रीय काव्य के मूल में देश–प्रेम की सूक्ष्म भावना स्थायी तत्व के रूप में निहित रहती है।'[12]

मातृभूमि को देव–तुल्य मानना एवं उसे स्वयं देवताओं की कलाकृति कहना हमारे प्राचीन साहित्य की अपनी एक महानतम राष्ट्रीय विशेषता है, जिसे समान भावना की दृष्टि से खोजना अन्यत्र दुर्लभ है। देश–प्रेम हमारे साहित्य, समाज, सभ्यता, संस्कृति और चिंतन के प्रत्येक क्षेत्र में व्यापक रूप से समाया हुआ मिलता है। हमारा प्राचीन राष्ट्रीय साहित्य देश–प्रेम को प्रकट करने वाले संदर्भों से भरा पड़ा है। अथर्ववेद का पृथ्वी सूक्त इस संदर्भ में अपने दृष्टिकोण की व्यापकता, देशानुराग की तीव्रता और उसके पैने विश्लेषण की गहराई की दृष्टि से अतुलनीय महत्व का बन पड़ा है।[13] इसकी रक्षा करना देश–भक्ति का प्राण–तत्व है। मध्यकालीन जीवन धर्माधिष्ठित था और युगीन दृष्टि, चिंतन, भावभूमि एवं विश्वासों की भित्ति धर्म की नींव पर खड़ी थी। किंतु दशमेश युगीन समाज में औरंगज़ेब के अमानुषिक कृत्यों से धर्म की हानि हो रही थी। उन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य लोगों के समक्ष प्रस्तुत किया कि परमात्मा की आज्ञा से दुष्टों का संहार करने और धर्म की संस्थापना हेतु उनका जन्म हुआ है :

हम इह काज जगत मो आए। धरम हेतु गुरदेव पठाए।
जहाँ तहाँ तुम धरम बिथारो। दुसट दोखियनि पकरि पछारो।
याही काज धरा हम जनमं। समझ लेहु साधू सभ मनमं।
धरम चलावन संत उबारन। दुशट सभन को मूल उपारन।[14]

इसके लिए गुरु गोविंद सिंह ने जहाँ दृढ़–निश्चयी योद्धाओं की एक विशाल सेना को संगठित किया वहीं पूर्ववर्ती सिक्ख गुरुओं की चली आ रही भक्ति परंपरा में शक्ति का सुमेल भी किया। वहीं, साथ ही उन्होंने जन–समाज को गुरुओं की मत–परंपरा के दृष्टिकोण से लैस करना भी अनुभूत किया। संस्कृत के कूप–जल तक सीमित वेदों–पुरुषों एवं प्राचीन भारतीय परंपरा के ज्ञान को गुरुमत कि दृष्टि के अनुसार प्रस्तुत करना इसलिए

---

12 आलोचना, पूर्णांक 36 नवांक 10 (माखनलाल चतुर्वेदी : एक राष्ट्रीय कवि (आलेख) – डॉ.रामाधार शर्मा), अप्रैल, 1966, पृ. 133

13 हिंदी की राष्ट्रीय काव्यधारा : एक समग्र अनुशीलन, डॉ. देवराज पथिक, पृ. 47

14 दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), विचित्र नाटक, अनु. डॉ. जोध सिंह, छंद सं. 6/42–43, पृ. 165

भी अनिवार्य हो गया था कि इस महान रचना की सामग्री से जन–सामान्य में चेतना जाग्रत की जाए। गुरु गोविंद सिंह का कथन है कि :

दशम कथा भागउत की भाखा करी बनाए।
अवर बासना नाहि प्रभ धरम जुद्ध के चाइ।[15]

जम्मू प्रांत के सूबेदार मियाँ खाँ के सेनापति आलिफ खाँ को पहाड़ी राजाओं ने 'कर' देने से मना कर दिया था। तब आलिफ खाँ द्वारा पहाड़ी राजाओं को युद्ध की धमकी मिलने पर पहाड़ी राजा भीमचंद और अन्य पहाड़ी राजाओं ने राष्ट्र के हित के प्रति दृढ़ संकल्प गुरु गोविंद सिंह से सहायता की प्रार्थना की जिसे स्वीकार कर उन्होंने संघर्ष का मार्ग अपनाया। इसके लिए उन्होंने पहाड़ी राजाओं के रूप में स्वदेश जातियों को अपना कुशल नेतृत्व प्रदान किया, आलिफ खाँ की सेना के साथ संघर्ष किया। यह भयंकर युद्ध नादौन नामक स्थल पर हुआ था जिसमें आलिफ खाँ को अपनी जान बचाकर नादौन से भागना पड़ा।[16] इस युद्ध में आलिफ खाँ की पराजय हुई। किंतु जब लाहौर के सूबेदार दिलावर खाँ को आलिफ खाँ की पराजय का पता चला तो उसने गुरु जी से प्रतिकार लेने हेतु अपने पुत्र रुस्तम खाँ के साथ मुगलों की एक विशाल सेना आनंदपुर पर चढ़ाई करने के लिए भेज दी। अपनी युद्ध–नीति के अनुसार और धर्म नीति के विरुद्ध रुस्तम खाँ ने रात के अंधेरे में ही आनंदपुर स्थित दशमेश के डेरे पर आक्रमण कर दिया। किंतु जो शोरगुल उत्पन्न हुआ था, उसे सुनकर गुरु जी के योद्धा सचेत हो गए और उन्होंने भेरी की ध्वनि एवं नगाड़ों की गड़गड़ाहट से अंधेरी रात के स्तब्ध वातावरण को रण–क्षेत्र के भयानक वातावरण में बदल कर रख दिया। अस्त्र–शस्त्रों से सुसज्जित उन वीरगणों–योद्धाओं ने दशमेश के कुशल सैन्य नेतृत्व में रुस्तम खाँ के आक्रमण का मुँहतोड़ जवाब दिया। दशमेश–सेना से मुँहतोड़ जवाब पाकर रुस्तम खाँ लज्जित होकर रणभूमि से निकल भागा।[17]

जम्मू प्रांत के सूबेदार मियाँ खाँ के सेनापति आलिफ खाँ की शिकस्त और फिर अपने पुत्र रुस्तम खाँ की शर्मनाक हार के पश्चात दिलावर खाँ ने पहाड़ी राजाओं से 'कर' की वसूली करने के लिए और गुरु गोविंद सिंह पर आक्रमण करने के लिए हुसैन खाँ को सेनापति नियुक्त कर युद्ध के लिए भेजा। अन्य पहाड़ी हिंदू राजाओं के प्रतिनिधि के रूप में दशमेश ने अपने राष्ट्र के गौरव और सम्मान के रक्षार्थ मुगल जाति का डटकर सामना किया। मुगल जाति के साथ हुए इस युद्ध में समस्त पहाड़ी राजाओं ने अपनी शक्ति का संगठन किया था और संगठित–शक्ति से शत्रु को पराजित करने का दृढ़ निश्चय किया था। इस संगठित–शक्ति का भी चमत्कारी परिणाम निकला हिंदू जाति को विजयश्री प्राप्त

---

15 दशम ग्रंथ सटीक (द्वितीय भाग), चौबीस अवतार (कृष्णावतार), अनु. डॉ. जोध सिंह, छंद सं. 2491, पृ. 405

16 दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), विचित्र नाटक, अनु. डॉ. जोध सिंह, छंद सं. 9/15–17 एवं 22, पृ. 178–179

17 दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), विचित्र नाटक, अनु. डॉ. जोध सिंह, छंद सं. 10/7, पृ. 180

हुई। इतिहास में 'हुसैनी युद्ध' के नाम से परिचित इस युद्ध में मुगल–सेना की हार हुई और मुगल–सेनापति हुसैन खाँ मारा गया।[18]

आक्रमण की स्थिति में, देश–प्रेम और राष्ट्रीयता की भावना के लिए शक्ति–संगठन आवश्यक होता है। नादौन और हुसैनी युद्ध में विजय का कारण यही शक्ति का संगठित रूप रहा है। किंतु इसके बाद देश एवं राष्ट्र के साथ जुझार सिंह ने गद्दारी की और मुगल जाति का साथ देकर राष्ट्रीय एकता की भावना को भंग किया। परिणामतः विदेशी आक्रांताओं के विरुद्ध हिंदुओं की तलवार को मजबूरन अपने ही भाई के खून से रंगनी पड़ी।[19] राष्ट्रीयता की भावना की दृष्टि से और राष्ट्र–हित में अपने भाई के खून से अपनी तलवार को रंग देने में संकोच नहीं करना भी स्वीकार्य है, जिसे उल्लिखित करके गुरु गोविंद सिंह ने राष्ट्रीय चेतना की अलख को स्वर प्रदान किया है।

'विचित्र नाटक' में गुरु गोविंद सिंह ने जिन युद्धों का वर्णन करके राष्ट्रीयता की भावना को व्यक्त किया है, उसके मूल में देश की पराधीनता की कड़ियाँ तोड़ना था। उन्होंने हिंदुओं की सोई हुई शक्ति को जाग्रत किया और आह्वान किया कि 'हे वीरो! उठो और सिंह की भाँति ओजस्वी हुँकार के माध्यम से लक्ष्यच्युत जातियों का मान–मर्दन करो। हाथ बाँधकर तथा सिर झुकाकर आक्रांताओं के अत्याचार सहने से हमारे राष्ट्र का गौरव तो नष्ट होगा ही, साथ ही देश की सत्ता सदैव के लिए ऐसे नृशंस शासकों के हाथ में चली जाएगी, जिनके लिए प्रजा का हित, देश की उन्नति तथा भ्रातृत्व भाव का कोई महत्व नहीं है।'[20] जब राष्ट्रीय अस्मिता पर बन आई और राष्ट्र के गौरव का अहित हो रहा हो तो ऐसे में शस्त्र उठाकर संघर्ष करना अनिवार्य ही नहीं अपरिहार्य है। इसके लिए अस्त्र–शस्त्र का होना अनिवार्य है। यही कारण है कि गुरु गोविंद सिंह ने अपनी दूरदर्शिता की वजह से युद्ध–सामग्री एकत्र की थी, लोगों से उपहारस्वरूप शस्त्र एवं घोड़े सहर्ष स्वीकृत किए, सेना एकत्र करके उसका संगठन किया और खड्गधारी पंथ – खालसा पंथ – की स्थापना की। जहाँ उन्होंने अस्त्र–शस्त्रों की महत्ता को स्वीकार किया, वहीं खड्ग, असि, बाण, पाश आदि विभिन्न प्रकार के अस्त्र–शस्त्रों को देवी–देवताओं के समान स्तुत्य–पूजनीय मानते हुए उनकी वंदना करके वरण किया :

खग खंड बिहंडं खल दल खंडं अति रण मंडं बरबंडं।
भुज दंड अखंडं तेज प्रचंडं जोति अमंडं भान प्रभं।
सुख संता करणं दुरमति दरणं किलबिख हरणं अस सरणं।
जै जै जग कारण स्रिशट उबारण मम प्रतिपारण जै तेगं।[21]

---

18 दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), विचित्र नाटक, अनु. डॉ. जोध सिंह, छंद सं. 11/50–52, पृ. 188–189

19 दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), विचित्र नाटक, अनु. डॉ. जोध सिंह, छंद सं. 12/10–12, पृ. 192–193

20 गुरु गोविंद सिंह के साहित्य में जातीय संघर्ष, डॉ. ममता सिंगला, पृ. 213

21 दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), विचित्र नाटक, अनु. डॉ. जोध सिंह, छंद सं. 1/2, पृ. 127

गुरु गोविंद सिंह की दृष्टि से अस्त्र–शस्त्र इस कारण वंदनीय हैं क्योंकि वे दुष्टों एवं अधर्मियों का नाश करते हैं, धर्म की रक्षा करते हैं। जिस तरह विष्णु के अवतार राम ने धुनष को धारण किया, कृष्ण ने सुदर्शन चक्र धारण किया एवं परशुराम ने परशु को धारण किया एवं रावण, कंस आदि अधर्मियों का संहार किया उसी तरह से गुरु गोविंद सिंह भी खड्ग, बाण आदि विभिन्न प्रकार के अस्त्र–शस्त्रों की सहायता से जन–कल्याण के महत् लक्ष्य से च्युत हो चुके देश की सत्ता के नृशंस–शासकों का विनाश करके राष्ट्रीय गौरव को बचाना था। राष्ट्रीय हितार्थ एवं राष्ट्रीय अस्मिता को बनाए रखने के निमित्त शस्त्र उठाने का मार्ग धर्म–युद्ध का मार्ग है। दशमेश ने जहाँ व्यक्तिगत तौर पर इस धर्म–युद्ध को लड़ा, वहीं हिंदू जाति की सुसुप्त शक्ति को जाग्रत करने के लिए 'शस्त्रनाममाला' सरीखी अद्‌भुत कृति की रचना की। इस रचना में गुरु गोविंद सिंह ने तद्‌युगीन समाज में प्रयुक्त होने वाले समस्त अस्त्र–शस्त्रों का विलक्षण वर्णन, और रणभूमि में उनका सदुपयोग करने वाले वीर योद्धाओं की वीरता एवं शौर्य का उल्लेख किया है। उन्होंने 'शस्त्रनाममाला' में अस्त्र–शस्त्रों का ओजस्वी भाषा में वर्णन करके निराशा एवं कुण्ठा के वातावरण में जी रही हिंदू जनता को प्रेरित करते हुए ओजस्वी हुँकार भरते हुए कहा कि हे परमात्मा! तुम शत्रओं को पाड़ डालने वाली कुल्हाड़ी और बाँध लेने वाला पाँस तथा परम धैर्यवान हो। तुमने जिसको भी वरदान दिया, उसे जगत का राजा बना दिया :

तुम पाटस पासी परस परम सिंध की खान।
ते जग के राजा भए दिअ तव जिह बरदान।
स्रीस शत्र अरिआर असि खंडो खडग क्रिपान।
शक्र सुरेसर तुम कियो भगति आपुनो जान।।[22]

'दशम–ग्रंथ' की रचना करके गुरु गोविंद सिंह ने धर्म युद्ध के लिए तैयार किए जा रहे नए समाज को पूर्ववर्ती कथा–कहानियों और धार्मिक परंपराओं से अवगत कराने के लिए ब्रजभाषा में रचा। गुरु गोविंद सिंह इस तथ्य से भली–भाँति अवगत थे कि 'राष्ट्र' की पीड़ा हरने और समाज के नव–निर्माण के लिए धर्म–युद्ध लड़ना अपेक्षित है। इसलिए, धर्म–युद्ध आरंभ करने से पूर्व लोगों में धर्म–युद्ध की सोच पैदा करने और उन्हें आत्म–बल से लैस करने के लिए इसी प्रकार की रचना आवश्यकता थी ताकि लोगों को सीधा रास्ता दिखाया जा सके और उन्हें पथ–भ्रष्ट करने वालों से बचाया जा सके। इस प्रकार, स्पष्ट है कि गुरु गोविंद सिंह ने 'दशम–ग्रंथ' की रचना करके भारतीय वाङ्‌मय का केवल अनुवाद प्रस्तुत नहीं किया बल्कि उसके आधार पर उन्होंने लोगों को युद्ध में रुचि लेने और अच्छे मार्ग पर चलने के लिए नवीन मूल्यों की स्थापना की। गुरु गोविंद सिंह ने सामाजिक आवश्यकता के अनुरूप पौराणिक प्रसंगों में परिवर्तन कर अपनी मनोरथ–सिद्धि हेतु प्रस्तुत किया। 'दशम–ग्रंथ' की रचनाएँ केवल कवि–प्रसूत कल्पना–विलास का चमत्कार न होकर वह ऐतिहासिक दस्तावेज हैं जिसके माध्यम से रचनाकार ने ऐतिहासिक, पौराणिक, दार्शनिक, एवं आध्यात्मिक विचारों का पुनर्मूल्यांकन करके जन–सामान्य को राष्ट्र–हित में जाग्रत किया, उन्हें धर्मयुद्ध लड़ने के लिए आमंत्रित किया। यही सच्चा धर्म है, राष्ट्रवाद है।

---

22 दशम ग्रंथ सटीक (तृतीय भाग), शस्त्रनाममाला, अनु. डॉ. जोध सिंह, छंद सं. 1/22–23, पृ. 27–28

उनकी दृष्टि में सार्थक जीवन का आधार यही है कि मनुष्य अपने मुख से तो प्रभु के नाम का उच्चारण करे और चित्त में युद्ध का विचार धारण किए रहे :

धन्न जिओ तह को जग मै मुख ते
हरि चित्त मै जुधु बिचारै।
देह अनित्त न नित्त रहै
जसु नाव चड़ै भवसागर तारै।[23]

(ii) आत्मोत्सर्ग की अदम्य प्रेरणा : राष्ट्रीय चेतना में आत्मोत्सर्ग की भावना का प्रस्फुटन होना सहज स्वाभाविक है। राष्ट्रीयता की भावना से अभिभूत वैदिक मनीषी शूरवीरों से देश के लिए बलिदान होने का भी आह्वान करता है।[24] दशमेश की राष्ट्रीय चेतना संकुचित–संकीर्ण नहीं थी। उन्होंने देश को व्यापक फलक पर देखा और उसकी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष का मार्ग अपनाया। अपनी इसी राष्ट्रीय चेतना के आधार पर उन्होंने जनमानस को धर्म–युद्ध लड़ने के लिए आत्मोत्सर्ग एवं बलिदान की अदम्य प्रेरणा से अनुप्राणित किया। उनके सम्मुख भारतीय संस्कृति और निर्गुण संत–कवि कबीर द्वारा अभिव्यक्त यह आदर्श रहा कि दीन–दुखियों के हित–कल्याण के लिए आवश्यकता पड़ने पर अपने शरीर के टुकड़े–टुकड़े करवाकर बलिदान दे देने वाला वीर ही सच्चा है, किंतु वीर को संघर्ष–क्षेत्र से विमुखित नहीं होना चाहिए।

भारतीय साहित्य में आत्मोत्सर्ग की अदम्य–प्रेरणा द्वारा राष्ट्रीयता की भावना से अनुप्राणित गुरु गोविंद सिंह ने अपने जीवन में इसी भावना को चरितार्थ किया। उन्होंने जन–मानस को संघर्ष की ज्वलंत भावना से आलोड़ित–विलोड़ित कर अशेष बलिदान एवं आत्मोत्सर्ग की अदम्य प्रेरणा प्रदान की। सांसारिक वैभव एवं सुख–समृद्धि का उनमें किसी प्रकार अभाव नहीं था, किंतु उन्होंने व्यक्ति के आत्म–सम्मान, राष्ट्र की स्वतंत्रता और धर्म की रक्षा करने के लिए वीर–भावना को उद्‌बुद्ध करने के लिए राष्ट्र–साधना का पथ आलोकित किया। सिक्ख–गुरुओं की चली आ रही भक्ति–परंपरा में शक्ति का समन्वय करके गुरु गोविंद सिंह ने संघर्ष रूपी 'धर्मयुद्ध' की अवधारणा को वीर–सेनानी सिक्खों को 'खालसा' बनाकर मूर्त रूप दिया। विदेशी शासक मुगलों के विरुद्ध धर्म के आवरण में विद्रोह भावना जाग्रत करके धर्म की स्थापना करना ही उनका महत् उद्देश्य था– 'धरम हेत गुरदेव पठाए।'[25]

गुरु गोविंद सिंह का व्यक्तित्व, देश–हित में बलिदान और आत्मोत्सर्ग की अदम्य प्रेरणा का पुंज रहा है। औरंगज़ेब की हिंदुओं को ज़बरन मुसलमान बनाने के प्रयासों से त्रस्त हिंदू जनता की चेतना सुसुप्त थी, जिसे झकझोरने के लिए किसी महापुरुष का बलिदान अपेक्षित था। विचार की इस घड़ी में गुरु गोविंद सिंह ने (जो उस समय केवल नौ वर्ष की अल्पायु के थे) अपने पिता गुरु तेग बहादुर को बलिदान के लिए प्रेरित

---

23 दशम ग्रंथ सटीक (द्वितीय भाग), चौबीस अवतार (कृष्णावतार), अनु. डॉ. जोध सिंह, छंद सं. 2492, पृ. 405

24 ऋग्वेद, 10.154.3

25 दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), विचित्र नाटक, अनु. डॉ. जोध सिंह, छंद सं. 6/42, पृ. 165

किया।[26] धर्म के द्वारा राष्ट्र–साधना के पथ पर ही उनके चारों पुत्र – अजीत सिंह, जुझार सिंह, जोरावर सिंह और फतेह सिंह– होम हो गए। किंतु उन्होंने बलिदान का मार्ग नहीं छोड़ा। अपनी पत्नियों द्वारा बच्चों के बारे में पूछने पर संकट की उस क्षण में भी उन्होंने धैर्य से अपने अनुयायियों की ओर इशारा करते हुए कहा :

इन पुत्रन के सीस पै, वार दिए सुत चार।
चार मुए तो क्या भया, जीवत कई हज़ार।[27]

राष्ट्रीयता की भावना से गुरु गोविंद सिंह ने युद्ध किए, अपने पिता और पुत्रों का बलिदान दिया। किंतु युद्ध में जीतने के बाद विजयश्री का श्रेय स्वयं न लेकर अपने शिष्यों को धन्यवाद देते।[28] उनकी आत्मोसर्ग की अदम्य लालसा के संदर्भ में डॉ. सुरजीत कौर जौली का कहना है कि 'राष्ट्रीय अस्मिता की बलिवेदी पर अपना सब कुछ न्यौछावर करके भी पिता व पुत्रों का बलिदान देकर भी युद्ध में जीतने के बाद विजय का संपूर्ण श्रेय अपने को न देकर शिष्यों को ही दिया। आत्मोसर्ग की पराकाष्ठा तो यह थी कि सब कुछ देकर भी उनकी इच्छा यह थी कि उनकी समाधि भी न बने। उनके हृदय में मानवीय एकता व राष्ट्र निर्माण की नींव पर पत्थर की गहरी आकांक्षा थी न कि कलश बजकर चमकने की।'[29]

दशमेश का यही आत्मिक बल ही वह आधार है जो उनकी खालसा सेना का दृढ़ विश्वास बना एवं एक महान सेनानायक के महान बलिदान हेतु सेना ने भारत राष्ट्र की अस्मिता की प्रतिष्ठापना हेतु अधर्म और अन्याय–अनाचार के विरुद्ध विद्रोही भावना को जगाया। अपने स्वयं के लिए उन्होंने परमात्मा से यही वरदान माँगा भले ही किसी भी प्रकार कि विकट परिस्थिति क्यों न हो, किंतु वे शुभ–कर्मों से विमुखित न हों। साथ ही वे यह भी वर माँगते हैं कि 'अकाल पुरुष' ने धर्म–स्थापना के जिस उद्देश्य से उन्हें भेजा था उसकी रक्षा करते हुए वे संघर्ष–क्षेत्र में ही अपना प्राणोत्सर्ग कर दें।[30] अशेष बलिदान की अवधारणा का यह वीरत्व रूप उनके व्यक्तित्व का अंश था, आत्मोत्सर्ग का अदम्य प्रेरक था। किंतु यह केवल उन तक ही सीमित नहीं था। इस ज्वलंत भावना के माध्यम से वे हिंदू जाति में वीर–भावना को आलोड़ित–विलोड़ित करना चाहते थे।

आत्मोत्सर्ग का आदर्श प्रस्तुत करते हुए राष्ट्र को नई दिशा से आलोकित करना गुरु गोविंद सिंह का अभीष्ट था। अन्याय, अधर्म एवं अनीति के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष करने वाले दशमेश ने इसके लिए अपनी साहित्य–निधि 'दशम–ग्रंथ' में संकलित विभिन्न कृतियों में वीरत्व भावना से ओत–प्रोत काव्यात्मक प्रस्तुतियों का प्रणयन करके आत्मोत्सर्ग और बलिदान की चेतना का संचरण किया। उन्होंने जहाँ अपने पूर्ववर्ती गुरुओं द्वारा दर्शाए

---

26 गुरु विलास : गुरु गोविंद सिंह, भाई सुखा सिंह, पृ. 81

27 गुरु गोविंद सिंह और उनका काव्य, डॉ. प्रसिन्नी सहगल, पृ. 55

28 दशम ग्रंथ सटीक (द्वितीय भाग), खालसा महिमा, अनु. डॉ. जोध सिंह, छंद सं. 2, पृ. 700–701

29 सिख विचारधारा और मानव मूल्य, संपा. डॉ. अमर सिंह वधान एवं जोश (भक्ति और शक्ति के समन्वयक गुरु गोविंद सिंह – डॉ. सुरजीत कौर जौली), पृ. 98

30 दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), चंडी चरित्र उक्ति विलास, अनु. डॉ. जोध सिंह, छंद सं. 231, पृ. 251

भक्ति के दर्शन की विरासत को 'धर्मवीर' की भाँति सहेजे रखा, वहीं आत्म–बलिदान के उत्साह से 'युद्धवीर' की भाँति युद्ध ही नहीं किए अपितु अपने खालसा–सैनिकों में युद्ध को ईश्वरीय कार्य मानने का विश्वास भी उत्पन्न किया। वहीं युद्ध को दर्शन के साथ संबद्ध करके युद्ध के संपूर्ण दर्शन का विकास करके जन–सामान्य के चिंतन का अंग बना दिया। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा है कि 'आत्म–रक्षा में लड़ाइयाँ तो राणा प्रताप और शिवाजी ने भी लड़ीं, किंतु वे युद्ध का दर्शन नहीं निकाल सके। सिक्खों ने दर्शन भी निकाला और खिलाफत जैसा एक संगठन भी जिसमें एक ही व्यक्ति सारे संप्रदाय का राजा और गुरु, दोनों होता था।'[31]

गुरु गोविंद सिंह ने तद्युगीन ज्वलंत परिस्थितियों से विवश होकर धर्म के आवरण में युद्धों का चित्रण करके वीर–भाव को यथेष्ट चित्रित किया है। उन्होंने 'चंडी चरित्र उक्ति विलास', 'विचित्र नाटक', 'चौबीस अवतार', 'पाख्यान चरित्र' आदि विभिन्न रचनाओं में युद्ध–दर्शन और वीर–भावना को व्यंजित किया है। धर्मयुद्ध के रण–क्षेत्र में वे सत्य की खड्ग को, न्याय के खांडे को और नीति की तुफ़ंग एवं नाम का अग्निबाण धारण करके धर्म–युद्ध के निमित्त अग्रसर हुए थे। इन शस्त्रों की सहायता से दशमेश ने मुगल शक्ति के रूप में असत्य–अनाचार और दुराचार की प्रतीक आसुरी शक्तियों की जड़ों को हिलाकर रख दिया था। डॉ॰ वीणा अग्रवाल के अनुसार 'गुरु जी यह अच्छी तरह समझ चुके थे कि जनता के पास धर्म तो है किंतु सच्ची राष्ट्रीयता की, सामूहिक चेतना की भावना नहीं है, जिसके बिना उसे एकता के सूत्र में नहीं बाँधा जा सकता। अतः इन कथाओं के माध्यम से उन्होंने यह समझाने का प्रयास किया कि इसी प्रकार यदि सभी देशवासी संगठित होकर अपने हृदय में मुगलों के दमन का दृढ़ संकल्प धारण कर, एक शक्ति के नेतृत्व से संचालित होकर सम्मिलित प्रयास करें तो अत्यंत शक्तिशाली अत्याचारी शासक का भी अंत हो सकता है।'[32]

वस्तुतः अपने जीवन के साथ–साथ साहित्य में अशेष आत्म–बलिदान एवं आत्मोत्सर्ग की अदम्य प्रेरणा प्रदान करके गुरु गोविंद सिंह ने राष्ट्र की अन्याय–अत्याचार को सहन करती प्रसुप्त चेतना को आलोड़ित एवं उत्खनित करके राष्ट्र–साधना के पथ को उत्कर्ष का आयाम प्रदान किया है जिसका लक्ष्य था – धर्म–संस्थापना द्वारा मानव कल्याण।

(iii) पौराणिक योद्धाओं–कथाओं की प्रतीकात्मक प्रस्तुति : साहित्य, जीवन से रस ग्रहण कर अभिव्यक्ति पाता है। पुराणों में वर्णित घटनाएँ एवं पात्र के रूप में रस, कालांतर में साहित्य के क्षेत्र में प्रस्तुत होकर प्रतीक का रूप धारण कर परवर्ती साहित्य में अपना स्थान बना लेता है। पुराणों में अनेक घटनाओं–कथाओं के वर्णन में अनगिनत पात्रों का संयोजन है। परवर्ती रचनाकारों ने इन पौराणिक स्रोतों को प्रमुख सहायिका के रूप में साहित्य में लाकर सांस्कृतिक चेतना से एकाकार कराया है। 'प्रत्येक भाषा में प्रायः ऐसे शब्द रहा करते हैं जिनसे केवल ऊपरी अर्थ का ही बोध नहीं होता, अपितु शब्द–विशेष का

---

31 संस्कृति के चार अध्याय, डॉ.रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 319

32 गुरु गोविंद सिंह और खालसा पंथ की स्थापना, डॉ. वीणा अग्रवाल, पृ. 32

उच्चारण करते ही एक रेखा–सी हमारी स्मृति के समक्ष आ जाती है। कहीं–कहीं ऐसे शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं जिनके पीछे एक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि है, अथवा कुछ कल्पित सत्य का आधार है।'[33] जैसे, हिंदी साहित्य में प्रयुक्त होने वाले विष्णु के चौबीस अवतार (विशेषतः 'रामावतार' एवं 'कृष्णावतार'), कामधेनु, रावण, शंख, कंस, बलि, सुमेरु पर्वत, बाली, सुग्रीव, पूतना, गंगा–यमुना, चंडी, मुरली, हिमालय पर्वत आदि शब्दों का अस्तित्व केवल शब्द–मात्र के रूप में नहीं है। ये शब्द किसी न किसी पौराणिक आख्यान अथवा सांस्कृतिक संदर्भ का संवहण किए हुए होते हैं।

गुरु गोविंद सिंह, समाज को शुभ–कर्मों की पवित्र भवना से सिंचित करना चाहते थे ताकि समाज में परिव्याप्त अनाचार–अत्याचार और कुरीतियों का विरोध हो, मनुष्य धर्म–परायण बन सके और समाज में धर्म की स्थापना हो। इस हेतु लोगों को कर्मनिष्ठ बनाना एवं कर्मनिष्ठता के प्रति जागृति पैदा करना आवश्यक था। गुरु गोविंद सिंह इस महत् कार्य के लिए लोगों के अंतर्मन में शौर्य एवं वीरत्व का उत्साह संचरित करना चाहते थे। जीवन में गति और कर्मण्यता के लिए उत्साह का विशेष महत्व है। शास्त्रीय पद्धति में वर्णित दयावीर, दानवीर आदि रूपों की परिकल्पना का विधान है, परंतु इनमें श्रेष्ठ युद्ध–वीर है।[34] क्योंकि युद्ध–वीर व्यक्ति ही सर्वदा धर्म–परायण बनता है। वह न केवल सत्य एवं धर्म की ओर प्रवृत्त होता है अपितु इनका रक्षक भी बनता है। किंतु इसके लिए वह मानवता का अवलंब लिए रहता है, दया–क्षमा आदि भावों को दरकिनार नहीं कर देता। लोकमंगलकारी गुणों से युक्त एवं मानवता के पक्षधर उदात्त भाव से युक्त वीर–पुरुष अपने शुभ–कर्मों के द्वारा सत्य एवं धर्म की स्थापना करता है।

गुरु गोविंद सिंह ने राष्ट्र को चेतना प्रदान करने के लिए जहाँ अपनी आत्मकथा 'विचित्र नाटक' के द्वारा जीवन की घटनाओं को माध्यम बनाया है वहीं पौराणिक योद्धाओं एवं कथाओं को राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति का माध्यम भी बनाया है। उन्होंने 'चौबीस अवतार' (विशेषतः 'रामावतार' एवं 'कृष्णावतार'), 'चंडी–चरित्र उक्ति विलास', 'चंडी चरित्र (द्वितीय)' आदि विविध रचनाओं में वीरत्व एवं शौर्य की तेजोमय भावना से ओत–प्रोत पौराणिक योद्धा–पात्रों को प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। अपनी इस शौर्यता एवं वीर–भाव को चरितार्थ करने के लिए ये पात्र सतत् रूप से युद्ध–कर्म में संलग्न रहते हैं। पौराणिक योद्धाओं एवं कथाओं की प्रतीकात्मक प्रस्तुति के संबंध में डॉ. जयभगवान गोयल का अभिमत है कि 'दशम गुरु का जीवन, व्यक्तित्व एवं काव्य इसी वीर–भावना से ओत–प्रोत है और 'दशम ग्रंथ' का अधिक भाग वीर–भावना से अनुप्राणित है। जहाँ विचित्र नाटक में गुरु जी अपनी युद्ध कथाओं के ओजस्वी वर्णन द्वारा अपने अनुयायियों में धर्म–युद्ध का उत्साह उत्पन्न करते थे, वहाँ 'चौबीस अवतार' तथा 'चंडी–चरित्र' की पौराणिक कथाओं के द्वारा भी युद्धोत्साह को ही उत्तेजित करने का सफल प्रयास किया गया है।'[35] अपने इसी मत को और अधिक ढंग से स्पष्ट करते हुए डॉ. गोयल ने अन्यत्र

---

33 भवानी प्रसाद मिश्र की काव्यभाषा का शैलीवैज्ञानिक अध्ययन, डॉ. नीलम कालड़ा, पृ. 147

34 हिंदी साहित्य कोश, डॉ. धीरेंद्र वर्मा, पृ. 734

35 गुरुमुखी लिपि में हिंदी साहित्य, डॉ.जयभगवान गोयल, पृ. 34

यह भी लिखा है कि 'अपने पिताश्री की हत्या का प्रतिशोध लेने के लिए वे दृढ़ प्रतिज्ञ थे, और उसी के लिए यहाँ शक्ति संचय कर रहे थे। उनके साथ यहाँ कई सशक्त कवि थे जो हिंदुओं में सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय जागरण के अभियान में, अपनी काव्य–प्रतिभा से उनकी सहायता कर रहे थे। 'कृष्णावतार' इसी आंदोलन का एक अंग था। इसके द्वारा वे कृष्ण–भक्ति का प्रचार करना नहीं चाहते थे वरन् कंस, जरासंध आदि असुर उनके लिए मुगल शासकों के प्रतीक थे। वे दिखाना चाहते थे कि उनके विरुद्ध वे उसी प्रकार से लड़ रहे हैं जैसे कृष्ण असुरों के साथ लड़े थे और अपने अनुयायियों को इस धर्मयुद्ध के लिए उत्साहित करने के लिए ही वे कृष्ण की वीर–कथाएँ सुनाते या सुनवाते थे।'[36] यही कारण है कि 'कृष्णावतार' में श्रीकृष्ण के शौर्य एवं वीरत्व को प्रतिपादित किया गया है। किंतु इस प्रतिपादन में विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण की पौराणिक कथा की भक्ति–भावना से प्रस्तुति न होकर युद्ध की आवश्यकताओं के अनुरूप दुष्ट–दलन एवं धर्म की संस्थापना हेतु युद्ध–परायणता है। इसी युगीन आवश्यकता से प्रेरित होकर दशमेश ने युद्ध में सफल होने का वर देने की याचना करते हुए कहा है :

देहि शिवा बर मोहि इहै शुभ करमन ते कबहुँ न टरों।
न डरों अरि सों जब जाइ लरों निसचौ कर आपनी जीत करों।
अरु सिक्ख हों आपने ही मन को इह लालच हउ गुन तउ उचरों।
जब आव की अउध निदान बनै अति ही रन मै तब जूझ मरों।[37]

'कृष्णावतार' में श्रीकृष्ण अनेकानेक दुष्टों का नाश करते हैं और समस्त समाज के दुखों को समाप्त करके धर्म की स्थापना करते हैं और मथुरा का राज्य उग्रसेन को सौंप देते हैं। वस्तुतः उन्होंने पौराणिक कथाओं के कलेवर को अधिकांशतः पौराणिक रूप में ही स्वीकृत करके उनकी काव्यात्मक प्रस्तुतियाँ की हैं। वहीं वे कल्पना के सहयोग से कथाओं को नवीन आयाम भी प्रदान करते हैं। डॉ॰ शमीर सिंह के अनुसार 'प्रायः प्रबंध कवि पौराणिक–ऐतिहासिक घटनाओं को युग के अनुरूप ढाल लेते हैं। वे मुख्य घटनाओं को अपने युग के संदर्भों से इस प्रकार जोड़ते हैं कि पौराणिकता और समकालीनता दोनों का निर्वाह एक–साथ हो जाता है।'[38] जैसे, गुरु गोविंद सिंह ने अपनी रचना 'रामावतार' में पौराणिक कथाओं के आधार पर राम–सीता जन्म, स्वयंवर, वनवास, खर–दूषण वध, सीता हरण, राम–रावण युद्ध, राम–राजतिलक, सीता त्याग, शंभुक वध आदि अंशों को प्रस्तुत किया है, वहीं दुष्ट–संहारक और संत–पालक रूप–प्रतिष्ठा हेतु नवीन उद्‌भावना कर राम को वन में भेजकर राक्षसों का नाश कराने के लिए ब्रह्मा द्वारा मंथरा को स्वयं अयोध्या भेजने का उल्लेख किया है।[39] इसी तरह, 'कृष्णावतार' में देवकी विवाह, श्रीकृष्ण जन्म, पूतना वध, ग्वाल–बालकों के साथ श्रीकृष्ण का खेलना, यशोदा को विश्व मुख में दिखाना, कालियनाग वध, रास मंडल, कंस वध, रुक्मिणी विवाह, शिशुपाल वध, सुदामा प्रसंग, सुभद्रा विवाह आदि कथा–प्रसंगों को गुरु जी ने न्यूनतम परिवर्तनों के साथ प्रस्तुत किया है।

---

36 गुरुमुखी लिपि में हिंदी साहित्य, डॉ.जयभगवान गोयल, पृ. 73

37 दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), चंडी चरित्र उक्ति विलास, अनु. डॉ. जोध सिंह, छंद सं. 231, पृ. 251

38 कृष्णावतार का विश्लेषणात्मक अध्ययन, डॉ. शमीर सिंह, पृ. 201

39 दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), चौबीस अवतार (रामावतार) अनु. डॉ. जोध सिंह, छंद सं. 198, पृ. 475

जबकि समकालीन युग–बोध को अभिव्यक्त करने के लिए उन्होंने जरासंध के साथ श्रीकृष्ण के युद्ध को हिंदू और यवनों के युद्ध के रूप में प्रस्तुत किया है।[40] इसके लिए गुरु गोविंद सिंह ने दोनों ओर की सेना के सेनानियों के नामों को परिवर्तित किया है। जरासंध की सेना में हिंदू पद्धति के नामों के साथ 'सिंह' लगाया है। उदाहरण के लिए, नरसिंह, धराधर सिंह, धूम सिंह, मन सिंह, अटल सिंह, गजासिंह, धनासिंह, हरिसिंह, रण सिंह, अगण सिंह, अचल सिंह आदि लेच्छ सेना के सेनानी हैं। जरासंध की सेना के सेनानियों के नाम हैं – अजाइब खाँ, गैरत खाँ, शेर खाँ, सैयद खाँ, मीर खाँ, नाहर खाँ, बारूद खाँ, दलावर खाँ आदि। श्रीमद्भागवद् पुराण की कथा को आधार बनाकर गुरु गोविंद सिंह ने युगीन आवश्यकता के अनुरूप धर्म–युद्ध में लगे रहने की कामना व्यक्त की है और रण–भूमि में जूझ मरने की वर–याचना करते हुए लिखा है :

शत्रुन सिउ अति ही रन भीतर
जूझ मरो कहि साच पतीजै।
संत सहाइ सदा जग माइ
क्रिपा कर स्याम इहै बरु दीजै।।[41]

इसी संदर्भ में गुरु गोविंद सिंह देवी चंडी से संबंधित रचनाओं को भी अवलोकित किया जा सकता है। उनकी 'चंडी–चरित्र उक्ति विलास' में वर्णित अनेक प्रसंगों के गहन अध्ययन–विश्लेषण से यही ज्ञात होता है कि वे पौराणिक कथा की पुनर्प्रस्तुति मात्र नहीं हैं। देवी चंडी की पौराणिक कथा को दशम गुरु, गुरु गोविंद सिंह ने युगीन स्थितियों–परिस्थितियों के अनुरूप नवीन आयाम प्रदान किया है। 'चंडी–चरित्र उक्ति विलास' की प्रमुख पात्र 'चंडी–देवी' है, जो हिंदू जाति के ओजस्वी नायक की प्रतीक हैं। इसी प्रकार, इस रचना में चंड–मुण्ड, महिषासुर, धूम्रलोचन, शुंभ तथा निशुंभ आदि असुर पात्र आए हैं, जो अत्याचारी, नृंशस, क्रूर तथा उद्दंड मुगल–नायकों के प्रतीक हैं। महिषासुर ने आसुरी प्रवृत्तियों के प्रसार हेतु संपूर्ण विश्व पर अपना अधिकार कर लिया था, देव सेना पर चालाकी से आक्रमण करके उन्हें पराजित कर उनके शस्त्रों को खंड–खंड कर दिया था और देवताओं के वैभव को नष्ट कर दिया था। उसी तरह, मुगल शासक औरंगज़ेब ने भी हिंदू जाति की गौरवशाली परंपरा–अस्मिता को विनष्ट करने एवं संपूर्ण भारत पर अपना आधिपत्य स्थापित करने हेतु हिंदुओं पर अत्याचार–अनाचार करने शुरू कर दिए थे।[42] दैत्यों के बढ़ते हुए अत्याचार को रोकने तथा देवताओं की अस्मिता की रक्षा करने के लिए देवी चंडी ने दैत्यों के संहार के निमित्त संघर्ष करने का निर्णय लिया।[43] अपने अस्त्रों–शस्त्रों से सुसज्जित देवी चंडी ने हाथ में कृपाण लेकर बलशाली महादैत्य का अंत

---

40 दशम ग्रंथ सटीक (द्वितीय भाग), चौबीस अवतार (कृष्णावतार), अनु. डॉ. जोध सिंह, छंद सं. 1590–1592, पृ. 192–193

41 दशम ग्रंथ सटीक (द्वितीय भाग), चौबीस अवतार (कृष्णावतार), अनु. डॉ. जोध सिंह, छंद सं. 1900, पृ. 262

42 दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), चंडी–चरित्र उक्ति विलास, अनु. डॉ. जोध सिंह, छंद सं. 13, पृ. 201

43 दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), चंडी–चरित्र उक्ति विलास, अनु. डॉ. जोध सिंह, छंद सं. 23–24, पृ. 204

कर दिया। समय की माँग को ध्यान में रखते हुए गुरु गोविंद सिंह भी यही चाहते थे कि मुगल–शासन से संत्रस्त हिंदू जन–समाज अपनी पौराणिक देवी के शौर्य एवं वीरता से परिपूर्ण कृत्यों से प्रेरणा ले और अपने राष्ट्र एवं धर्म की रक्षा के निमित्त शस्त्र उठाकर अन्याय और अत्याचार का नाश करके सुदृढ़ समाज की नींव को मजबूत करे।[44]

इस प्रकार, गुरु गोविंद सिंह समाज की नींव को मजबूत करने के लिए धर्म–युद्ध छेड़कर अत्याचारी का नाश करने का मार्ग दिखाते हैं। किंतु इस सशस्त्र संघर्ष के मूल में सत्ता पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने की आकांक्षा नहीं है, राज्य प्राप्ति की उन्हें कोई लालसा नहीं है। उन्होंने सत्ता–प्राप्ति या किसी अन्य निजी राजनैतिक उपलब्धि की चाह में युद्ध कर्म नहीं किए थे। वस्तुतः वे एक धर्म–प्रवर्तक गुरु थे, जिन्होंने विदेशी जाति से देश की रक्षा करना अपना पावन–कर्तव्य समझा और विवशतावश योद्धा रूप धारण किया। उनकी रचनाओं में देवी चंडी निस्वार्थ भाव से शस्त्र उठाकर महिषासुर का वध करती हैं और उसके बाद इंद्र को उसका राज्य लौटाकर चली जाती हैं। दशमेश ने भी अत्याचारी शासकों के अनाचारों से त्रस्त जन–समाज को मुक्त कराने हेतु शस्त्र धारण करके संघर्ष को दायित्व को निःस्वार्थ भाव से संपन्न कर अपने घर चले गए – 'इत हम होइ बिदा घरि आए।/सुलह नमित वै उतहि सिधाए।[45]

स्पष्ट है कि दशमेश ने अपने काव्य में पौराणिक–ऐतिहासिक योद्धाओं एवं कथाओं के अधिकांश कलेवर को पौराणिक रूप में काव्यात्मक प्रस्तुति करने के साथ–साथ युगीन संदर्भ के अनुकूल अनुस्यूत करके अभिनव संभावनाओं के आयाम को राष्ट्रीय चेतना में परिणत किया है। राष्ट्र के हित में दुष्टों का दलन एवं साधुओं का परित्राण करके संघर्ष की प्रेरणा और स्वयं किसी भी प्रकार की निहित आकांक्षा से विरहित दशमेश ने इसे धर्म–युद्ध का उज्ज्वल एवं उदात्त प्रतीक बना दिया है। विविध योद्धाओं, युद्धों एवं पौराणिक कथाओं को साहित्य में साकार रूप में प्रस्तुत करके धर्म–युद्ध की पावन–पुनीत भावनाओं को उद्दीप्त करने में गुरु गोविंद सिंह ने पूर्ण सफलता प्राप्त की है और अपने इस अभीष्ट की पूर्ति और इस धर्मानुकूल कार्य को संपन्न करते हुए शक्ति की सार्थकता को सिद्ध किया है।

निष्कर्ष –

अंत में यही कहा जा सकता है कि गुरु गोविंद सिंह युगीन समाज में जहाँ प्रादेशिकता की भावना व्याप्त थी, वहीं राष्ट्रीयता के संबंध में संकुचित दृष्टि थी। किंतु, राष्ट्रीयता की भावना पर पकड़ की दृष्टि से जुझारू संघर्ष के लिए कटिबद्ध गुरु गोविंद सिंह ने मृतप्रायः हिंदू जाति में ओजस्वी एवं प्रेरणाप्रद वाणी द्वारा जो प्राण फूँके, उसने हिंदू जाति को झकझोर कर रख दिया, प्रादेशिकता एवं राष्ट्र संबंधी उनकी संकुचित दृष्टि की नींव पूरी तरह से हिल गई। परिणामतः समूचे देशवासियों ने शक्ति का संचय एवं संगठन करके विदेशी जाति का कड़ा मुकाबला किया, जिसमें उन्हें पर्याप्त सफलता भी प्राप्त हुई।

---

44 दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), चंडी–चरित्र उक्ति विलास, अनु. डॉ. जोध सिंह, छंद/पृ. सं. 37/206 एवं 51/209

45 दशम ग्रंथ सटीक (प्रथम भाग), विचित्र नाटक, अनु. डॉ.जोध सिंह, छंद सं. 9/23, पृ. 179

अत्यधिक संकुचित युगीन राष्ट्रीय दृष्टि और नृशंस यवन शासकों के धर्म–असहिष्णु एवं अमानुषिक अनाचार–अत्याचारों से स्पंदित दशमेश को सिक्ख गुरुओं के भक्तिपरक मानवतावादी धर्म–प्रचार में शक्ति का समन्वय कर उनकी राष्ट्रीय चेतना को अनुप्राणित कर धर्मयुद्ध के रूप में देश–प्रेम का व्यापक फलक निर्मित किया। राष्ट्र के प्रति सदैव समर्पित दशमेश राष्ट्र के प्रति सर्वस्व होम कर देने की उद्दाम भावना का अवलंब लेकर देश एवं देशवासियों के रक्षार्थ पिता–बलिदान, बच्चों की शहीदी आदि अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। उनकी असीम–व्यापक जीवट की द्योतक अमोघ और दिव्य शक्ति देशप्रेम के सम्मुख मुगल सेना न टिक सकी। उनके द्वारा प्रतिपादित राष्ट्रीय चेतना पूरी तरह से धर्मानुप्राणित थी। धर्म को उन्होंने व्यक्ति–समाज के साथ–साथ राष्ट्र का भी धारक माना और उसी के आधार पर राष्ट्रीय चेतना का संचार किया; अपने व्यक्तित्व के साथ–साथ कृतित्व द्वारा राष्ट्रीय चेतना को प्रखर से प्रखरतर बनाया है। सांप्रदायिक, जातीय और प्रादेशिकता की संकीर्णता को तोड़ते हुए उन्होंने राष्ट्र के व्यापक संरक्षण के लिए धर्म युद्ध के रूप में संघर्ष, आत्मत्याग–बलिदान और उत्सर्ग की चेतना के द्वारा जन–सामान्य में राष्ट्रीय राष्ट्रीय एकता की प्रबल तरंगों का उद्वेलन किया। उनकी साहित्यिक रचनाएँ इसका ज्वलंत प्रमाण हैं जिससे उद्भूत राष्ट्रीय चेतना की मशाल ने जड़त्व समाज को ऊर्जस्वित किया।

***

राष्ट्रीयता की सशक्त अभिव्यक्ति : भारत–भारती

डॉ॰ कुलभूषण शर्मा*

आधुनिक हिंदी काव्यधारा में अनवरत साहित्य–साधना और राष्ट्र–वंदन में संलग्न रहने वाले, मानवतावादी नैतिक–सांस्कृतिक विचार से परिपूर्ण राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का अन्यतम स्थान माना गया है। मैथिलीशरण एक ऐसे सशक्त कवि हैं, जिन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से न केवल राष्ट्र–गौरव को अभिव्यक्ति दी वरन् उनका साहित्य भारतीय संस्कृति के उदात्त चरित्रों को विशेषकर उपेक्षित पात्रों को संवेदनपूर्ण अभिव्यक्त देता है। दो महाकाव्य, लगभग 19 खंडकाव्य, 7 अनूदित काव्य, 3 नाटक तथा 'भारत भारती' जैसे वृहत काव्य के रचयिता मैथिलीशरण गुप्त भारतीयता के प्रखर प्रवक्ता, भारतीय संस्कृति के सशक्त व्याख्याता और राष्ट्रीय चेतना के उत्कृष्ट उद्घोषक के रूप में अपनी पहचान बनाए हुए हैं। इन्होंने अपने काव्य के द्वारा भारतीय इतिहास, पुराण के प्रति चिंतन भाव के साथ–साथ वर्तमान समाज पर दृष्टि तथा आगत भविष्य के प्रति आशावादी दृष्टिकोण को भी अभिव्यक्ति दी है।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की प्रसिद्धि एवं उनकी राष्ट्रीय पहचान का मूल आधार उनके द्वारा रचित भारत–भारती रचना रही है। 'भारत–भारती' मात्र एक रचना नहीं बल्कि भारतीय पुराण, इतिहास, वर्तमान परिस्थितियाँ और भारतीय भविष्य का ऐसा प्रतिरूप है जो सदैव गुप्त जी का समाज ही नहीं वरन् हमारा आने वाला प्रत्येक समाज और युग का प्रतिनिधित्व करता रहेगा। यही कारण है कि डॉ॰ केसरी नारायण शुक्ल का कहना है कि "गुप्त जी के बिना द्विवेदी युग का कोई भी परिचय या विश्लेषण अपूर्ण या अधूरा रहेगा। युग की पूरी–पूरी झलक हमें मैथिलीशरण गुप्त में मिलती है। वे हमारे प्रतिनिधि कवि हैं और 'भारत–भारती' इस युग का दर्पण। केवल इसी ग्रंथ से उस युग का पूरा परिचय मिल सकता है।"[1]

मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित 'भारत–भारती' राष्ट्रीय भावना से अभिप्रेरित अत्यंत उच्चकोटि की काव्य–रचना है। 1911 में इसका लेखन आरंभ किया गया तथा 1912 में इसे पूर्ण किया गया। तत्पश्चात् पुनः सुधार के साथ 1914 ई॰ में इसे पुनः प्रकाशित किया गया। भारत के गौरवशाली पौराणिक एवं ऐतिहासिकता की पावन गाथा के साथ–साथ इस रचना में भारतीय संस्कृति के विविध आयामों को अत्यंत विस्तृत रूप में चित्रित किया गया। यही कारण है कि आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी इस कृति की महत्ता और उपयोगिता पर अपना विचार रखते हुए कहते हैं कि 'यह काव्य वर्तमान हिंदी साहित्य में युगांतर उत्पन्न करने वाला है। वर्तमान और भावी कवियों के लिए यह आदर्श का काम करेगा। यह सोते हुए को जगाने वाला है, भूले हुओं को ठीक रास्ते पर लाने वाला है, निरुद्योगियों को उद्योगशील बनाने वाला है, आत्म विस्मृतों को पूर्व स्मृति दिलाने वाला है।'[2] इस प्रकार गुप्त के काव्य गुरु आचार्य द्विवेदी स्वयं इस कृति की महत्ता को रेखांकित करते हैं।

* सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, पंजाब केंद्रीय विश्वविद्यालय, बठिंडा, पंजाब –151401,मो. 9811765083

'भारत–भारती' वास्तव में अपने युग को अभिव्यक्ति देने वाली तथा साथ ही संस्कृति के बोध को साहित्यिक रूप में व्यंजित करने वाली एक सशक्त रचना है। इसके माध्यम से गुप्त जी ने आंतरिक वैचारिकता के साथ–साथ भावनात्मकता को राष्ट्र के साथ संबद्ध किया है। इय रचना में हमारा गरिमामंडित गौरवशाली इतिहास के साथ–साथ विविध–परिस्थितियों और मनःस्थितियों में उलझा वर्तमान चित्रित हुआ है। साथ ही उन्होंने अतीत और वर्तमान के चित्रण के अनन्तर आशापूर्ण आदर्श भविष्य की भी अभिव्यंजना की है। गुप्त जी की दृष्टि में एक ऐसे काव्य की आवश्यकता थी जिससे हम अतीत के गौरव गान द्वारा वर्तमान की स्थितियों के मध्य से सुखद भविष्य की कामना कर सके। वे स्वयं लिखते हैं कि, "मानसिक वेग को उत्तेजित करने के लिए कविता एक उत्तम साधन है। परंतु बड़े खेद की बात है कि हम लोगों के लिए हिंदी में अभी तक इस ढंग की कोई पुस्तक नहीं लिखी गई जिसमें हमारी प्राचीन उन्नति और अर्वाचीन अतीत का वर्णन भी हो और भविष्यत् के लिए प्रोत्साहन भी, इस अभाव की पूर्ति के लिए जहाँ तक मैं जानता हूँ कोई यथोचित प्रयत्न नहीं किया गया। परंतु देश वत्सल सज्जनों को यह त्रुटि बहुत खटक रही है।"[3]

मैथिलीशरण गुप्त के उपर्युक्त कथन से पता चलता है कि गुप्त जी राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित होकर ही इस कृति की रचना करते हैं। यही नहीं इस काव्य रचना से पूर्व 1904–05 में अल्लाया दत्तात्रेय कैफ़ी ने भी 'भरत–दर्पण' नाम से हिंदुओं के उत्थान हेतु एक रचना लिखी थी। इस रचना से वे बहुत प्रेरित हुए। वहीं दूसरी ओर 'भारत–भारती' की भूमिका में गुप्त जी कहते हैं कि माननीय श्रीमान राजा रामपाल सिंह जी द्वारा एक पत्र लिखा गया[4] जिसमें यह निवेदन किया गया कि मौलाना हाली द्वारा रचित 'मुसद्दस' को लक्ष्य करके हिंदी में हिंदुओं के जागरण हेतु एक रचना लिखी जाए। इन्हीं के आदेश को ध्यान में रख 'मुसद्दस' को पढ़कर उसके ढंग की एक रचना लिखी जो 'भारत–भारती' के नाम से प्रकाशित हुई।

राष्ट्रीयता की संकल्पना एवं उसकी महत्ता केवल भौगोलिक–सीमा द्वारा ही निर्धारित नहीं होती। राष्ट्र के प्रति समर्पण, राष्ट्र हित सर्वोपरि, राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य का नाम ही राष्ट्रीयता है। यह जाति, धर्म, संस्कृति से ऊपर उठकर मूलभूत एकता को अभिव्यक्ति देता है। देश के प्रति चेतन–भाव, समस्याओं को दूर करने का भाव तथा संपूर्ण देश में आपसी एकता, अखंडता, समानता, सद्भाव, सहयोग और विश्वास का ही परिचायक राष्ट्रीयता है। डॉ॰ शिव कुमार मिश्र के अनुसार "भूमि अर्थात् भौगोलिक एकता, जन–गण की राजनैतिक एकता और जन संस्कृति अर्थात् राष्ट्रीय एकता, इन तीनों के समुच्चय का नाम राष्ट्र है।[5] वहीं दूसरी ओर डॉ॰ विद्यानाथ गुप्त का मानना है कि "राष्ट्रीयता मनुष्य की सहज और स्वाभाविक वृत्तियों में से एक है, जिसके आधार पर वह अपने देश के प्रति आत्मीय लगाव का अनुभव करता है। इसी भावावेग में वह राष्ट्र की रक्षा, कल्याण और विकास के लिए सर्वस्व न्यौछावर करते हुए अपना गौरव समझता है।[6]

देश भक्ति की भावना और राष्ट्रीयता को सामान्यतः भिन्न–भिन्न अर्थों में देखा जाता है। किंतु वर्तमान संदर्भ में देखा जाए तो देश की भक्ति की भावना को राष्ट्रीयता के

साथ संबद्ध कर प्रस्तुत किया जाता है। आज यह देखा जाता है कि राष्ट्रीयता के अंतर्गत स्वदेशानुराग को मूल रूप में वर्णित किया जाता है। राष्ट्रीयता की भावना तब तक पूर्ण नहीं होती जब तक अपने देश के प्रति मान–सम्मान का भाव न हो। अतः बाबू गुलाबराय का मानना है कि किसी विशिष्ट भौगोलिक इकाई के जन समुदाय के पारस्परिक सहयोग और उन्नति की अभिलाषा से प्रेरित, उस भूभाग के लिए गर्व और प्रेम की भावना ही राष्ट्रीयता है।[7] भारत–भारती रचना में मैथिलीशरण गुप्त को भारत देश के प्रति भाव जाग्रत करते हुए एक ओर भारतीय संस्कृति, उसका गौरवशाली इतिहास और परंपरा के प्रति संवेदना जागृत करते हैं तो दूसरी ओर भारतीयता के प्रति संवेदना भी जागृत करते हैं –

भू लोक का गौरव, प्रकृति का पुण्य लीला–स्थल कहाँ?
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगाजल कहाँ।
संपूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है?
वही कि जो ऋषिभूमि है, वह कौन? भारत वर्ष है।

\+ + + + + +

यह पुण्य भूमि प्रसिद्ध है इसके निवासी आर्य्य हैं।
विद्या, कला–कौशल्य सबके जो प्रथम आचार्य हैं।
संतान उनकी आज यद्यपि हम अधोगति में पड़े
पर चिह्न उनकी उच्चता के साथ भी कुछ हैं खड़े।[8]

गुप्त जी ने 'भारत–भारती' में केवल देश के प्रति गौरव भाव ही उत्पन्न नहीं किया बल्कि हमारे पूर्वजों की कीर्ति का भी भरपूर चित्रण किया है। वे एक ओर पौराणिक पात्रों सहित आर्यों का आदर्श चित्रण करते हैं तो दूसरी ओर उनके प्रति गर्व भाव को अपनाने का भी कहते हैं। उनकी दृष्टि में हमारे पूर्वज सर्वगुण संपन्न थे जो पाप–कर्म से दूर रहकर सदैव सत्कर्म और संतोष के मार्ग का अनुसरण करते थे। उनका आदर्श जीवन सिद्धांतों पर चलते हुए मोह–माया से दूर ब्रह्मानंद में निमग्न रहता था। वे स्वार्थ से रहित परपीड़ा हरण की भाव से परिपूर्ण हो सत्य, प्रेम, करुणा, मधुरता आदि के भाव से परिपूर्ण थे। ऐसे पूर्वजों के प्रति हमारे मन में न केवल सम्मान भाव होना चाहिए बल्कि उनके प्रति हमें सदैव नतमस्तक रहना चाहिए–

उन पूर्वजों की कीति का वर्णन अतीत अपार है।
गाते नहीं उनके हमीं गुण गा रहा संसार है।
वे धर्म पर करते निछावर तृण–समान शरीर थे,
उनसे वही गंभीर थे, वर वीर थे, ध्रुव धीर थे।
उनके अलौकिक दर्शनों से दूर होता पाप था,
अति पुण्य मिलता था तथा मिटता हृदय का ताप था।
उपदेश उनके शांतिपरक थे निवारक शोक के
सब लोक उनका भक्त था, वे थे हितैषी लोक के।[9]

भारत–भारती की रचना तीन खंडों में की गई है। इसका पहला खंड – अतीत खंड, दूसरा – वर्तमान खंड और तीसरा – भविष्यत खंड है। अतीत खंड के अंतर्गत गुप्त जी ने भारतवर्ष की श्रेष्ठता, उसका आदर्श, हमारे पूर्वज, हमारी सभ्यता और संस्कृति, हमारी कला–कौशल, हमारी एतिहासिक वीरता, शासन प्रणाली आदि के वर्णन के साथ–साथ हमारी बदलती दशा का भी चित्रण किया है। वे एक ओर पूर्वजों की कीर्ति के अनंतर हमारी बदलती दशा पर विचार करते हैं तो दूसरी ओर हम सभी को प्रेरित करते हैं कि हम वर्तमान परिस्थितियों के प्रति अपने अतीत की तुलना पर चिंतन–मनन करें। इसी चिंतन से हम कुछ तथ्यों को देश–राष्ट्र के प्रति देखकर विश्लेषण कर सकेंगे –

हा देव! अब वे दिन कहाँ हैं और वे राते कहाँ?
हैं काल की घातें कि कल की आज हैं बातें कहाँ?
क्या थे और क्या हुआ हम जानता बस काल है,
भगवान जानें, काल की कैसी निराली चाल है।
+ + + + ++
हम कौन थे क्या हो गए और क्या होंगे अभी
आओ, विचारें आज मिलकर ये समस्याएँ सभी
यद्यपि हमें इतिहास अपना प्राप्त पूरा है नहीं,
हम कौन थे, इस ज्ञान को, फिर भी अधूरा है नहीं।[10]

गुप्त जी ने 'भारत–भारती' द्वारा केवल अतीत का गुणगान एवं पूर्वजों की कीर्ति का वर्णन मात्र नहीं किया है। इस रचना में वर्तमान खंड के द्वारा बदलती एवं बदतर होती दशा पर चिंतन भी प्रकट किया है। यही कारण है कि इस रचना की भूमिका में वे कहते हैं कि "यह बात मानी हुई है कि भारत की पूर्व और वर्तमान दशा में बड़ा भारी अंतर है, अंतर न कहकर उसे वैचित्र्य कहना चाहिए। एक वह समय था, यह देश विद्या, कला–कौशल में संसार का शिरोमणि था और एक यह समय है कि इन्हीं बातों का इसमें सोचनीय अभाव हो गया है। परंतु क्या हम लोग सदा अवनति में ही पड़े रहेंगे?"[11] गुप्त जी का यह विचार एक ओर उनकी चिंतन वृत्ति को प्रदर्शित करता है तो दूसरी ओर अतीत और वर्तमान को संबद्ध करने का प्रयास रूप में दृष्टिगत होता है। गुप्त जी ने वर्तमान खंड के अंतर्गत भारतीय इतिहास की कमज़ोरियों को प्रदर्शित करते हुए वर्तमान भारत की झाँकी प्रस्तुत की है। गुप्त जी ने एक ओर दरिद्रता, सूखा, बाढ़, विविध व्याधियों का चित्रण किया तो दूसरी ओर धर्म, समाज, संस्कृति, राजाओं–महाराजाओं, युवाओं आदि की दिशाहीनता का चित्र उतारा है। वे ये सब देख बहुत दुःखी और आहत है कि हमारी दशा लगातार बिगड़ती जा रही है। यथा –

देखो जिधर अब बस उधर ही है उदासी छा रही,
काली निराशा की निशा सब ओर से आ रही।
चिंता–तरंगें चित्त को बेचैन रखती है सदा,
अब नित्य ही आती यहाँ पर एक नूतन आपदा।

+ + + + +

हिंदु समाज सभी गुणों से आज कैसा हीन है,
वह क्षीण और मलीन है, आलस्य में ही लीन है।
परतंत्र पद–पद पर विपद में पड़ रहा वह दीन है।
जीवन मरण उसका यहाँ अब एक दैवाधीन है।[12]

यही नहीं गुप्त जी नारी की सोचनीय होती दशा से भी दुःखी है। किस प्रकार पुरुष प्रधान समाज उसके अधिकार छीन रहा है तथा उसकी लगातार उपेक्षा कर रहा है। नारी की प्रगति से ही देश का विकास संभव है। अतः नारी से उपेक्षा करने वाला समाज शीघ्र नष्ट होता है तथा समाज की ऋद्धि–सिद्धि से हीन हो जाता है। अतः वे कहते हैं –

है, हाय! दोषी तो स्वयं देते उन्हें हम दंड है।
आश्चर्य क्या फिर पा रहे जो दुख आज अखंड है।
ऐसी उपेक्षा नारियों की जब स्वयं हम कर रहे।
अपना किया अपराध उनके शीश पर हैं धर रहे।
भागे न क्यों हमसे भला फिर दूर सारी सिद्धियाँ
पाती स्त्रियाँ आदर जहाँ रहती वहीं सब ऋद्धियाँ।[13]

गुप्त जी ने प्रस्तुत रचना द्वारा केवल समस्या को दिखाया भर नहीं अपितु समाधान भी प्रस्तुत किया। वे भारतीय अतीत के साथ–साथ तीसरे खंड में भविष्यत खंड के द्वारा नवजागरण का प्रयास करते हैं। वे भारतवासियों समेत संपूर्ण हिंदू जाति को चेतावनी देते हैं कि यदि हम सभी अब भी न जागे तो कुछ भी हाथ नहीं आएगा बल्कि सब कुछ हमसे छिन जाएगा। अतः वे चेताते हुए कहते हैं :–

अब भी समय है जागने का देख आँखें खोल के।
सब जग जगाता है तुझे, जग कर स्वयं जय बोल के।
\+ + + + + +
जातीय जीवन दीप अब भी स्नेह पाएगा नहीं।
तो फिर अँधेरे में हमें कुछ हाथ आएगा नहीं।
\+ + + + + +
हत भाग्य हिंदू–जाति! तेरा पूर्व दर्शन है कहाँ?
वह शील, शुद्धाचार वैभव देख, अब क्या है यहाँ?
बीती अनेक शताब्दियाँ पर हाय! तू जागी नहीं।
यह कुंभकर्णी नींद तूने तनिक भी त्यागी नहीं।[14]

यही नहीं गुप्त जी एक ओर नव युवाओं को प्रेरित करते हुए उनमें आत्मविश्वास पैदा करते हैं। तो दूसरी ओर वे भारतवासियों में खोए स्वाभिमान को जगाने का प्रयास करते हैं। उनकी दृष्टि में यदि नवयुवक अपने कर्त्तव्य को समझ आगे आए तथा समस्त जनसमुदाय का मार्गदर्शन करें तो हम बड़ी से बड़ी समस्या से मुक्त हो एक आदर्श समाज का निर्माण कर सकते हैं। देश एवं समाज की सच्ची वीरता युवाशक्ति के ही हाथों में है। अतः गुप्त जी राष्ट्र को जगाते हुए कहते हैं –

अपना प्रयोजन–पूर्ति क्या हम कर सकते नहीं?
क्या तीस कोटि मनुष्य अपना ताप हर सकते नहीं?
हे भाइयों! सोए बहुत, अब तो उठो, जागो अहो!
देखो ज़रा अपनी दशा, आलस्य को त्यागो अहो।।

\+ + + + + +

हे नवयुवाओं! देश भर की दृष्टि तुम पर ही लगी,
हे मनुज जीवन की तुम्हीं में ज्योति सबसे जगमगी।
दोगे न तुम तो कौन देगा योग देशोद्धार में
देखो, कहाँ क्या हो रहा है, आजकल संसार में।।[15]

गुप्त जी भविष्य के भारत में आदर्श भाव प्रदर्शित करते हैं। उनकी दृष्टि में हमें संयत होकर अपने पूर्वजों की मार्ग पर चलना चाहिए। हमें यह प्रयास करना होगा कि उनकी कीर्ति इस युग में धूमिल न हो इसलिए हमें एक अनुशासित मार्ग पर अग्रसर रहना चाहिए। वहीं हमारी आपसी एकता एवं अखंडता ही राष्ट्र को प्रगति की ओर ले जा सकती है। अतः धर्म, संप्रदाय, जात–पात से ऊपर उठकर हमें आपसी सौहाद्र की शक्ति को अपनाना होगा –

किस भाँति जीतना चाहिए, किस भाँति मरना चाहिए।
सो सब हमें निज पूर्वजों से याद करना चाहिए।
पद चिह्न उनके यत्नपूर्वक खोज लेना चाहिए।
निज पूर्व गौरव दीप को बुझने न देना चाहिए।
\+ + + + +
सब बैर और विरोध का बल बोध से वारण करो,
है भिन्नता में खिन्नता ही, एकता धारण करो।
है कार्य ऐसा कौन–सा साधे न जिसको एकता,
देती नहीं अद्‌भुत–अलौकिक शक्ति किसको एकता?[16]

गुप्त जी हम सभी को बार–बार यही परामर्श देते हैं कि किसी भी परिस्थिति में हमें हार नहीं माननी। साथ ही जैसा समय हो या जैसी आवश्यकता हो उसी के अनुरूप हमें योजना बनाकर जीवन को चलाना चाहिए। वे राष्ट्र हित में व्यावहारिक बनने की सलाह देते हैं तो दूसरी ओर धर्म रूढ़ि मुक्त समाज का मार्ग प्रशस्त करते हैं। उनकी दृष्टि में धर्म के साथ–साथ विज्ञान पर भी बल देना होगा –

"हमको समय को देखकर ही नित्य चलना चाहिए
बदले हवा जब जिस तरह हमको बदलना चाहिए
विपरीत विश्व प्रवाह में निज नाव जा सकती नहीं,
अब पूर्व की बातें सभी प्रस्ताव पा सकती नहीं।
\+ + + + +

प्राचीन हो कि नवीन छोड़ों रूढ़ियाँ हो जो बुरी
बनकर विवेकी तुम दिखाओ हंस जैसी चातुरी।"[17]

भारत–भारती वस्तुतः जागरण गीत है। यह रचना समस्त भारतीय समाज और संस्कृति को प्रगति का मार्ग दिखाती है। गुप्त जी त्याग, तप और समर्पण को भारतीय राष्ट्र का सबसे बड़ा मंत्र मानते हैं। उनकी दृष्टि में समस्त समाज को जागृत कर कर्त्तव्य के पथ पर आरूढ़ रहना चाहिए। वह राष्ट्र का संपूर्ण विकास जनमानस के जागरण में ही निहित मानते हैं। यही कारण है कि वे समस्त जनसमुदाय को जगाते हुए कहते हैं –

वीर उठो अब तो कुयश की कालिमा को मेट दो।
निज देश को जीवन सहित तन, मन तथा धन भेंट दो।
कर दो चकित फिर विश्व को अपने पवित्र प्रकाश से
मिट जाए फिर सब तम तुम्हारे देश के आकाश से।
+ + + + + +
हम पुत्र तीस करोड़ जिसके, देश वह दुखी रहे
अनुचित नहीं है फिर कहीं कोई हमें जो पशु कहे।[18]

मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित 'भारत–भारती' समर्पण, त्याग, गौरव गाथा और राष्ट्र–जागरण का गीत है। यह रचना भारतीय संस्कृति, धर्म, संप्रदाय और इतिहास का मात्र परिचय ही नहीं देती वरन् संपूर्ण जनसमुदाय को जगाने का महत कार्य भी करती है। आज़ादी का आज अमृत महोत्सव मनाया जा रहा है जिसमें हम अपने अतीत तथा स्वतंत्रता संग्राम का स्मरण कर वर्तमान के प्रति चिंतनशील है। गुप्त जी ने इस कृति द्वारा सबका साथ, सबका विश्वास और सबके हित की कामना के साथ–साथ 'वे दिन यहाँ फिर आएँगे, फिर आएँगे का नारा दिया। इस कृति का राष्ट्र हित में चित्रण कर यही कामना है कि हम पुनः गौरवशाली इतिहास को दोहरा सके। सर्वजन का हित और संपूर्ण राष्ट्र का विकास हो सके।

संदर्भ –

1 डॉ॰ केसरी नारायण शुक्ल, आधुनिक काव्यधारा के सांस्कृतिक स्रोत, पृष्ठ–142, सरस्वती मंदिर, काशी, संस्करण 2004

2 आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, सरस्वती पत्रिका, अंक–14, इण्डियन प्रैस, प्रयाग

3 मैथिलीशरण गुप्त, भारत–भारती, भूमिका–भाग, पृष्ठ–6, साहित्य सदन, झाँसी, दसवां संस्करण, 1984

4 वही, पृष्ठ–4

5 डॉ॰ शिवकुमार मिश्र, हिंदी काव्य, पृष्ठ–43–आधुनिक, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर,

6 डॉ॰ विद्यानाथ गुप्त, हिंदी कविता में राष्ट्रीय चेतना, पृष्ठ–9, चंद्रलोक प्रकाशन, कानपुर, 1997

7 बाबू गुलाबराय, राष्ट्रीयता, पृष्ठ–2

8 मैथिलीशरण गुप्त, भारत–भारती, अतीत खंड, छंद–15, 17

9 वही, छंद–19,20

10 वही, छंद 253, 14

11 मैथिलीशरण गुप्त, भारत–भारती, भूमिका भाग, पृष्ठ–4

12 मैथिलीशरण गुप्त, भारत–भारती, वर्तमान खंड, छंद 10, 305

13 वही, छंद–244, 235

14 वही, छंद–163, 164

15 वही, छंद–165, 99

16 वही, छंद–6, 23–24

17 वही, छंद–35, 38

18 वही, छंद–78, 205

दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय चेतना की अमृतधारा

डॉ॰ कुलविन्दर कौर*

रामधारी सिंह दिनकर हिंदी साहित्य के वह देदीप्यमान नक्षत्र हैं, जिनके आलोक से हिंदी साहित्य झिलमिला रहा है। उनका काव्य ओजस्विता, तेजस्विता एवं राग की त्रिवेणी है। उनको राष्ट्रकवि की उपाधि से विभूषित किया गया क्योंकि राष्ट्रीयता उनके काव्य का प्राण तत्व है। दिनकर ने 'चक्रवाल' की भूमिका में लिखा है –

"मेरी कविता के भीतर जो अनुभूतियां उतरीं, वे विशाल भारतीय जनता की अनुभूतियां थी, वे उस काल की अनुभूतियां थी जिनके अंक में बैठकर मैं रचना कर रहा था। कवि होने की सामर्थ्य मुझ में शायद नहीं थी। वह क्षमता मुझ में भारतवर्ष का ध्यान रखने से जागृत हुई। यह शक्ति मुझमें भारतीय जनता की आकुलता को आत्मसात करने से स्फुरित हुई।"[1]

यहां पर विचारणीय यह है कि वे कौनसी सामाजिक परिस्थितियां थीं जिन्होंने दिनकर की राष्ट्रीय चेतना को आप्लावित किया। इस संदर्भ में रामसागर त्रिपाठी एवं शांति स्वरूप गुप्त लिखते हैं–

"जिस समय दिनकर काव्यक्षेत्र में आए उन दिनों देश में विदेशियों के विरुद्ध अग्नि प्रज्वलित थी। सारे देशवासी जन्म भूमि की स्वतंत्रता के लिए बलिदान होने को प्रस्तुत थे। दिनकर की पूरी सहानुभूति इन क्रांतिकारियों के साथ थी। इसलिए उनकी आरंभिक कृतियों 'रेणुका' और 'हुंकार' आदि में यही राष्ट्र भावना व्यक्त हुई है।"[2]

आधुनिक हिंदी काव्य में राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना का शंखनाद करने वाले कवि रामधारी सिंह दिनकर राग एवं आग के भी कवि थे। लगभग पाँच दशक तक दिनकर साहित्य सृजन करते रहे। राष्ट्रीय चेतना उनके काव्य का मूल स्वर है। दिनकर जी ने राष्ट्रीय चेतना से ओत–प्रोत ऐसी काव्य कृतियों का सृजन किया है जो हिंदी काव्य साहित्य की अमूल्य निधि हैं। राष्ट्रीय चेतना की जो अमृतधारा उनकी कृतियों में बहती नज़र आई उन पर दृष्टिपात करना अनिवार्य है–

रेणुका – 'रेणुका' दिनकर जी का प्रथम मुक्तक संग्रह है उसमें कवि के विविध भाव एवं विचारों के बीज मिलते हैं जो परवर्ती रचनाओं में पूर्णता को प्राप्त हुए हैं। 'हिमालय', 'तांडव', 'कस्मैदेवाय' 'मथिला' 'पाटलिपुत्र की गंगा', 'बागी' आदि कविताओं में राष्ट्रीयता का स्वर सुनाई देता है। देश की परतंत्रता देखकर कवि व्यथित होता है और युग को प्रेरित करने के लिए काव्य लिखता है। इसके लिए वह भारत के उज्ज्वल इतिहास और गौरव का सहारा लेता है। इन कविताओं में अतीत का गौरव गान, समसामयिक परिस्थितियों का चित्रण और जीवन की विसंगतियों के प्रति तीव्र आक्रोश है। एक राष्ट्रकवि

* एसोसिएट प्रो॰ एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, हिन्दू कन्या कॉलेज, कपूरथला (पंजाब)

का यह सामयिक धर्म है कि वह पाठक एवं देशवासियों को जागरण का संदेश दे सके। डॉ॰ शेखर चंद्र जैन लिखते हैं–

"'रेणुका' दिनकर की राष्ट्रीय रचनाओं का प्रथम संग्रह है। कवि के यौवन का वेग अतीत का संबल लेकर वर्तमान के स्वप्न सजाने के लिए नवजागरण की प्रथम किरण सा द्विधाग्रस्त, लुकते छिपते 'रेणुका' की रचनाओं में प्रकट होता है।"[3]

वस्तुतः 'रेणुका' दिनकर की काव्य चेतना का प्रथम सोपान है जिसका उत्तरोत्तर विकास आगे की रचनाओं में होता गया।

हुंकार – इसमें सभी रचनाएं क्रांतिकारी और राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण है। 'हुंकार' में 'रेणुका' की राष्ट्रीयता प्रौढ़ होती दिखाई देती है। 'हुंकार' की भूमिका में रामवृक्ष बेनीपुरी लिखते हैं–

"हमारे क्रांति युग का संपूर्ण प्रतिनिधित्व कविता में दिनकर कर रहे हैं। क्रांतिवादी को जिन जिन ह्रदय मंथनों से गुज़रना होता है, दिनकर की कविता उनकी सच्ची तस्वीर रखती है।"[4]

'हुंकार' की कविताएं क्रांति की कविताएं हैं, आह्वान की कविताएं हैं, राष्ट्रीय चेतना की कविताएं हैं। 'रेणुका' में जो क्रांति के बीज बोए थे, 'हुंकार' में वे अंकुरित होकर पुष्पित एवं पल्लवित हो रहे थे। राष्ट्रीय चेतना की जो आग अब तक ह्रदय में धधक रही थी वह आग 'हुंकार' में अग्नि वाणी के रूप में मुखरित हुई है। इस संदर्भ में डॉ॰ शेखर चंद्र जैन लिखते हैं –

"'हुंकार' के आमुख से ऐसा पता चलता है कि कवि अतीत के सुनहरे सपनों को छोड़कर वर्तमान के संघर्ष में भाग लेना चाहते हैं। 'रेणुका' में क्रांति की जो चिंगारियां धीरे–धीरे सुलग रही थी, वे अब प्रज्वलित अग्नि का रूप धारण कर रही थी।"[5]

'हुंकार' की सभी कविताएं राष्ट्रीय चेतना का ध्वज उठाए भीतरी आंख से सामयिक परिस्थितियों की पौरुषगाथा है। कवि का ह्रदय देशवासियों की निरीह दशा को देख अकुलाहट महसूस करता है फिर उसी अकुलाहट से सभी भारतवासियों को इकट्ठा कर देश को स्वतंत्र करवाने का आह्वान भी करता है। परिस्थितियां बलिदान की मांग कर रही हैं और कवि अपनी लेखनी से शहीद हो चुके राष्ट्रवासियों की गौरव कथा कहता है साथ ही निरंतर राष्ट्रीय भाव से देश को परतंत्रता की बेड़ियां काटने का भी ओजस्वी भाषा में पुकार करता है। कवि लोकमंगल की भावना से भरा है और वह सबका कल्याण चाहता है। वह ओजस्वी भाषा में विद्रोह की भावना भरना चाहता है ताकि भारत स्वतंत्रता प्राप्त कर सके।

"'रेणुका' में अंगारों के ऊपर कोयले के नए टुकड़े पड़े थे 'हुंकार' में वे सभी आग हो गए हैं। विषमताओं की धौंकनी इस बीच इतनी तेज़ी से चली है, दिनकर के पौरुष का ज्वाल इस बीच इतनी तेज़ी से भभका है कि शीतल और जड़ पड़ चुकी शिराएं धधकने लगी है – उसमें एक नए खून का संचार हुआ है।"[6]

सामधेनी – 'सामधेनी' संग्रह की कविताओं का मूल स्वर क्रांति है। सन 1942 में देश में भारत छोड़ो आंदोलन शुरु हो गया था। विद्रोह की भावना जगाने क्रांति की प्रेरणा देने वाले नेताओं को और देशभक्तों को बन्दी बनाया जा रहा था। इस कारण पूरे देश में क्रांति एवं विद्रोह की ज्वाला धधक रही थी। दिनकर सरकारी कर्मचारी होने के बावजूद देशवासियों को प्रेरणा देते और उनमें क्रांति के भाव भरते रहे। इस संग्रह की कविताएं राष्ट्रीय भावना को जगाती हैं और साथ ही अतीत के गौरवगान से राष्ट्रीय चेतना मशाल जलाई जा रही थी। 'कलिंग विजय', 'अंतिम मनुष्य', 'जवानियां', 'जयप्रकाश', 'आग की भीख', 'सरहद के पार से', 'साथी', 'जवानी का झंडा', 'फलेगी डाली में तलवार' आदि कविताओं में कवि क्रांति के लिए नवयुवा को प्रेरित करता है। कवि धरती मां का गान करता है। 'अतीत के द्वार पर' और 'कलिंग विजय' के माध्यम से कवि धरती पर शांति का आह्वान भी करता है।"[7]

'सामधेनी' की कविताएं युगीन परिस्थितियों की आग में जलकर स्वतंत्रता प्राप्ति के यज्ञ में समिधा के रूप में अपनी आहूति डालती हैं।

इतिहास के आंसू – यह काव्य संग्रह भारतवासियों में नई चेतना को लेकर आता है। कवि ने इसमें प्राचीन इतिहास के वीरों, स्थानों और घटनाओं का गौरव गान किया है। 'मगध महिमा' इस संग्रह की महत्वपूर्ण रचना है जिसमें इतिहास को एक पात्र के रूप में उपस्थित किया गया। उस के माध्यम से मगध के गरिमामयी इतिहास की प्रमुख घटनाओं का वर्णन एवं चित्रण किया गया है। 'बसंत के नाम पर' कविता में कवि प्रकृति के माध्यम से भारतीय स्वतंत्रता सेनानियों को स्मरण करता आहत भी होता है साथ ही कवि अतीत के वैभव का गुणगान भी करता है और राष्ट्रवासियों को राष्ट्र के प्रति समर्पित होने की प्रेरणा भी देता है।

धूप और धुआँ – इस संग्रह में कवि ने सामयिक परिस्थितियों के विरुद्ध अपनी प्रतिक्रियाएं व्यक्त की हैं। इस संग्रह की कविताओं में स्वतंत्रता प्राप्ति का स्वागत किया गया है साथ ही देश के उज्ज्वल भविष्य के प्रति कवि आशावादी है। इसी संग्रह की भूमिका में कवि दिनकर लिखते हैं –

"'धूप और धुआँ' में मेरी सन् 1947 से इधर वाली कुछ स्फुट रचनाएं संग्रहित है जो प्रायः समकालीन अवस्थाओं पर मेरी भावात्मक प्रतिक्रिया के रूप में प्रकट हुई हैं। स्वराज्य से फूटने वाली आशा की धूप और उसके विरुद्ध जन्मे हुए असंतोष का धुआं यह दोनों ही इन रचनाओं में यथास्थान प्रतिबिंबित मिलेंगे।"[8]

'धूप और धुआँ' में पुनः कवि की राष्ट्रीय भावना को आश्रय मिला है। कवि चिंतित है, व्याकुल है, असंतोष है उसके मन में, सारी ही बातें राष्ट्रहित से जुड़ीं हैं। दिनकर की काव्य चेतना राष्ट्रीय चेतना और राष्ट्रहित से आरंभ होकर राष्ट्रहित पर ही समाप्त होती हैं।

दिल्ली – इस लघु काव्य संग्रह में चार कविताओं का प्रकाशन है, जिसमें स्वतंत्रतापूर्व नेताओं द्वारा किए गए आश्वासनों का स्मरण इन नेताओं को दिलाया गया है साथ ही दिल्लीवासियों के भोग ऐश्वर्य पर व्यंग्य किया गया है। 'दिल्ली और मास्को', 'हक की पुकार' और 'भारत का यह रेशमी नगर' में शासकों को उनकी प्रवृत्तियों और गलतियों के प्रति जागरूक किया गया। भोग विलास में डूबे नेताओं को फटकार कर जनता के कष्ट और पीड़ा को दूर करने की बात इन कविताओं में की गई है।

परशुराम की प्रतीक्षा – इस काव्य संग्रह में चीनी आक्रमण के समय लिखी गई कविताओं का संकलन है। चीनी आक्रमण के समय राष्ट्र जिस क्रोध से फुंकार रहा था उसका वर्णन कवि ने इसमें किया है। कई आलोचक दिनकर पर यह आरोप लगाते हैं कि प्रतिभा मंद पड़ चुकी है परंतु 'परशुराम की प्रतीक्षा' द्वारा कवि ने उन्हें क्रियात्मक उत्तर दिया है। उनका कर्तव्य भीरू नहीं है। हर कीमत पर मानवता की रक्षा करना उनका ध्येय रहा है। उनका स्वर पीड़ित मानवता के स्वर को वाणी प्रदान करने वाला वह सशक्त स्वर है जो जनमानस में नई शक्ति व नवचेतना का संचार कर देता है। यह काव्य संग्रह तत्कालीन ही नहीं कालजयी परिस्थितियों एवं भावों का सृजन करता है साथ ही भावी पीढ़ी को भी प्रेरणा देता रहेगा और आंदोलित भी करता रहेगा। इसमें केवल चीनी आक्रमण के विरुद्ध ही प्रतिक्रिया नहीं है अपितु स्वतंत्रता मिलने के बाद भारत का चित्र कैसा है यह भी उसमें है, जैसे 'परशुराम की प्रतीक्षा' में कवि दिनकर कहते हैं–

"जा कहो, पुण्य यदि बढ़ा नहीं शासन में
या आग सुलगती रही प्रजा के मन में,
तामस बढ़ता यदि गया ढकेल सभी को
निर्बंध पंथ यदि मिला नहीं प्रतिभा को,
रिपु नहीं अन्याय हमें मारेगा
अपने घर में ही फिर स्वदेश हारेगा।"[10]

चीन के भारत आक्रमण के पीछे के कारणों को समझाते हुए इस युद्ध में हुई भारत की हार को कवि भावुक वाणी में प्रकट करता है। दिखावा और भ्रष्टाचार देश को अपाहिज बना रहे हैं। देश को स्वतंत्र हुए बहुत समय नहीं हुआ किंतु सत्ताधारियों ने देश की जड़ें कमज़ोर करनी आरंभ कर दी हैं। ऐसे समय में कवि कामना करता है कि इस विपदा के समय परशुराम का पुनः आगमन हो तथा अन्यायी, अत्याचारी, स्वार्थी आक्रमणकारियों को नष्ट किया जा सके। देश की सुरक्षा के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ नेताओं को धिक्कारा है, पूंजीपतियों और दलितों के श्रम पर ऐंठने वाले सेठों और स्वार्थी नेताओं को धिक्कारा है,

उन्हें ललकारा है। कवि ने संभावना व्यक्त की है कि ऐसे स्वार्थी नेताओं के कारण देश एक दिन निर्बल हो जाएगा इसलिए कवि ने नेताओं का ध्यान विकार की ओर खींचा है। सैनिक शहीद हो रहे हैं, कवि प्रश्न करते हैं कि वह कौन है जिसके पापों के प्रायश्चित के रूप में सैनिकों को प्राणों का बलिदान देना पड़ रहा है? दिनकर कहते हैं कि कौन इनकी हत्या कर रहा है? देश पर आने वाली इस विपत्ति का कारण क्या है? और उत्तर में कवि ने वास्तविक रूप में तत्कालीन स्थितियों का स्वरूप स्पष्ट कर दिया है। कवि का मानना है कि स्वार्थी, जातिवादी, राजनैतिक चाटुकार ही सैनिकों के हत्यारे हैं। अहिंसा पुजारियों की शांति भावना के प्रतिकार रूप में सैनिकों की बलि दी जा रही है।"[11]

कवि दिनकर वीरता और तेज को श्रेष्ठ और पुण्य मानते हैं, बाकी सब पाप स्वीकारते हैं –

"तलवारें सोती जहां बंद म्यानों में
किस्मतें वहां सड़ती हैं तहखानों में"[12]

अहिंसावादी का युद्ध गीत 'आपद्धर्म', 'जौहर', 'जनता जगी हुई है' में भारत की शांति नीति और अहिंसा पर निर्मम प्रहार किया गया है। 'एनार्की', 'समर शेष है', 'एक बार फिर स्वर दो' आदि कविताओं में प्रत्येक वर्ग में फैली विषमता, भ्रष्टाचार, अव्यवस्था पर आघात किया गया है। साथ ही स्वार्थी नेताओं को चेतावनी दी गई है कि यदि भ्रष्टाचार, विषमता को दूर करने का प्रयत्न नहीं किया गया तो क्रांति होगी साथ ही कवि ने आंतरिक कमियों को दूर करके बाहरी सुरक्षा के लिए सैनिक शक्ति को बढ़ाने की सलाह दी है। अतः कु॰ पद्मावती का कथन यहां द्रष्टव्य है –

"देश की स्वातंत्र्योत्तर विवशता और संकटकालीन दीनता के परिवेश में कवि ने 'परशुराम की प्रतीक्षा' की रचना की है। परशुराम में दिनकर की क्रांति भावना का आदर्श और चरम रूप मिलता है। कवि को अपना विस्तृत लोक पुनः प्राप्त हुआ है। यहां राष्ट्रीयता की आवश्यकता अधिकार प्राप्ति के लिए वहां युद्ध की आवश्यकता अस्तित्व और अधिकार की रक्षा के लिए है। स्वतंत्रता प्राप्ति जहां महत्वपूर्ण है वहां उसकी रक्षा भी। इसके लिए भी कम त्याग की आवश्यकता नहीं। कुछ–कुछ इन्हीं भावनाओं तथा चिंताओं से युक्त क्रांति का नवीन मोड़ 'परशुराम की प्रतीक्षा' में प्रकट हुआ है।"[13]

मृत्तितिलक – इस काव्य संग्रह में कुल मिलाकर 26 कविताएं हैं जिनमें से 'भारतव्रत', 'वीर वंदना', 'भारत का आगमन', 'इस्तीफा', 'ज़मीन दो ज़मीन दो', 'मृत्ति तिलक' राष्ट्रप्रेम से संबंधित रचनाएं हैं साथ ही इन कविताओं में लोकमंगल की भावना भी निहित है। देश की मृत्ति का तिलक वही व्यक्ति लगा सकता है जो लोकमंगल की भावना से परिपूर्ण है वही इस तिलक का सच्चा अधिकारी है।

कुरुक्षेत्र – कुरुक्षेत्र में कवि ने महाभारत का आधार लेकर युद्ध की समस्याओं को उठाया है। विश्व की चिरंतन समस्या के विषय में दो भिन्न दृष्टिकोणों को युधिष्ठिर और भीष्म के माध्यम से कवि ने प्रस्तुत किया है। एक दृष्टिकोण है – संसार में अन्याय का प्रतिकार अहिंसा, क्षमा, प्रेम और तपश्चर्या से करना तो दूसरा दृष्टिकोण है संसार में अन्याय का प्रतिकार युद्ध से करना। कवि ने यह अनुभव किया है कि युद्ध की समस्या ही मनुष्य की सारी समस्याओं की जड़ है। कवि दिनकर लिखते हैं –

"कुरुक्षेत्र की रचना भगवान व्यास के अनुकरण पर नहीं हुई है और न ही महाभारत को दोहराना ही मेरा उद्देश्य था।..... बात यों हुई कि पहले मुझे अशोक के निर्वेद ने आकर्षित किया और कलिंग विजय नामक कविता लिखते लिखते मुझे ऐसा लगा मानो युद्ध की समस्या मनुष्य की सारी समस्याओं की जड़ हो। इसी क्रम में द्वापर की ओर देखते हुए मैंने युधिष्ठिर को देखा जो 'विजय', इस छोटे से शब्द को कुरुक्षेत्र में बिछी हुई लाशों से तोल रहे थे। आत्मा का संग्राम आत्मा से और देह का संग्राम देह से जीता जाता है। यह कथा युद्धान्त की है। युद्ध के आरंभ में स्वयं भगवान ने अर्जुन से जो कुछ कहा था उसका सारांश भी अन्याय के विरोध में तपस्या के प्रदर्शन का निवारण ही था।"[14]

'कुरुक्षेत्र' में कवि सत्तालोलुप, स्वार्थी नेता एवं पूंजीपतियों की धनलिप्सा को युद्ध का कारण मानते हैं। युद्ध के पश्चात मनुष्य के हाथ में केवल व्यंग्य, ग्लानि और पश्चाताप ही रह जाता है। भीष्म पितामह के माध्यम से इस सत्य को स्थापित किया गया है कि युद्ध के समय उसके भयानक परिणामों पर विचार नहीं आता किंतु बाद में ग्लानि होती है। युद्ध निंदनीय है कवि ने इस को सत्यापित करते हुए विश्व शांति और मानव समाज के विकास के दृढ़ विश्वास को आगे रखा है।

सुनीति के शब्दों में–

"कवि दिनकर जी ने कुरुक्षेत्र में आशावाद का ज्वलंत संदेश दिया है, आशा की सुकुमार किरण की सुनहरी डोर पकड़ कर मानव अश्रु स्वेद रक्त से लथपथ ज़मीन पर पांव आगे बढ़ाता है। आज नहीं तो कल ज़रूर दुख दूर होंगे। इसी एक आशा पर दग्ध मानव जी रहा है। कुरुक्षेत्र के कवि ने इस आशा का दर्शन मानव के पश्चाताप में युधिष्ठिर के आंसुओं में किया।"[15]

कुरुक्षेत्र की भूमि युद्धभूमि है किंतु उसमें फसल अहिंसा, त्याग, स्नेह, प्रेम एवं विश्व शांति की उपज रही है। दिनकर की राष्ट्रीय भावना एक बार फिर से कुरुक्षेत्र के माध्यम से 'वसुदेव कुटुम्बकम' के अमर संदेश को स्थापित करती है और मानवता की अमृतधारा फिर से बहने लगती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दिनकर का संपूर्ण काव्य राष्ट्रीय चेतना की अमृतधारा है जो उस युग में बहनी शुरु हुई जब माखनलाल चतुर्वेदी अपनी भारतीयता एवं राष्ट्रीयता

से भरी छवि से हिंदी काव्य जगत में अपना विशिष्ट स्थान बना चुके थे। लगभग 19वीं सदी के आरंभ होते ही राष्ट्रीय एवं देश प्रेम का स्वर पूरे भारत में नई चेतना भरने लगा। भारतेंदु हरिश्चंद्र इस चेतना के पुरोधा स्वर हैं। उत्तरोत्तर विकास करती यह राष्ट्रीय चेतना दिनकर तक आते–आते प्रचंड, प्रखर एवं वेगवती हो चली थी क्योंकि दिनकर साधारण मानवों के प्रति सहानुभूति रखने वाले भारतवासी थे। अंग्रेजी शासकों के दमन चक्र ने भारतीय जन–जीवन को त्रस्त कर दिया था। बाल–वृद्ध नर–नारी सभी का हृदय क्रंदन कर रहा था। धधकता जनमानस कोई भी बलिदान देने के लिए तैयार था । तेजपुंज दिनकर का हृदय भी पराधीनता के कलंक को मिटाने के लिए कटिबद्ध हो उठा था।

जैसे उनकी 'परशुराम की प्रतीक्षा' की ये पंक्तियां –
"गरजो, अंबर को भरो रणोच्चारों से
क्रोधान्ध रोर हांकों से, हुंकारों से
यह आग मात्र सीमा की नहीं लपट है
मूढ़ो ! स्वतंत्रता पर ही संकट है।"[16]

दिनकर का काव्य उस युग और समय की मांग के अनुकूल जनजागरण का महत्ती कार्य कर रहा था।

डॉ॰ रामदरश मिश्र के शब्दों में –

"देश और समाज की अभिशप्त जिंदगी का दर्द कवि का अपना दर्द बन गया है, दलित मिट्टी की ज़िंदगी उसकी ज़िंदगी बन गई है। इस जीवन और मिट्टी की पीड़ा कवि के भीतर रोष पैदा करती है, उसकी सुप्त उर्जा को जगाती है और अभिशप्त करने वाली शोषक सत्ता, उच्चवर्गीय व्यवस्था तथा अन्याय नीतियों को ध्वस्त करने की हलचल पैदा करती है। कवि को लगातार एक क्रांति की आवाज़ बुलाती है।"17

दिनकर की काव्य चेतना के जितने भी राष्ट्रव्यापी तत्त्व हो सकते हैं उन सब को डॉ॰ ललिता अरोड़ा अपने शब्दों में इस प्रकार वाणी देती हैं –

"दिनकर अपने युग के ऐसे महान कवि हैं जिन्होंने युग चेतना को हुंकार दी, अंगारों भरी क्रांति का आह्वान किया, क्षत हृदयों पर रसवंती का लेप किया, इतिहास के आंसुओं से मानवता का स्वर सुनाया, रश्मिरथी बनकर अनल के महत्व को स्थापित किया, कुरुक्षेत्र की तपोभूमि से मनुज के लिए श्रेय तत्व की खोज की। इस श्रेय तत्व की खोज के साथ जीवन की मधुरिम भाव की गहनता एवं सूक्ष्मता की अनुभूति अनुभवमय ज्ञान दिया। युद्ध और पाप, धर्म और अधर्म, प्रवृत्ति और निवृत्ति, व्यक्ति और समाज, लोकहित और राष्ट्रहित और अंतरराष्ट्रीयता कर्मवाद और भाग्यवाद कवि ने सभी कोणों और राष्ट्रहित दिशाओं से समाज देश राष्ट्र और विश्व को ललकारा, उभारा और संदेश दिया।"[18]

दिनकर का काव्य भारतीय संस्कृति का काव्य है, कवि सदैव आस्थावान रहे, उन्होंने कहीं भी मानवीय मूल्यों को आघात नहीं पहुंचाया। समस्या कोई भी हो उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से भारतीय दृष्टिकोण एवं राष्ट्रीय चेतना से उन्हें पिरो कर उनके समाधान प्रस्तुत किए हैं। कवि ने अपनी अनेक कविताओं के माध्यम से भारतवासियों में विश्वास की भावना जगा कर अत्यंत आशावादी स्वरों में भारत के नवनिर्माण के संकल्प को सिद्ध करने के लिए कटिबद्ध होने का संदेश दिया।

डॉ॰ दीक्षित लिखते हैं –

"दिनकर आधुनिक युग की राष्ट्रीय काव्य धारा के प्रमुख कवि हैं । वे चार दशक तक राष्ट्रीय काव्य लिखते रहे। उनकी राष्ट्रीयता केवल उद्‌बोधन और प्रेरणा तक ही सीमित नहीं। आदर्शों के प्रति आस्था, पतितों के प्रति सहानुभूति, प्रगति की कामना, सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति आस्था उनकी राष्ट्रीय भावना के अभिन्न अंग हैं।"[19]

दिनकर की यह पंक्तियां उद्दाम राष्ट्रीयता का साकार रूप हैं –
"गरज कर बता सबको,
मारे किसी के मरेगा नहीं रू हिन्द देश
लहू की नदी तैरकर आ रहा है
कहीं से कहीं रू हिन्द देश"[20]

दिनकर की राष्ट्रीय चेतना तीन रूपों में मुख्यतः व्यक्त हुई है। पहले रूप के अंतर्गत दिनकर जी की कविताएं आती हैं जिनमें देश के प्रति अगाध प्रेम है और उससे उद्‌भूत सामाजिक चेतना है जो जनजागरण करती है। दूसरे रूप के अंतर्गत उनकी वे कविताएं आती हैं जो अतीत का गौरव गान करती हैं, देशवासियों में स्वाभिमान की प्रवृत्ति एवं प्रेरणा जगाती हैं । तीसरे रूप के अंतर्गत दिनकर की कविताएं आती हैं जो सामूहिक चेतना से ओतप्रोत हैं और देश की स्थितियों के प्रति भावुक एवं संवेदनशील हैं ।

जयसिंह नीरद उनकी राष्ट्रीय चेतना और राजनीतिक एकता के संबंध में कहते हैं –

"राष्ट्रीयता दिनकर के काव्य चेतना के विकास की एक अपरिहार्य कड़ी है । उनका राष्ट्रीय कृतित्व इसलिए प्राणवान है कि भारतवर्ष की सामयिक संस्कृति और उसकी आशा–आकांक्षाओं की काव्यात्मक अभिव्यक्ति प्रदान कर सकने में सक्षम है। वे 'वर्तमान की वैताली' ही नहीं बने रहे बल्कि 'मृतक विश्व के चारण' की भूमिका भी उन्हें निभानी पड़ी है। यह सांस्कृतिक दृष्टि ही दिनकर की राष्ट्रीयता के फलक को व्यापक बनाती है। यह राष्ट्रीयता अतीत की ओर भले ही बाहें फैलाए खड़ी है किंतु उसके पैर वर्तमान की पथरीली भूमि पर दृढ़ हैं।"[21]

दिनकर जी ने अपने काव्य के माध्यम से देश को स्वतंत्र करवाने के लिए दो सुझाव देशवासियों को दिए थे। एक यह है कि सभी भारतवासी प्राचीन और नवीन भारत के सभी महापुरुषों का स्वागत करें और दूसरा उनका विशेष आग्रह था कि देश के पूजनीय शहीदों तथा जीवित स्वतंत्रता संग्रामियों के प्रति हर व्यक्ति हर अवसर पर विशिष्ट सम्मान व्यक्त करे। उनका संपूर्ण काव्य भी इसी दिशा में प्रयासरत दिखाई पड़ता है। पात्र एवं घटना कोई भी हो दिनकर का काव्य उनमें अपनी राष्ट्रीय भावना को भरकर लोकमंगल के साथ अवश्य जोड़ देता है। राष्ट्रकवि दिनकर अपने देश की धरती और जनता से प्रेम करता है, उसके हृदय में देश के प्रति अपना सबकुछ अर्पित करने वाले जन–नायकों के प्रति अप्रतिम श्रद्धा होती है। दिनकर ने अपनी अनेक कविताओं में महात्मा गांधी डॉ॰ राजेंद्र प्रसाद, पंडित जवाहरलाल नेहरू और विनोबा भावे के प्रति अगाध श्रद्धा अर्पित की है। श्री अरविंद और श्री मां..... के संपर्क में बाद में आए । उन्होंने 'चेतना की शिखा' नाम से एक स्वतंत्र पुस्तक श्री अरविंद पर लिखी है। दिनकर के राष्ट्रप्रेम ने ही उन्हें पूज्य बना दिया। राष्ट्रकवि वीर पूजक होते हैं। दिनकर के लिए वीर पुरुष प्रणम्य है।"[22]

दिनकर ने अपने काव्य के माध्यम से राष्ट्रीय एकता की विराट चेष्टा की है। जैसे उनकी कविता की ये पंक्तियां देखिए –

"खंडित है यह मही, शैल से, सरिता से, सागर से..॥

जब भी दो हाथ निकल मिलते आ द्वीपान्तर से
तब खाई को पाट शून्य में महामोद मचता है
दो द्वीपों के बीच सेतु यह भारत रचता है
मंगलमय इस महासेतु बंधन को नमन करूं मैं
किसको नमन करूं मैं भारत (किसको नमन करूं मैं)

एक अन्य उदाहरण –
"जहां कहीं एकता अखंडित
जहां प्रेम का स्वर है
देश देश में खड़ा भारत जीवित भास्वर है।
(हिमालय का संदेश)

निष्कर्षतः यह कह सकते हैं कि एक राष्ट्रकवि के रूप में दिनकर जी की स्थापना हिंदी साहित्य का गौरव है। दिनकर की इसी चेतना के प्रकाश में अनेकानेक कवियों ने दिशा पाई जो ओजस्विता, जो तेजस्विता दिनकर का श्रृंगार है वह अन्यत्र कहीं नहीं। दिनकर की कविता 'हिमालय का संदेश' की ये पंक्तियां देखिए –

"भारत एक स्वप्न भू को ऊपर ले जाने वाला
भारत एक विचार स्वर्ग को भू पर लाने वाला।"

भारत की महिमा, गौरवगान एवं विश्व मंगल की कामना ही दिनकर के काव्य का प्राणतत्व है। दिनकर जी का संपूर्ण काव्य राष्ट्रीय चेतना की अमृतधारा है जो उनकी चेतना के प्रथम सोपान से बहती हुई उनकी आत्मा के अंतिम छोर तक प्रवाहमान है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. दिनकर, रामधारी सिंह चक्रवाल, उदयांचल प्रकाशन, पटना, संस्करण –1956, पृष्ठ संख्या –34
2. त्रिपाठी; रामसागर, गुप्त, डॉ॰ शांतिस्वरूप, बृहद साहित्यिक निबन्ध, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण–1972, पृष्ठ 1009.
3. जैन; डॉ॰ चन्द्रशेखर, राष्ट्रीय कवि दिनकर और उनकी काव्य कला; जयपुर पुस्तक सदन, जयपुर, संस्करण–1973, पृष्ठ–61
4. दिनकर, रामधारी सिंह, हुंकार, भूमिका (रामवृक्ष बेनीपुरी), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–2009, पृष्ठ–02
5. जैन; डॉ॰ चन्द्रशेखर, राष्ट्रीय कवि दिनकर और उनकी काव्य कला; जयपुर पुस्तक सदन, जयपुर, संस्करण–1973, पृष्ठ–65
6. शर्मा; प्रो॰ कामेश्वर शर्मा, दिग्भ्रमित राष्ट्रकवि, पृष्ठ– 37
7. शिखरे, डॉ॰ रजनी, निराला और दिनकर की काव्यचेतना; विद्या प्रकाशन, कानपुर, संस्करण – 2008, पृष्ठ –61
8. दिनकर, रामधारी सिंह – भूमिका – धूप और धुआँ, श्री अजंता प्रैस लिमिटेड, पटना, संस्करण – 1951
9. सुनीति; दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय भावना, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, संस्करण –1977, पृष्ठ –158
10. दिनकर, रामधारी सिंह, परशुराम की प्रतीक्षा, उदयांचल, पटना, संस्करण –1963, पृष्ठ – 01
11. शिखरे, डॉ॰ रजनी, निराला और दिनकर की काव्यचेतना; विद्या प्रकाशन, कानपुर, संस्करण – 2008, पृष्ठ –66
12. दिनकर, रामधारी सिंह, परशुराम की प्रतीक्षा, उदयांचल, पटना, संस्करण –1963, पृष्ठ –12
13. कु॰ पद्मावती; कवि दिनकर : व्यक्तित्व और कृतित्व, पृष्ठ –127
14. दिनकर, रामधारी सिंह; कुरुक्षेत्र, राजपाल एंड सन्ज़, दिल्ली, पृष्ठ –01 (निवेदन)

15. सुनीति; दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय भावना, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, संस्करण – 1977, पृष्ठ –206
16. चतुर्वेदी; डॉ॰ रामविलास – सं. जयसिंह नीरद, दिनकर व्यक्तित्व और सृजन, पृष्ठ – 207
17. मिश्र, रामदरश – सं॰ जयसिंह नीरद, दिनकर : व्यक्तित्व और सृजन , पृष्ठ – 76
18. अरोड़ा, डॉ॰ ललिता : दिनकर एक अध्ययन, संस्करण – 1991, पृष्ठ –168
19. दीक्षित; छोटे लाल – दिनकर का रचना संसार, प्रतिभा प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण – 1976, पृष्ठ –64
20. दिनकर, रामधारी सिंह; जवानी का झण्डा (परशुराम की प्रतीक्षा), उदयांचल, पटना, पृष्ठ – 80
21. नीरद, डॉ॰ जयसिंह, दिनकर के काव्य में परम्परा और आधुनिकता, पृष्ठ –156
22. दीक्षित; छोटे लाल – दिनकर का रचना संसार, प्रतिभा प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण – 1976, पृष्ठ –61

राष्ट्रीय–चिंतन के परिपेक्ष्य में पंडित सोहनलाल द्विवेदी का काव्य

मधु कुमारी*

राष्ट्रीय–चिंतन के परिपेक्ष्य में सोहनलाल द्विवेदी का काव्य हिंदी साहित्य में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। राष्टीय–चिंतन का उद्देश्य देश में व्याप्त समग्र जनता में आत्मगौरव की भावना को जगाकर उन्हें उन्नति के पथ पर अग्रसर करना है। चिंतन के माध्यम से जनता में एक नई ऊर्जा नई उमंग भरना ताकि वह देश के प्रति जागरूक हो सकें। किसी भी राष्ट्र के लिए वहाँ के लोगों में राष्ट्रीयता की भावना होना उनके लिए हितकारी होता है। राष्ट्रीयता का सम्बन्ध 'चेतना' से है, ऐसी चेतना जो अपने राष्ट्र के लिए मंगलमय हो। 'राष्ट्रीयता' और 'राष्ट्र' यह दोनों शब्द अपने आप में गूढ़ अर्थ लिए हुए हैं। यह दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। "**राष्ट्रीयता शब्द अंग्रेजी भाषा के 'नेशनेलिटी' शब्द के तौल पर हिंदी में चल पड़ा है। यह 'नेशनेलिटी' शब्द लैटिन भाषा के 'नेशियों' शब्द से निकला है जिसका अर्थ जन्म या जाति से लिया जाता है।**"[1] 'राष्ट्रीयता' शब्द को अलग–अलग विद्वानों ने भिन्न–भिन्न दृष्टिकोणों से परिभाषित किया है, जिनमें से एक विद्वान की परिभाषा इस प्रकार है– गिलकाइस्ट के अनुसार "**राष्ट्रीयता एक आध्यात्मिक भावना अथवा सिद्धान्त है जिसकी उत्पत्ति उन लोगों में होती है, जो साधारणतया एक जाति के होते हैं, जो एक भूखंड पर रहते हैं, जिनकी एक भाषा, एक धर्म, एक–सा इतिहास, एक–सी परम्पराएँ एवं सामान्य हित होते हैं तथा जिनके एक–से राजनीतिक समुदाय तथा राजनीतिक एकता के एक–से आदर्श होते हैं।**"[2] हिंदी साहित्य के सुप्रसिद्ध निबन्धकार और समालोचक बाबू गुलाबराय के शब्दों में 'राष्ट्र' के स्वरूप को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है–"**राष्ट्र के लिए यह आवश्यक नहीं है कि उसके रहने वाले एक जाति व सम्प्रदाय के ही हों। राष्ट्र एक राजनीतिक इकाई है। उसके निवासियों के राजनीतिक हितों की एकध्येयता और शासन की एकसूचता उनमें संगठन स्थिर रखने के लिए आवश्यक है। सभी सम्प्रदाय और सभी प्रान्त राष्ट्र के अंग हैं। राष्ट्र का हित सबका सम्मिलित हित है और राष्ट्र का अहित सबके लिए घातक है। ऐसी चेतना राष्ट्रीयता का मूल है।**"[3] इस प्रकार 'राष्ट्रीयता' तथा 'राष्ट्र' दोनों में स्पष्ट अंतर है। राष्ट्रीयता की भावना उन लोगों में होती है जिनकी भाषा, साहित्य, इतिहास, आर्थिक हित, नस्ल, देश, धर्म, तथा राजनीतिक आकांक्षाएँ और आदर्श एक हों। जब ऐसी राष्ट्रीयता राजनीतिक एकता तथा स्वतंत्रता प्राप्त कर लेती है और अपना पृथक राज्य स्थापित कर लेती है तो वह 'राष्ट्र' कहलाने लगती है।

भारत भी एक 'राष्ट्र' है, जिसमें यह सभी तत्व मौजूद हैं जो एक 'राष्ट्र' के लिए ज़रूरी होते हैं। भारत में राष्ट्रीय–चिंतन की परंपरा बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है। इसका विस्तार और संकोच समय एंव परिस्थितियों के अनुसार बदलता भी रहा है। वैदिक काल में राष्ट्रीय–चिंतन बहुत अधिक विस्तृत था जिसे **'वसुधैव कुटुम्बकम'** कहते हैं।

* शोधार्थी, हिंदी–विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

जिसका अर्थ है **'पूरी दुनिया एक परिवार'** है। इसी प्रकार समय और परिस्थितियों के अनुसार आदिकाल, भक्तिकाल एंव रीतिकाल तक आते–आते साहित्यकारों की रचनाओं में राष्ट्रीय–चिंतन धीरे–धीरे संकुचित होने लगा पर इन युगों में भी **'तुलसीदास' और 'भूषण'** जैसे महान कवियों ने राष्ट्रीय–चिंतन को अपने काव्यों में जिन्दा रखा और समाज को अपने 'राष्ट्र' के प्रति अपने कर्तव्य का बोध करवाया। आधुनिक काल में अंग्रेजों के आगमन के समय तक भारत अनेकों राज्यों में बटा हुआ था। अंग्रेजों ने अपनी कूटनीति और षड्यंत्रों के द्वारा भारत को अपने अधीन कर लिया। जिस कारण समग्र भारत वर्ष के लोगों और शासनकर्ता ने एक यातना का अनुभव किया। इसी यातना और पराधीनता ने भारतवासियों के अंदर स्वाधीनता की चाह पैदा की और इसी चाह ने देश में आंदोलनों और साहित्य के माध्यम से राष्ट्रीय–चिंतन का प्रचार–प्रसार आरंम्भ किया। इस चिंतन में भारतीय पराधीनता की यातना का अहसास और उससे मुक्ति पाने का प्रयास एवं पश्चिम सभ्यता और अलगाव की भावना से शोषित होती भारतीय जनता का वास्तविक स्वरूप को उभारा गया। **राजाराममोहन राय, केशवचंद सेन, विवेकानंद जैसे समाज सुधारकों द्वारा स्थापित ब्राह्मसमाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन के माध्यम से समाज में फैली सतीप्रथा, बालविवाह, जातिप्रथा, अन्धविश्वास जैसी कुरीतियों पर प्रहार कर, समाज को अपने देश के हितों के प्रति जागरूक किया**।

भारतेंदु युग में राष्ट्रीय–चिंतन का स्वर तीव्र हुआ, भारतेंदु और उनके मंडल के कवियों ने कविताओं के माध्यम से राष्ट्रीयता की चेतना को जन–जन तक पहुँचाया। **भारतेंदु की 'विजयिनी विजय वैजयंती, प्रेमघन की 'आनंद अरुणोदय', प्रतापनारायण मिश्र की 'महापर्व' तथा राधाकृष्ण दास की 'बारहमासा' शीर्षक जैसी अनेकों कविताएँ देशभक्ति की प्रेरणा से भरी हुई है**। इस प्रकार भारतेंदु काल में भारतेंदु और उनके मंडल में शामिल साहित्यकारों तथा अन्य रचनाकारों ने विदेशी शासन के अत्याचारों जनयातनाओं और शोषणों को अपने साहित्य की अलग–अलग विधाओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया।

द्विवेदी युग में राष्ट्रीय–चिंतन के संबंद्ध में कुछ परिवर्तन दिखाई पड़ता है। इस युग की कविताओं में राजनीतिक सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था पर पुनर्विचार तथा पुनर्गठन की झांखी देखने को मिलती है। द्विवेदी युग के कवि वर्तमान समस्याओं के प्रश्नों के सन्दर्भ में अतीत के गौरव को देखते हैं तथा भविष्य की मंगल कामना करते हैं। महाप्रसाद द्विवेदी ने इस युग में अपनी विशेष भूमिका अदा की। उन्होंने राष्ट्रभक्ति समाज सुधार एवं सद्गुणों से भरी प्रेरक कविताओं को प्रोत्साहित किया। इस प्रकार द्विवेदी युग में बहुत से साहित्यिकारों ने अपनी कविताओं के माध्यम से राष्ट्रीय–चिंतन के स्वर को तेज किया। **दिनकर द्वारा 'कुरुक्षेत्र' सियारामशरण गुप्त की 'उन्मुक्त', श्यामनारायण पांडेय की 'हल्दीघाटी', श्रीधर पाठक की 'भारतोत्थान', अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की 'प्रियप्रवास', राय देवीप्रसाद पूर्ण की स्वदेशी कुंडल में बावन देशभक्ति कुंडलिया, मैथलीशरण गुप्त की 1912 में प्रकाशित 'भारत भारती' जैसी यह सभी ओजस्वी कविताओं के माध्यम से राष्ट्रीय–चिंतन किया गया और जन–जन तक राष्ट्रीयता चेतना को पहुँचाने**

का प्रयास किया गया। इसके अलावा माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, एवं सुभद्राकुमारी चौहान के द्वारा लिखी गई 'हिमकिरीटिनी', 'हिमतरंगिनी', 'हम विषपायी जनम के', 'त्रिधारा' एंव 'मुकुल' जैसी कविताओं ने जनता में राष्ट्रीयता की चेतना जगाई।

द्विवेदी युगीन कवियों में से सोहनलाल द्विवेदी एक सशक्त रचनाकार हैं, जिनका जन्म सन् 1906 ई॰ में बिन्दकी जिला फ़तेहपुर में हुआ। द्विवेदी जी ने अपने जीवन काल में जितना भी साहित्य रचा वह सभी राष्ट्र को समर्पित है। इनकी सभी रचनाएँ ओजपूर्ण एंव राष्ट्रीयता की परिचायक हैं। कविताओं की भाषा अत्यंत सरल एवं सहज है। भारत सरकार ने सोहनलाल द्विवेदी को 'राष्ट्रकवि' की उपाधि प्रदान की और सन् 1969 ई॰ को इन्हें पद्मश्री से सम्मानित किया गया। **द्विवेदी जी का राष्ट्रीय सम्बन्धी चिंतन अतीत वर्तमान एवं भविष्य इन तीनों ही काल के आयामों को अपने भीतर समेटती है।** अभिव्यक्ति की सादगी इनके भावों को अत्यंत सहजता से पाठकों तक प्रेषित करती है। सोहनलाल द्विवेदी ने अपनी कविताओं के माध्यम से राष्ट्रीय सम्बन्धी चिंतन किया और ओजस्वी कविताओं से युवाओं के भीतर हर्ष, उल्लास, जोश का संचार किया। **सोहनलाल द्विवेदी ने अपने जीवन काल में अनेक काव्य–संग्रह की रचना की जैसे– चित्रावती, भैरवी, वासवदत्ता, कुणाल, प्रभाती, युगधारा, वासन्ती, चित्रा पूजागीत, विषपान, चेतना, मुक्तिगंधा, संजीवनी, सेवाग्राम, गांध्यापन आदि।** इन सभी काव्य–संग्रह में सोहनलाल द्विवेदी ने राष्ट्रीय–चिंतन को केंद्र में रखा है। यह चिंतन अतीत, वर्तमान एंव भविष्य तीनों आयामों को अपने भीतर समेटती है। राष्ट्रीयता सम्बन्धी कविताओं के माध्यम से द्विवेदी जी ने युवाओं के भीतर राष्ट्रीय चेतना का बोध कराया है। जिसके कारणवश युवाओं में चेतना विकसित हुई है और वह सभी उन्नति के पथ पर अग्रसर हुए। आजादी के संघर्ष में महात्मा गाँधी ने अपना भरपूर योगदान दिया और शांतिपूर्ण ढंग से कई आंदोलनों में भाग लिया। द्विवेदी जी महात्मा गाँधी और उनकी विचारधारा से बहुत अधिक प्रभावित थे इसी प्रभाववश उन्होंने गाँधी जी पर कई भाव पूर्ण कविताएँ लिखी जो बहुत लोकप्रिय हुई। उनका 'भैरवी' काव्य–संग्रह महात्मा गाँधी को समर्पित है। इस काव्य–संग्रह में गाँधी जी के अलावा देश के ग्रामीण जीवन की विषमताओं का चित्रण एंव राष्ट्र को समर्पित आज़ादी के लिए जोश भरे गीतों पर चिंतन किया गया है। **'झोपड़ियों की ओर'** कविता से एक उदाहरण इस प्रकार दृष्टव्य है–

"जिनके अस्थि–पिंजरों की नीवों पर ये प्रासाद खड़े,
जिनके उष्ण रक्त के गारे से गढ़ डाले भवन बड़े ।
जिनकी भूखों की होली पर मना रहे तुम दिवाली,
जिनसे तुम उज्जवल ! देखो, उनकी देहें काली–काली।
उन भोले–भोले कृषकों की करुण कथाओं पर पिघलो!
महलों की भूलो प्यारे ! अब झोंपड़ियों की ओर चलो !"[4]

'पथ–गीत' जैसी कविताओं के माध्यम से द्विवेदी जी ने वीर सैनिकों के उत्साह एंव जोशीलेपन को देखते हुए उनकी वीरता संबंधी गीतों पर चिंतन किया है। **'पथगीत'** कविता से जिसका उदाहरण इस प्रकार दृष्टव्य है–

"हत मातृ–भूमि के सैनिक हैं, आज़ादी के मतवाले है;
बलिवेदी पर हँस–हँस करके, निज शीश चढ़ानेवाले हैं।"[5]

'वासवदत्ता' काव्य–संग्रह में सोहनलाल द्विवेदी ने युग–युग की भारतीय संस्कृति को अंकित करने का प्रयत्न किया और ऐसी कविताओं की रचना की जिसमें समाज एंव जाति के मेरुदण्ड आदर्श स्थापित हो सकें। द्विवेदी जी का मानना है कि देश तो स्वतंत्र होगा ही किन्तु उसका आदर्श, सभ्यता, संस्कृति, नैतिक पृष्ठभूमि के बिना भारतवर्ष ज्यादा देर चल नहीं सकता। राष्ट्रीय स्वतंत्रता के बाद द्विवेदी जी का दूसरा चिंतन सांस्कृतिक था। उन्होंने देश के गौरवशाली इतिहास और भारत की सांस्कृतिक विरासत को राष्ट्रीय संघर्ष के लिए प्रेरकस्रोत बनाया है। **'वासवदत्ता'** कविता से जिसका उदाहरण इस प्रकार दृष्टव्य है–

"आज से बहुत दिन पहले की कहता हूँ बात
जब कि स्वर्णयुग का खिला या मधुर प्रभात
भारत की प्राची में;
देश धन–धान्य से पूर्ण था,
थे न हम परतंत्र किसी बंधन में,
आये थे मुग़ल न इस देश में,
अपनी थी संस्कृति अछूत, पूत–पावन विचारों से,
अपना था दिवस, और, अपनी थी सभी बात।
उसी समय, गौतम के गौरव का, वैभव का,
गूंजा था विशद गान;।"[6]

'कुणाल' सोहनलाल द्विवेदी का तीसरा काव्य–संग्रह है। यह काव्य–संग्रह एक खंडकाव्य है। इस संग्रह में अतीत के आख्यानों के सहारे राष्ट्रीय–चिंतन पर बल दिया गया है। किसी भी राष्ट्र के लिए वहाँ के लोगों का चरित्र बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस काव्य–संग्रह में द्विवेदी जी ने कुणाल के माध्यम से एक उदात्त चरित्र का आदर्श प्रस्तुत किया है। काव्य में कुणाल के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली एक ही घटना को मुख्य रूप से चित्रित है, वह है सौतेली माँ की आसक्ति पर कुणाल की प्रतिक्रिया। इस एक घटना के सूत्र को द्विवेदी जी ने दस सर्गों में सारा काव्य सँजोया है। **पहले सर्ग** में पाटली पुत्र का वर्णन है। **दूसरे सर्ग** में कुणाल के बाल्य और तरुण जीवन की झाँखी है। **तीसरे सर्ग** में कुणाल के पिता सम्राट अशोक के चित्रण द्वारा राजधानी में घटित होने वाली घटना का वर्णन है। **चौथे सर्ग** में अशोक की पत्नी तिष्यरक्षिता कुणाल से प्रेम का प्रस्ताव रखती है। **पाँचवे सर्ग** में प्रेम प्रस्ताव को अस्वीकार करने की घटना का वर्णन है। **छठें सर्ग** में द्विवेदी ने तिष्यरक्षिता का परिशोध दिखाया है। **सातवें सर्ग** में कुणाल को दंड दिया जाता है। दंड के रूप में वह अपनी आखें निकलवाना स्वीकार करता है और निर्वासित कर दिया जाता है। **आठवें सर्ग** में उनके प्रस्थान की कथा वर्णित है। **नवें सर्ग** में कुणाल का वनों में भटकने का चित्रण किया गया है। **दशमसर्ग** में अशोक द्वारा कुणाल को राजसिंहासन

सौंपने की घटना का वर्णन है। इस प्रकार पूरे काव्य में अशोक के पुत्र कुणाल को काव्य के केंद्र में रखा गया है। द्विवेदी जी ने कुणाल का आदर्श चरित्र प्रस्तुत कर तत्कालीन सामाजिक जीवन का परिचय दिया है। कुणाल के अलावा अशोक के चरित्र के आदर्शवादी और मानवीय पक्षों को भी अंकित किया है। वे यही चारित्रिक आदर्श भारत के युवाओं में स्थापित करना चाहते थे। जिसका उदाहरण इस प्रकार दृष्टव्य है –

"आई कुणाल के पार्श्व, तिष्यरक्षिता सजे सोलह श्रृंगार,
रति चली मुग्ध करने जैसे रूठे अनंग को, ले उभार
ये इधर कुणाल विचारमग्न, गंभीर–धीर, घन नीर–भरे,
दृढ़ स्कंधों पर या उत्तरीय,थे लहर रहे कुन्तल गहरे ।"[7]

'प्रभाती' कव्य–संग्रह द्विवेदी जी ने बहुत ही सरल सहज भाषा के माध्यम से राष्ट्रीय जागरण के चलचित्र को उकेरा है। इस जागरण का चिंतन उन्होंने तिरस्कृत बहिस्कृत जनता के परिपेक्ष्य में किया है। काव्य की भाषा में लक्षणा एंव व्यंजना का मोह छोड़ द्विवेदी जी ने अभिधा को अपनाया। उनका मानना था की जनता के लिए साहित्य जनता की भाषा में ही होना चाहिए। राष्ट्रीय जागरण की इन कविताओं में द्विवेदी जी ने सरल एंव सहज भाषा के माध्यम से चिंतन किया है। जिसका उदाहरण **'कवि से'** कविता से इस प्रकार दृष्टव्य है–

"है एक ओर पीड़ित जनता ; दूसरी ओर साम्राज्यवाद;
गा जनगण के जागरण–गीत, टूटे जिससे युग का प्रमाद !
पिस गई हमारी रीढ़ आह ! ढोया है अब तक राज्य भार ;
बल सा संवल दे दुर्बल को, वह उठे आज निज को निहार !
नवचेतन की छवि ! जाग ! जाग !
ओ नवयुग के कवि ! जाग ! जाग !"[8]

इस अंश में कवि ने शोषित जनता को अपने हितों की रक्षा के लिए उन्हें जगाने का प्रयास किया है। 'युगाधार' काव्य–संग्रह की सभी कविताओं में राष्ट्रीय–चेतना के जागरण का स्वर विद्यमान है। **बापू के प्रति, रेखाचित्र, गाँधीग्राम, सेवाग्राम, भ्रमण, उगता राष्ट्र, हलधर से, मज़दुर, जागो हुआ बिहान, हमको ऐसे युवक चाहिए, ओ तरुण, ओ नौजवान, प्रयाण–गीत, अभियान–गीत, जागरण, कणिका, बेतवा का सत्याग्रह, कैसी देरी, कांति कुमारी जैसी ओजस्वी कविताएँ इस संग्रह में शामिल है।** जो राष्ट्रीय–चेतना का संचार करने में सहायक रही हैं। युगाधार में उस युग की राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सामाजिक जन–क्रांतियों को द्विवेदी जी ने अपने काव्य में अभिव्यक्त किया है। जिसका उदाहरण **'राजबंदी राष्ट्रकवि'** कविता से इस प्रकार दृष्टव्य है–

"सिंहासन तुम चले उलटने, ओ विद्रोही वीर !
इसलिए यह दंड–तुम्हारे हाथों में ज़ंजीर ।
सिखलाय तुमने भारत के तरुणों को षड्यंत्र,
बनो स्वतंत्र, पूर्ण–गौरव हो, कितना विषधर मंत्र ?"[9]

'वासन्ती' काव्य–संग्रह में भावों की वासन्त सुषमा है। संग्रह में द्विवेदी जी ने प्रेम के गीतों को उदारता और शालीनता ढंग से प्रस्तुत किया है और युवाओं को प्रेम का संदेश दिया है। उनका यह चिंतन ना व्यक्तिगत प्रतीत होता है ना उसका दायरा संकीर्ण है। प्रेम के चित्रों के साथ–साथ प्रकृति की भी झलक दिखाई पड़ती है। जिसका उदाहरण **'प्रस्तावना'** कविता से इस प्रकार है–

"कोमल बाहुलता फैलाओ,
स्नेहालिंगन– कुंज बनाओ; ।"[10]

'पूजा–गीत' काव्य–संग्रह में सोहनलाल द्विवेदी ने भारत की मंगल कामना सम्बन्धी गीतों की रचना की है। द्विवेदी जी के काव्यों की व्यथा का उद्‌गम राष्ट्र से होता है उसकी अभिव्यक्ति भावनात्मक होती हैं। इन गीतों के माध्यम से उन्होंने राष्ट्र के लोगों में लोक कल्याण की चेतना को विकसित किया है। जिसका उदाहरण **'अभय करो है !'** कविता से इस प्रकार है–

"युग–युग का जड़ प्रमाद, छिन्न करो विष–विषाद,
नव बल का दो प्रसाद;
निर्बल तन, निर्बल मन, ओज भरो हे !
अभय करो हे !"[11]

'चेतन' काव्य–संग्रह में सोहनलाल द्विवेदी ने महान् राष्ट्रनायकों का गुणगान किया है। इस गुणगान की परिधि के केंद्र में राष्ट्रीय–चिंतन को रखा हैं। **इसके अतिरिक्त इस संग्रह में तिरंग ध्वज, यह स्वतंत्रता की अरुण उषा, वज्रपात, संकल्प, विजय पर्व, राष्ट्र–ध्वजा, दीपाली जैसी ओजस्वी कविताओं को इस संग्रह में स्थान दिया है**। जिसने युवकों के भीतर राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्य का बोध कराया है। **'तुझे शपथ है'** कविता से एक उदाहरण इस प्रकार दृष्टव्य है –

"तुझे शपथ है, देश–भक्ति की, देश–भक्ति के नारों की !
तुझे शपथ है, कसी हुई जंजीरों की, झनकारों की !
तुझे शपथ है, बँधे प्रतिज्ञा के लोहे के तारों की !
तुझे शपथ है, बेगुनाह बेवाओं की चीत्कारों की !"[12]

'मुक्तिगंधा' काव्य–संग्रह में सोहनलाल द्विवेदी ने स्वातन्त्र्योत्तर काल में लिखी कविताओं को इस संग्रह में शामिल किया है, जिसे उन्होंने युवा पीढ़ी को समर्पित किया है। स्वातन्त्र्योत्तर काल में देश जिन आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक गतिविधियों के मोड़ से गुजरा है, जनता पर जो उसकी प्रतिक्रिया हुई उसकी मानसिक आशा, निराशा, आकांक्षा, आक्रोश के भाव साकार होकर इस काव्य–संग्रह में मुखरित हुए हैं। **'जागरण गीत'** कविता से एक उदाहरण इस प्रकार दृष्टव्य है –

"अब न गहरी नींद में तुम सो सकोगे,
गीत गाकर मैं जगाने आ रहा हूँ।
अतल अस्ताचल तुम्हें जाने न दूँगा,
अरुण उदयाचल सजाने आ रहा हूँ।"[13]

'संजीवनी' काव्य–संग्रह एक खण्डकाव्य है। इस काव्य–संग्रह का मूल स्वर राष्ट्रीय–चेतना और देश–प्रेम है। इस खण्डकाव्य में कच–देवयानी की गाथा को प्रस्तुत किया गया है। कच–देवयानी की गाथा भारत के आदर्शनिष्ठ मानस के इतिहास की एक महत्तम उपलब्धि है। काव्य के विभिन्न सर्गों का नामकरण उनमें वर्णित प्रमुख घटनाओं के आधार पर किया गया है। द्विवेदी जी ने काव्य के कथानक को देवासुर–संघर्ष का जीवंत रूप प्रदान किया है। इस काव्य–संग्रह में काल–निरपेक्ष राष्ट्रीय चेतना की प्रतिनिधि कला का उन्मेष हुआ है। संघर्ष के अंत में जो कुछ भी बचा रहता है, वह मानव मूल्य है और मानव मूल्य का सबसे बड़ा धर्म मानवता है। इस संघर्ष के माध्यम से उन्होंने मानव के सबसे बड़े धर्म मानवता पर बलदिया है। जिसका उदाहरण **'विराम' सर्ग** से इस प्रकार है–

"जो त्याग प्रेय को श्रेय वरा करते हैं,
वे कच हैं, जो ध्रुव ध्येय धरा करते हैं।
हममें हो सुर हैं, असुर, देव–दानव भी,
है सबका मूलाधार एक मानव ही,।"[14]

निष्कर्ष :– सोहनलाल द्विवेदी के राष्ट्रीय–चिंतन ने भारतवासियों के भीतर एक राष्ट्रीय–चेतना का संचार किया। द्विवेदी जी ने अपने काव्यों में भारत के गौरवशाली अतीत को गौरवान्वित रूप में प्रस्तुत किया और वर्तमान भारत को अपने हितों के प्रति जागरूक किया। द्विवेदी जी ने अपनी कविताओं में भारतवासियों को वंश, जाति, सम्प्रदाय, धर्म, वर्ण, राष्ट्र, शोषण, हिंसा, छल, कपट, ध्वंश, अंध विज्ञानमत्तता आदि से मनुष्य को उठाकर मनुष्यत्व को पहचनाने का संदेश दिया। अंत में यह कह सकते हैं की उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से स्वाधीनता की चेतना को भारत के जन–जन तक पहुँचाने का कार्य किया और युवाओं के भीतर ऊर्जा जोश का नवीन संचार एवं आत्म बल प्रदान किया। राष्ट्रीय कवियों में सोहनलाल द्विवेदी का नाम आज भी बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है और आगे भी लिया जायेगा। उनके साहित्यिक योगदान को हिंदी साहित्य में युगों–युगों तक स्मरण किया जायेगा।

सन्दर्भ सूची:–

1. पथिक, देवराज शर्मा, हिंदी की राष्ट्रीय काव्य–धारा का एक समग्र अनुशीलन, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1979 पृष्ठ संख्या 19
2. यथावत्, पृष्ठ संख्या 19
3. यथावत्, पृष्ठ संख्या 21

4. राकेश गुप्त (स॰), सोहनलाल द्विवेदी ग्रंथावली, ग्रंथायन प्रकाशन, अलीगढ, संस्करण 1986, पृष्ठ संख्या 10
5. यथावत्, पृष्ठ संख्या 53
6. यथावत्, पृष्ठ संख्या 63
7. यथावत्, पृष्ठ संख्या 130
8. यथावत्, पृष्ठ संख्या 182
9. यथावत्, पृष्ठ संख्या 253
10. यथावत्, पृष्ठ संख्या 263
11. यथावत्, पृष्ठ संख्या 328
12. राकेश गुप्त (स॰), सोहनलाल द्विवेदी ग्रंथावली, ग्रंथायन प्रकाशन, अलीगढ, संस्करण 1986, पृष्ठ संख्या 387
13. यथावत्, पृष्ठ संख्या 410
14. यथावत्, पृष्ठ संख्या 495

देशप्रेम और राष्ट्रीय चेतना की कवयित्री : सुभद्राकुमारी चौहान

डॉ॰ नरेश कुमार,सहायक प्रोफ़ेसर*

आधुनिक हिन्दी साहित्य में जिन रचनाकारों की वाणी ने क्रान्ति का संचरण कर जनजीवन में स्फूर्ति और चेतना का स्फुरण किया, जनता को देशभक्ति और प्रेम के आवेग से सराबोर किया, उन रचनाकारों में सुभद्राकुमारी चौहान का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सुभद्राकुमारी चौहान हिन्दी वीर काव्य–श्रृंखला की महत्त्वपूर्ण कड़ी हैं। ये भावुक हृदय कवयित्री के साथ–साथ क्रान्तिकारी एवं सबल नेतृत्व क्षमता से युक्त महिला थी। राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत और दृढ़ मनोबल की स्वामिनी इस क्रान्तिकारी महिला ने न केवल स्वयं आजादी की लड़ाई में बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया बल्कि अपने पति ठाकुर लक्ष्मण सिंह को भी वकालत छोड़कर आजादी की जंग में सक्रिय भूमिका निभाने के लिए प्रेरित किया। 'अरुणेन्द्र सिंह राठौर' के शब्दों में, "जिस उम्र में स्त्री प्रेम के मोहपाश में बँधकर मात्र गृहस्थी धर्म के निर्वाह में उलझी रहती है, उसी उम्र में इन्होंने पति के साथ कंधे से कंधा मिलाकर सम्पूर्ण देश में क्रान्ति का शंखनाद फूँकने का भगीरथ कार्य किया। इसी कारण इनका सम्पूर्ण साहित्य इनके व्यक्तित्व का परिचायक बन गया।"[1] वास्तव में सुभद्रा जी का समस्त जीवन और सहित्य राष्ट्र को समर्पित था। जहाँ एक ओर इनमें नारी–सुलभ गुणों का उत्कर्ष है, वहीं दूसरी और स्वदेश–प्रेम और देशाभिमान भी है। 'स्वदेश के प्रति' कविता की ये पंक्तियाँ उनके इन्हीं गुणों को चरितार्थ करती हैं :–

"आ, स्वतन्त्र प्यारे स्वदेश आ,
स्वागत करती हूँ तेरा।
तुझे देख कर आज हो रहा
दूना प्रमुदित मन मेरा।।"[2]

सुभद्राकुमारी चौहान का सम्पूर्ण काव्य राष्ट्रीय आन्दोलनों और स्वाधीनता संग्रामों को परिलक्षित करता है। उनका सम्पूर्ण जीवन राष्ट्रीय चेतना के प्रतीक के रूप में हमारे सम्मुख प्रकट होता है। राष्ट्रीय चेतना की भावना उनके सम्पूर्ण जीवन और काव्य में कूट–कूट कर भरी पड़ी है। 'डॉ0 सरोज सिंह' के अनुसार, 'सुभद्रा जी के साहित्य में स्वाभाविक रूप से राष्ट्रीय आन्दोलन और स्त्रियों की स्वाधीनता का प्रश्न परिलक्षित होता है। राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता के उन दिनों में, जबकि उत्साह और उमंग की कमी होने लगी थी और बड़े–बड़े देशभक्तों के कदम डगमगाने लगे थे, क्रान्ति कुमारी श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान के रूप में प्रकट हो उठी। श्रीमती चौहान में देशभक्ति की उद्दाम अभिव्यक्ति है, और है राष्ट्र कल्याण का अक्ष्य उत्साह।"[3] सुभद्रा जी का जीवन और साहित्य ओज, औदार्य एवं देश प्रेम की भावना से आप्लावित रहा है।

* हिन्दी–विभाग, हि॰ प्र॰ विश्वविद्यालय, शिमला–171005, दूरभाष 9736020860,
ईमेल naresh.tomar2011@gmail.com

सुभद्राकुमारी चौहान ने स्वाधीनता आन्दोलन में तो अपनी अग्रणी भूमिका का निर्वाह किया ही इसके साथ ही अपने साहित्य के माध्यम से अपनी प्रखर राष्ट्रीय चेतना और विद्रोही व्यक्तित्व का परिचय भी दिया। वे कहती हैं:–

"राष्ट्र ने कहा कि महायुद्ध का नियोग करो।
कँपा दो विश्व को, अब शक्ति का प्रयोग करो।
हटा दो दुश्मनों को, डट के असहयोग करो।
स्वतन्त्र माता को करके, स्वराज्य भोग करो।"[4]

सुभद्रा जी के स्वर में क्रान्ति की ज्वाला सुलग रही थी। इन्होंने 'झांसी की रानी', 'जलियाँवाला बाग में वसंत', 'वीरों का कैसा हो वसंत', 'राखी', 'सेनानी का स्वागत', 'झांसी की रानी की समाधि', 'स्वदेश के प्रति', 'विजयादशमी', 'बिदाई' जैसी राष्ट्रीय चेतना से ओत–प्रोत अनेक कविताएँ लिखी। इन कविताओं ने ही सुभद्रा जी को राष्ट्रीय चेतना की मूर्धन्य कवयित्री के रूप में स्थापित किया है। सुभद्राकुमारी ने वक्त के हिसाब से अपनी रचनाओं में भारतीय संस्कृति के साथ–साथ ओजपूर्ण कविता की सुर लहरी छेड़कर तत्कालीन जन–मानस में देश और समाज के प्रति जोश और सम्मान भरने का महत्त्वपूर्ण प्रयास किया है। एक वीरांगना का अन्याय के प्रति आक्रोश और गुलामी के विरुद्ध प्रतिकार का दीप्त स्वर इनकी कविताओं में मिलता है।

सुभद्राकुमारी चौहान ने अपनी प्रतिभा के बल पर सम्पूर्ण राजनीति और साहित्य जगत को प्रभावित किया है। वह अपनी आवाज को सम्पूर्ण जनमानस की आवाज बना देना चाहती थी। इसके लिए सत्याग्रह और कविता से बढ़कर दूसरा माध्यम क्या हो सकता था। वह मातृभाषा के महत्त्व और गुणों से सभी में जोश भर देना चाहती थी। 'मातृ मन्दिर में' कविता के माध्यम से मातृभाषा का आह्वान करती हुई वे कहती हैं :–

तू होगी आधार, देश की
पार्लमेण्ट बन जाने में।
तू होगी सुख–सार, देश के
उजड़े क्षेत्र बसाने में।।
तू होगी व्यवहार देश के
बिछड़े हृदय मिलाने में।
तू होगी अधिकार, देशभर
को स्वातन्त्रय दिलाने में।"[5]

सुभद्रा राष्ट्रीय चेतना की सजग प्रहरी थी। इन्होंने आगे आकर राष्ट्रीय हित में नारियों के योगदान की अमिट कथा कही और राष्ट्रीय आन्दोलन की सशक्त प्रहरी बनकर महिलाओं की भूमिका सिद्ध कर दी। 'झाँसी की रानी' कविता में वह कहती हैं :–

"हमको जीवित करने आयी बन स्वतन्त्रता नारी थी,
दिखा गयी पथ, सीखा गयी हमको जो सीख सीखानी थी,
बुन्देले हरबोलों मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।"[6]

सुभद्रा जी तन से और मन से राष्ट्र के प्रति समर्पित रही। देश के लिए मर मिटना वह अपना प्रथम कर्त्तव्य समझती थी। इनका मानना था यदि पुरुष देश की रक्षा करते–करते अपने कर्त्तव्य से डगमगा जायें तो वह रणचंडी बन कर देश की रक्षा के लिए स्वयं को न्यौछावर कर देगी। वह कहती हैं :–

"सबल पुरुष यदि भीरू बने,
तो हमको दे वरदान सखी!
अबलाएँ उठ पड़ें देश में,
करें युद्ध घमसान सखी!
पन्द्रह कोटि असहयोगिनियाँ
दहला दें ब्रह्माण्ड सखी!
भारत–लक्ष्मी लौटाने को,
रच दें लंकाकाण्ड सखी।"[7]

देशभक्त वीर राष्ट्र प्रेम से ओत–प्रोत होते हैं। वे राष्ट्र के मान–सम्मान और देश की रक्षा के लिए हंसते–हंसते अपने प्राणों का बलिदान दे देते हैं। सुभद्रा का समस्त काव्य ऐसे वीरों की गाथाओं से भरा पड़ा है। देशभक्त वीरों के गुणों का बखान करते हुए सुभद्रा जी कहती हैं :

''बढ़ जाता है मान वीर का
रण में बलि होने से।
मूल्यवती होती सोने की
भस्म यथा सोने से।।
रानी से भी अधिक हमें अब
यह समाधि है प्यारी।
यहाँ निहित है स्वतन्त्रता की
आशा की चिनगारी।।''[8]

सुभद्रा जी की वाणी में ओज और तेज था। देश के वास्ते मर मिटने के लिए वे अपने भाईयों से भी दृढ़ संकल्प लेती हैं। 'राखी' कविता में वे भाई से कहती हैं :–

"लो आओ भुजदण्ड उठाओ
इस राखी में बन्ध जाओ
भरत–भूमि की रजपूती को

एक बार फिर दिखलाओ।
देखो भैया। भेज रही हूँ
तुमको, तुमको राखी आज
साखी राजस्थान बनाकर
रख लेना राखी की लाज।"[9]

इसी प्रकार 'बिदाई कविता में बहन अपने भाई से देश पर मर मिटने का वचन माँगते हुए कहती हैं :–

"तुम्हारे देशबन्धु यदि कभी
डरें, कायर हो पीछे हटें,
बन्ध, दो बहनों को वरदान
युद्ध में वे निर्भय मर मिटें।"[10]

सुभद्राकुमारी चौहान गाँधी जी से सर्वाधिक प्रभावित थी। उन्होंने सत्य और अहिंसा के हथियारों से सभी को लड़ने की प्रेरणा दी। सुभद्रा ने भी जीवन में गाँधी जी के उच्च आदर्शों का पालन करने की सभी को प्रेरणा दी। 'मेरी टेक' कविता में वे लोगों को त्याग और बलिदान का महत्त्व बताते हुए कहती हैं :–

"निर्धन हों धनवान, परिश्रम उनका धन हो।
निर्बल हों बलवान, सत्यमय उनका मन हो।।
हो स्वाधीन गुलाम, हृदय में अपनापन हो।
इसी आन पर कर्मवीर तेरा जीवन हो।।"[11]

राष्ट्र के निर्माण और उसके अस्तित्व को बनाए रखने के लिए परिस्थितियों के अनुसार राष्ट्रीय एकता और अखण्डता की भावना का निर्माण करना अति आवश्यक होता है। सुभद्राकुमारी चौहान जाति, मजहब, सम्प्रदाय से ऊपर उठकर राष्ट्रीय एकता और अखण्डता को सर्वोपरि मानते हुए कहती हैं :

''मेरा भी मन है जिसमें अनुराग भरा है प्यार भरा है।
जग में कहीं बरस जाने को स्नेह और सत्कार भरा है।
वही स्नेह, सत्कार, प्यार मैं आज तुम्हें देने आयी हूँ।
और इतना तुमसे आश्वासन, मेरे प्रभु लेने आयी हूँ।।
तुम कह दो तुमको उनकी इन बातों पर विश्वास नहीं।
छूत–अछूत, धनी–निर्धन का भेद तुम्हारे पास नहीं।''[12]

देशभक्ति और राष्ट्र प्रेम की भावना सभी भावों में श्रेष्ठ होती है। सच्चा राष्ट्र प्रेमी देश के मान–सम्मान और गौरव को बरकरार रखने के लिए सदैव तत्पर रहता है। विकट परिस्थितियों में भी राष्ट्रभक्त कदापि विचलित नहीं होता और वह हमेशा आशावादी

दृष्टिकोण बनाए रखता है। 'सेनानी का स्वागत' कविता में कवयित्री आशावादी दृष्टिकोण व्यक्त करते हुए कहती हैं :

''प्रभुता मन से भरी शत्रु की
व्यंग्य भरी बौछारें।
साक्षी हैं साहस की फिर हम
जीतें अथवा हारें।
हैं सन्तप्त तदपि आशा से
स्वागत आज तुम्हारा।
एक बार फिर से कइ दो झंडा
ऊंचा रहे हमारा।।''[13]

भारतवर्ष को स्वतन्त्र करवाने में अनेक वीरों ने अपना बलिदान दिया। सुभद्रा जी का मानना है कि इन वीरों के त्याग और बलिदान को कभी भी भुलाया नहीं जा सकता। वे राष्ट्रवासियों के समक्ष सदा इन वीरों के त्याग का बखान करती हैं, ताकि वे भी उनके आदर्शों का पालन करें :–

"इस स्वतन्त्रता–महायज्ञ में कई वीरवर आये काम,
नाना धुन्धूपन्त, ताँतिया, चतुर अजीमुल्ला सरनाम,
अहमद शाह मौलवी, ठाकुर कुंवरसिंह सैनिक अभिराम,
भारत के इतिहास–गगन में अमर रहेंगे जिनके नाम।" [14]

सुभद्रा का मानना है कि राष्ट्र को अस्मिता और स्वतन्त्रता दिलाने में त्यौहारों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। 'विजयादशमी' कविता में राष्ट्रीय चेतना को जागृत करती हुई वे कहती है :–

"विजय! तूने तो देखा है
वह विजय श्रीराम सखी।
धर्मभीरू सात्विक निश्छलमन
वह करुणा का धाम सखी।
रामचन्द्र की विजय–कथा का
भेद बता आदर्श सखी!
पराधीनता से छूटे यह
प्यारा भारवर्ष सखी।" [15]

सुभद्राकुमारी चौहान ओज और तेज के साथ–साथ प्रकृति प्रेमी कवयित्री भी रही हैं, परन्तु राष्ट्र प्रेम और देशाभिमान के कारण वे प्रकृति में भी राष्ट्रीय चेतना के तत्त्व ढूँढती नज़र आती हैं। उनकी कविता 'वीरों का कैसा हो वसंत' में भारत की समस्त प्रकृति सुषमा बार–बार यही प्रश्न पूछ रही है कि 'वीरों का वसंत कैसा होना चाहिये :–

"वीरों का कैसा हो वसंत ?
आ रही हिमाचल से पुकार
है उदधि गरजता बार–बार,
प्राची, पश्चिम, भू, नभ अपार,
सब पूछ रहे हैं दिग्–दिगन्त,
वीरों का कैसा हो वसंत ?
फूली सरसों ने दिया रंग
मधु लेकर आ पहुँचा अनंग
वधु–वसुधा पुलकित अंग–अंग
है वीर वेश में किन्तु कन्त,
वीरों का कैसा हो वसंत ?" [16]

स्वतन्त्रता की चिन्गारी को जन–जन तक पहुँचाना सुभद्रा जी का मुख्य लक्ष्य था। वे पूरी तरह से राष्ट्रीय भावनाओं से ओत–प्रोत थी। उनका अन्तिम लक्ष्य यही रहा कि भारत की आन–बान और शान सदा बनी रहे और हमारी स्वतन्त्रता का प्रतीक राष्ट्रीय ध्वज तिरंगे के रूप में सदा लहराता रहे। 'सेनानी का स्वागत' कविता में झण्डे की शान में कहती हैं :–

रण–भेरी का नाद सदा को
क्या अब रुक जायेगा ?
जिसको ऊँचा किया वही क्या
झंडा झुक जायेगा।
है सन्तप्त तदपि आशा से
स्वागत आज तुम्हारा
एक बार फिर कह दो झंडा
ऊँचा रहे हमारा।" [17]

सुभद्रा जी वास्तव में राष्ट्रीय चेतना की अमर गायिका रही हैं। इनका सम्पूर्ण जीवन राष्ट्र को समर्पित रहा। इनका सम्पूर्ण काव्य वीर और ओजपूर्ण भावों से सिंचित है अतः कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य में सुभद्राकुमारी चौहान राष्ट्रीय चेतना की मूर्धन्य कवयित्री रही हैं। देशप्रेम की भावना और राष्ट्रीयता उनके जीवन और काव्य का मूल स्वर रहा है। इनकी रचनाओं में ओज और जोश है, जो अपने अन्दर आजादी के राष्ट्रीय गौरव को समेटे हुए है। 'झाँसी की रानी', 'वीरों का कैसा हो वसंत', 'विजयादशमी', 'स्वदेश के प्रति, जलियाँवाला बाग में वसंत, सेनानी का स्वागत, बिदाई, मेरी टेक, मातृ मन्दिर, झाँसी की रानी की समाधि, राखी आदि सुभद्रा की ऐसी रचनायें रही हैं, जो जनमानस में आज भी देशभक्ति और राष्ट्र प्रेम का उत्सभर सकती हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1 डॉ॰ शिवनारायण (सं॰), विद्रोहिणी कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान, पृ॰ 59–60
2 स्वदेश के प्रति (कविता) सुभद्रा समग्र, पृ॰ 104
3 बृजेश चन्द्र (सं॰) हिन्दुस्तानी (पत्रिका) जनवरी–मार्च 2010, पृ॰ 67
4 स्वागत गीत (कविता) सुभद्रा समग्र, पृ॰ 103
5 मातृ मन्दिर में (कविता) सुभद्रा समग्र, पृ॰ 87
6 झाँसी की रानी (कविता) सुभद्रा समग्र, पृ॰ 64
7 विजयादशमी (कविता) सुभद्रा समग्र, पृ॰ 81–82
8 झांसी की रानी की समाधि पर (कविता), सुभद्रा समग्र, पृ॰ 147
9 राखी (कविता) सुभद्रा समग्र, पृ॰ 76–77
10 बिदाई (कविता) सुभद्रा समग्र, पृ॰ 95
11 मेरी टेक (कविता) सुभद्रा समग्र, पृ॰ 94
12 प्रभु तुम मेरे मन की जानो (कविता), सुभद्रा समग्र, पृ॰ 175
13 सेनानी का स्वागत (कविता), सुभद्रा समग्र, पृ॰ 143
14 झाँसी की रानी (कविता) सुभद्रा समग्र, पृ॰ 61
15 विजयादशमी (कविता) सुभद्रा समग्र, पृ॰ 79–80
16 वीरों का कैसा हो बसन्त (कविता) सुभद्रा समग्र, पृ॰ 11
17 सेनानी का स्वागत (कविता) सुभद्रा समग्र, पृ॰ 143

बाणभट्ट की आत्मकथा और राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन

पिंकी देवी*

साहित्यकार अपने देशकाल व परिवेश से जुड़ा होता है। अपने देश और परिवेश में होने वाली घटनाओं से वह निश्चित प्रभावित होता है। इसलिए वह अपने देशकाल में होने वाले परिवर्तनों को कभी प्रत्यक्ष रूप से तो कभी परोक्ष रूप से समाज के सामने रखता हुआ अपने विचार प्रकट करता है। इसलिए किसी भी साहित्यकार को अपने देशकाल और परिवेश का मुख एवं मस्तिष्क कहा जाता है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा विरचित कृति 'बाणभट्ट की आत्मकथा' केवल प्रेम की संवेदना तक ही सीमित नही है बल्कि इसमें प्रेम की गूढ़तम अभिव्यक्ति के साथ–साथ राष्ट्रीय स्वाधीन आन्दोलन की भी सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। जिस समय हजारी प्रसाद द्विवेदी जी शांति निकेतन में 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास लिख रहे थे, उस समय देश परतंत्र था। भारत में तत्कालीन परिवेश में राष्ट्रीय स्वाधीन आन्दोलन अपने चरम दौर पर था और द्वितीय विश्वयुद्ध की विनाशलीला भी अपने चरम दौर पर थी। देश में हो रहे इस स्वाधीन आन्दोलन के घनघोर संघर्ष में विश्वासघात करने वाले अनेक समुदायों ने स्वाधीनता संग्राम से किनारा कर अंग्रेजों से हाथ मिलाकर ब्रिटिश शासनतंत्र से मिल गए थे और देश की बहुसंख्यक दलित उत्पीड़ित जनता आजादी के प्रति उदासीन थी। इसकी अभिव्यक्ति बाणभट्ट की आत्मकथा में परोक्ष रूप में, सातवीं सदी के हर्षवर्धन काल के राष्ट्रीय संकट के रूप में व्यक्त हुई है। इतिहासकार इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि भारत में विदेशी आक्रमणकारियों की सफलता का प्रमुख कारण भारत की सामान्य जनता की राजनीतिक उदासीनता है। इसी प्रसंग को बाणभट्ट की आत्मकथा उपन्यास में नारी पात्र महामाया के कथनों के माध्यम से दर्शाया गया है। इस उपन्यास में महामाया ही वह नारी पात्र है जो देश के नवयुवकों को विदेशी आक्रांताओ के खिलाफ जगाती हुई एकत्रित करती है और राष्ट्रीय चेतना जगाती है।

कथा सार :– 'बाणभट्ट की आत्मकथा' आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित एक सुप्रसिद्ध उपन्यास है जिसका प्रकाशन 1946 ई. में हुआ था। इस उपन्यास में द्विवेदी जी ने सातवीं सदी के भारत की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक स्थिति का निरूपण 'बाणभट्ट' को केंद्र में रखकर किया है। इस उपन्यास की रचना 'हर्षचरित' एवं 'कादम्बरी' को उपजीव्य ग्रन्थ बनाकर की गई है। इस उपन्यास की ऐतिहासिक कथा के साथ–साथ इसके पात्र भी ऐतिहासिक हैं। जिसमें बाणभट्ट, हर्षवर्धन, राज्यश्री, तथा कृष्णवर्धन का उल्लेख तो इतिहास में मिलता है। कथा विकास तथा तत्कालीन युगीन सन्दर्भों को व्यक्त करने के लिए कुछ पात्र काल्पनिक लिए गए हैं । भट्टिनी, निउनिया (निपुणिका), महामाया, तुवरमिलिंद और सुचरिता आदि काल्पनिक पात्र कथा विकास में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। जब प्रतापी सम्राट तुवरमिलिंद की कन्या 'भट्टिनी' को अपहरण कर बेच दिया

* (शोधार्थी), हिंदी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़।

जाता है तो साधारण नारी की तो बात ही क्या है। उपन्यासकर ने नारी मुक्ति की समस्या के साथ–साथ राष्ट्रीय स्वाधीन आन्दोलन की जागृति की अभिव्यक्ति भी साथ दी है। इस उपन्यास में कथासूत्र को इस प्रकार गुथकर रखा गया है जिससे जीवन सत्यों से मानव का साक्षात्कार होता है। इसमें महामाया के माध्यम से राष्ट्रीय जागृति ,भट्टिनी के माध्यम से नारी मुक्ति और जीवन मूल्यों की समस्या को उठाया गया है। इस प्रकार इस उपन्यास में इतिहास एवं कल्पना के सुंदर समिश्रण के द्वारा तत्कालीन युगीन यथार्थ को अभिव्यक्ति दी है।

बाणभट्ट की आत्मकथा और राष्ट्रीय स्वाधीन आन्दोलन :– इस उपन्यास में विदेशी आक्रांताओं के खिलाफ परोक्ष रूप से अभिव्यक्ति दी है। महामाया के माध्यम से आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी देश की जनता को स्वाधीन आन्दोलन के लिए एक हो जाने का आवाहन करते हैं। महामाया का कथन है की– "अमृत के पुत्रों, मैं ऊर्ध्वबाहु होकर चिल्ला रही हूँ, यह अशुभ लक्षण है। अपने आपको बचाओ, धर्म पर दृढ़ रहो, न्याय के लिए मरना सीखो, ब्राह्मण से लेकर चांडाल तक एक हो जाओ –चट्टान की तरह दुर्भेद्य एक।"[1] आचार्य द्विवेदी जी का मानना था कि देश के स्वतंत्रता आन्दोलन के लिए केवल किसी एक जाति का कर्तव्य नहीं बल्कि इसके लिए विराट जन आन्दोलन की जरूरत है जिसमे सभी जाति के लोग और समुदाय एक साथ हो। इसकी पुष्टि हमे महामाया के इस कथन से होती है – "अगर तुम आर्यावर्त को बचाना चाहते हो, तो प्राण देने के लिए तत्पर हो जाओ। धर्म के लिए प्राण देना किसी एक जाति का पेशा नहीं है, वह मनुष्य–मात्र का उत्तम लक्ष्य है। अमृत के पुत्रों न्याय जहाँ से भी मिले, वहाँ से बलपूर्वक खींच लाओ।"[2] इस प्रकार द्विवेदी जी भारत की सम्पूर्ण मानव जाति को एकजुट होकर राष्ट्रीय आन्दोलन में कूदने का संदेश देते हैं।

महाराज हर्षवर्धन के राज्यकाल में जो विदेशी आक्रमण हुए, जिनके कारण सामान्य जनता को असहनीय कष्ट और अमानवीय यातनाएं भोगनी पड़ी इसका चित्रण द्विवेदी जी ने योग्य बिम्ब योजना से किया है। इस घटना का उल्लेख द्विवेदी जी ने समकालीन संदर्भों के आधार पर किया है। द्विवेदीकालीन समाज ब्रिटिश राजतन्त्र और द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण अनेक कष्ट व यातनाएं भोग रहा था। उपन्यास की कथा के माध्यम से उपन्यासकार यह बताना चाहता है कि विदेशी आक्रांताओं का खतरा भारतवर्ष हमेशा से ही झेलता आया है। इसी भयावय स्थिति को द्विवेदी जी ऐतिहासिक कथा के माध्यम से मानवीय धरातल पर रखते है। इतिहास के विकास और पतन में जन–साधारण की भूमिका कितनी महत्वपूर्ण है, इस दृष्टि को द्विवेदी जी ने उपन्यास के माध्यम से समाज के सामने रखकर, जन–साधारण को राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन की मुख्य धारा में शामिल करने तथा क्रांति का आह्वान करते हुए महामाया के माध्यम से कहते है– "आर्य सभासदों, उत्तरापथ के लाख–लाख नौजवान ने क्या कंकण –वलय धारण किया है? क्या वे वृद्धों और बालकों, बेटियों और बहुओं, देवमंदिरों और विहारों की रक्षा के लिए अपने प्राण नहीं दे सकते? क्या इस देश में स्वतंत्र संगठन–बुद्धि का विलोप हो गया है?"[3]

नेताजी सुभाषचंद्र बोस अंग्रेजों को भारत से बाहर निकालने के लिए विदेश में सहायता लेने गए थे लेकिन एक षड्यंत्र के तहत विमान दुर्घटना 1945 ई. में इनका निधन हो गया था। विदेश से इनको कोई सहायता न मिली उल्टा एक षड्यंत्र के कारण अपनी जान गवानी पड़ी और भारत माता ने अपना एक सच्चा सेवक खो दिया। कदाचित द्विवेदी जी ने इसी संदर्भ को ध्यान में रखते हुए परोक्ष रूप से उपन्यास में प्रकट किया है। उपन्यास में जब कृष्णवर्धन, लोरिकदेव और भृतवर्मा आदि हूणों के आक्रमण से बचाने के लिए किसी अन्य राजशक्ति विशेषकर तुवरमिलिंद की भूमिका को आवश्यक मानते हैं, लेकिन महामाया भैरवी इसका विरोध करती है। वह एक जनसभा को सम्बोधित करती हुई कहती है– "आप कहते हैं की उत्तरापथ के ब्राह्मण और श्रमण, वृद्ध और बालक, बेटियाँ और बहुएँ किसी प्रचंड नरपति – शक्ति की छाया पाए बिना नही बच सकती।"[4] क्या देश के विद्वानों में बुद्धि एवं विवेक का लोप हो गया है जो दूसरे राज्य से सहायता मांगनी पड़ रही है। वास्तव में महामाया के माध्यम से द्विवेदी जी ने यह प्रश्न भारत के विद्वानों और बुद्धिजनों से किया है। द्विवेदी जी का मानना है कि अगर भारत देश में रहने वाली सम्पूर्ण जाति और धर्म एकत्रित होकर भारत के स्वाधीनता आन्दोलन का संगठन करे तो ब्रिटिश राजतन्त्र को हिलाया जा सकता है। इसी तथ्य को द्विवेदी जी ने महामाया के माध्यम से उपन्यास में भारत की जनता के सामने रखा था।

इतिहास इस बात का गवाह है कि जब भी कोई देश अपनी गुलामी की बेड़ियों को काटने में सफल हुआ है, उसमें उस देश के समस्त प्रजाजनों का सहयोग रहा है। कोई भी राजा, सम्प्रदाय और संगठन देश की प्रजा के सहयोग के बिना कुछ भी नही कर सकता। इस तथ्य की पुष्टि हमें अनेक इतिहास ग्रन्थों से मिल जाती है। प्रजा में इतनी शक्ति होती है, वह चाहे तो बड़ी–बड़ी सरकारों व राजतन्त्रों का तख्ता पलट सकती है। इसका प्रमाण रूस एवं फ्रांस की क्रांतियाँ हैं, जो इतिहास के पन्नों में दर्ज है। भारत के स्वाधीनता आन्दोलन के तहत 'भारत छोड़ो आन्दोलन' भी इस बात की पुष्टि करता है, क्योंकि जब भारत की सम्पूर्ण प्रजा ने इस आन्दोलन में भाग लिया तो ब्रिटिश राजतन्त्र का तख्ता हिलने लगा और ब्रिटिश राजतन्त्र अनेक तरह के षड्यंत्र व कूटनीति का प्रयोग करने लगा। ब्रिटिश राजतन्त्र इस बात को जानता था कि अगर भारत की सम्पूर्ण जनता एक हो जाती है तो उनपर शासन करना मुश्किल है। इसलिए वह कूटनीति का प्रयोग भारत की जनता की एकता को तोड़ने लिए करता है जिससे भारत जैसा देश जो कि एक बहुत बड़ा विक्रय स्थल है उस पर अधिकार बना रह सके। द्विवेदी जी जैसे विद्वान् ब्रिटिश राजतन्त्र की इस कूटनीति से भली–भांति परिचित थे। इसलिए महामाया के माध्यम से कहते हैं– "अमृत के पुत्रो, मृत्यु का भय माया है, राजा से भय दुर्बल–चित का विकल्प है। प्रजा ने राजा की सृष्टि की है। संगठित होकर म्लेच्छवाहिनी का सामना करो।"[5] आगे फिर महामाया कहती है कि– "अमृत के पुत्रो, आर्य विरतीवज्र और आयुष्मती सुचरिता को बन्दी बनाना, लाख–लाख निरीह ब्राह्मणों और श्रमणों की रक्षा के लिए नहीं हुआ है, वह महाराजाधिराज या उनके किसी आश्रित सामंत की नाक बचाने के लिए हुआ है। यह पहला अन्याय नहीं है, अंतिम भी नहीं होगा। वह दुर्वह सम्पत्तिमद का चिराचरित रूप है।"[6] इस प्रकार महामाया के माध्यम से द्विवेदी जी अपने विचारों पर प्रकाश डालते हुए ब्रिटिश

शासन की कूटनीति को जनता के सामने रखकर इतिहास के माध्यम यह बताने की कोशिश कर रहे है कि ब्रिटिश राजतन्त्र जितनी भी योजना बनाता है वह सब अपने फायदे के लिए बना रहा है ।

1942 से लेकर 1946 के बीच शांति निकेतन में जब द्विवेदी जी यह उपन्यास लिख रहे थे तो अनेक राजनीतिक उथल–पुथल हुई। ब्रिटिश सरकार अनेक प्रकार से भारतीय जनता को प्रलोभन दे रही थी। इसको द्विवेदी जी ने उपन्यास में इस प्रकार व्यक्त किया है– "परन्तु सत्य कहने से मुझे कोई नहीं रोक सकता। आचार्य भर्वुपाद के पत्र के फलितार्थ पर आपने अगर विचार किया होता, तो ऐसा निर्णय नहीं करते है! वह पत्र पौरुषहीनता का नग्न प्रचारक है। वह पत्र आर्यावर्त की भावी पराजय का अग्रदूत है आपका निर्णय उसी मनोवृति का पोषक है।"[7] द्विवेदी जी ब्रिटिश राजतन्त्र की सारी चालाकियों को अच्छी प्रकार समझते थे। इसलिए मानवीय धरातल पर अपने विचारों को रखते हैं।

द्विवेदी जी को भारत के भविष्य की चिंता थी। अगर प्रस्तुत उपन्यास की समासगुम्फित भाषा शैली को छोड़कर अन्य पहलुओं पर विचार करते है तो इसमें द्विवेदी जी के राष्ट्रीय स्वाधीन आन्दोलन और भारत के भविष्य की चिंता साफ तौर पर दिखाई देती है। महामाया कहती है– "अमृत के पुत्रो, मैं भविष्य देख रही हूँ। राजा, महाराजा और सामंत स्वार्थ के गुलाम बनते जा रहे हैं। प्रजा भीरु और कायर होती जा रही है। विद्वान् और शीलवान नागरिकों की बुद्धि कुंठित होती जा रही है। धर्माचरण में इसलिए व्याघात उपस्थित हुआ है कि राजा अँधा है, प्रजा अंधी है और विद्वान् अंधे हैं।"[8] अपने इसी चिंता के चलते द्विवेदी जी भारत की जनता को अपने अधिकारों और न्याय के प्रति सचेत करते है। उनका मानना था कि अगर भारत की प्रजा को न्याय और अपने अधिकार चाहिए उसके लिए अपनी लड़ाई लड़नी होगी। अपनी इस लड़ाई के लिए किसी पर विश्वास और भरोसा नही करना चाहिए बल्कि स्वयं अपने राष्ट्र के लिए सचेत हो जाना चाहिए। राष्ट्र किसी एक राजा, नेता, पार्टी और संगठन की जागीर नहीं है। इसके लिए समस्त जनता को अपने देशहित व अधिकारों के लिए सोचना होगा। उपन्यास में महामाया कहती है कि– "अमृत के पुत्रो, न्याय पा जाने से समस्या समाहित नहीं हो जाती। दुध्द्रर्ष म्लेच्छवाहिनी का सामना राजपुत्रों की वेतन भोगी सेना नहीं कर सकेगी।"[9] आगे महामाया कहती है कि प्रजा को केवल राजा पर ही आश्रित नहीं रहना चाहिए। "राजाओ, राजपुत्रों और देवपुत्रों की आशा पर निश्चेष्ट बने रहने का निश्चित परिणाम पराभव है।"[10] यहाँ द्विवेदी जी का मानना है कि जनता को केवल राजा का भरोसा नही करना चाहिए क्योंकि इसका परिणाम बहुत बार सम्पूर्ण राष्ट्र को भुगतना पड़ता है और इतिहास भी इस तथ्य की गवाही देता है।

महामाया के कथनों के माध्यम से द्विवेदी जी तत्कालीन स्थिति को उजागर कर रहे है। द्विवेदी जी के कथनों से पता चलता है कि जनता समकालीन नेताओं पर ज्यादा भरोसा करती थी लेकिन स्वाधीनता आन्दोलन के लिये इतना पर्याप्त नही था क्योंकि वेतन भोगी नेताओं को कुछ सीमाएं जकड़ लेती थी और कुछ उनकी स्वार्थ वृति उनको भारत

माता के प्रति अपने कर्तव्य को पूरा न करने देती थी। इसकी अभिव्यक्ति उपन्यास में महामाया के कथनों में परोक्ष रूप से देख सकते है।

द्विवेदी जी राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन के प्रति कितने समर्पित थे, इसका पता हमे उपन्यास में महामाया के माध्यम से कहलवाए कथनों से पता चलता है। महामाया कहती है– "न्याय की प्रार्थना करना व्यर्थ है। अमृत के पुत्रो, धर्म की रक्षा अनुनय– विनय से नहीं होती, शास्त्र वाक्यों की संगति लगाने से नहीं होती। वह होती है अपने को मिटा देने से। न्याय के लिए प्राण देना सीखो, सत्य के लिए प्राण देना सीखो, धर्म के लिए प्राण देना सीखो। अमृत के पुत्रो, मृत्यु का भय माया है!"[11] ऐसे कथनों के माध्यम से द्विवेदी जी भारतीय जनमानस में राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन के लिए चेतना भरना चाहते हैं जिससे कि जनता बढ़–चढ़कर भाग ले। यहाँ द्विवेदी जी राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन को भारतीय जनमानस का धर्म तथा आजादी को न्याय के रूप में ले रहे है। महामाया के माध्यम से द्विवेदी जी मनुष्य मात्र को निर्भयता का संदेश देते हुए लिखते है– "सत्य के लिए किसी से भी नहीं डरना, राजा से भी नहीं, मन्त्र से भी नहीं, लोक से भी नहीं, वेद से भी नहीं।"[12] यह आदर्श वाक्य द्विवेदी जी के लिए स्वाधीन भारत का घोषणापत्र है।

द्विवेदी जी उपन्यास के 'अष्टादश उच्छ्वास' में स्वाधीनता आन्दोलन के लिए प्रखर अभिव्यक्ति भैरवियों के गान के माध्यम से इस प्रकार देते है– "आर्यावर्त के तरुणों, जीना सीखो, मरना सीखो, इतिहास से सीखना सीखो ।"[13] "अमृत के पुत्रो, आँधी की भांति बहो, तिनके की भांति म्लेच्छ–वाहिनी को उड़ा ले जाओ। संकट के भय से कातर होना तरुणाई का अपमान है।"[14] द्विवेदी जी यहॉ म्लेच्छ शब्द का सन्दर्भ अग्रेजों के लिए दे रहे है। काश्मीर से कन्याकुमारी तक सम्पूर्ण राष्ट्र को एक मानकर द्विवेदी जी भारतीय युवाओं में आन्दोलन के लिए बीज मन्त्र फूंकते हुए कहते है कि– "समस्त आर्यावर्त एक है–एक समाज, एक प्राण, एक धर्म। देश–रक्षा सबका धर्म है।"[15] द्विवेदी जी द्वारा ऐसे वाक्यों का प्रयोग करना, जब 1942 का भारत छोड़ो आन्दोलन पूर्णतः जोर–शोर से चल रहा था, उनके राष्ट्रीय सरोकारों को ही व्यक्त करता है। वस्तुतः यह उद्‌बोधन नाद उपन्यासकार का है जो ब्रिटिश शासनकाल में व्याप्त मतभेद, जड़ता, कायरता और निर्णयहीनता से व्यथित था। तत्कालीन परिवेश की स्थिति से पीड़ित लेखक का सारा आक्रोश महामाया भैरवी के माध्यम से व्यक्त हुआ है। उपन्यास में प्रमुख नारी पात्र महामाया भैरवी तथा अन्य भैरवियों का दल संगठित होकर समस्त देश में घूम–घूमकर युवा शक्ति को जगाती है। नारी शक्ति द्वारा देश में युवा शक्ति को संगठित करवाने के पीछे द्विवेदी जी का एक उद्देश्य है क्योंकि वे जानते थे पुरुष की प्रेरणा शक्ति हमेशा नारी रही है और इतिहास भी इस बात का साक्षी है।

इस उपन्यास में जो धार्मिक विद्वेष बताएं गए है, सातवीं सदी के भारत में जो साम्प्रदायिकता का तांडव नृत्य दिखाया गया है। यह एक प्रकार से उपनिवेशिक भारत का सत्य था जो केवल अंग्रेजो का विक्रय स्थल बनकर रह गया था, उसकी सच्चाई को भी बताता है। इसी भारत को विजय स्थल बनाना हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का बड़ा उद्देश्य था। इसलिए इस उपन्यास में राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन की सशक्त अभिव्यक्ति मिलती

है। यह अभिव्यक्ति सबसे ज्यादा महामाया के कथनों में मिलती है। इसमें द्विवेदी जी का यह भी मानना है कि देश की रक्षा व संस्कृति की रक्षा के लिए प्रजाजनों को सामने आना चाहिए। इस प्रकार पराधीनता और स्वाधीनता की आकांक्षा के बीच की जो संक्रमणकालीन रेखा है, उस रेखा पर ये "बाणभट्ट की आत्मकथा" उपन्यास की सर्जना हुई है। उपन्यास के गहन अध्ययन से यह कहा जा सकता है कि अपने सृजनात्मक उद्देश्य को लेकर यह तत्कालीन और समकालीन परिवेश में अपनी प्रासंगिकता रखने में सफल हुआ है।

सन्दर्भ सूची :–

1. द्विवेदी, आचार्य हजारी प्रसाद, बाणभट्ट की आत्मकथा, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली,इक्कीसवां संस्करण – 2020, पृ. सं. 194
2. वही, वही
3. वही, पृ. सं. 192
4. वही, वही
5. वही, पृ. सं. 193
6. वही
7. वही, पृ. सं. 192
8. वही, पृ. सं. 194
9. वही
10. वही
11. वही, पृ. सं. 193
12. वही, पृ. सं. 82
13. वही, पृ. सं. 253
14. वही
15. वही

हिंदी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना के स्वर का अनुशीलन

डॉ॰ राजेन्द्र कुमार सेन*

राष्ट्र केवल राजनीतिक सीमाओं से आबद्ध कोई भौगोलिक भू–खंड मात्र नहीं होता अपितु सामाजिक व सांस्कृतिक इकाई के रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी जनमानस की भावनाओं और संवेदनाओं का आकलन करने वाली कर्मभूमि होता है। विश्व की प्राचीनतम संस्कृति भारतभूमि सदियों से जनमानस की भावनाओं और संवेदनाओं की कर्मभूमि के रूप में जीवंत रही है। विश्व का प्राचीनतम ज्ञान, विज्ञान और संस्कार प्रदान करने वाली भारतभूमि मध्यकाल में विदेशी आक्रान्ताओं के आक्रमण का केंद्र रही जिसके परिणाम स्वरुप विदेशी संस्कृति का प्रवेश भारत में हुआ तथा उत्तर मध्यकाल तक यूरोपीय शक्तियों ने भारतभूमि पर अधिपत्य के लिए अपने षड्यंत्र तेज कर दिए जिसके परिणामस्वरुप 1757 ई. के पश्चात भारत धीरे–धीरे ब्रिटिश उपनिवेश बन गया। राष्ट्रीय अस्मिता का बोध और राष्ट्र मुक्ति का आन्दोलन सक्रिय हुआ और 15 अगस्त 1947 को भारत पूर्णतः स्वतंत्र हो गया। राष्ट्रीय चेतना के इस आन्दोलन में हिंदी साहित्य ने अपनी विशिष्ट भूमिका का निर्वहन किया। प्रस्तुत शोध पत्र में राष्ट्रीय चेतना का हिंदी साहित्य के माध्यम से अनुशीलन करने का प्रयास किया गया है।

कुंजी शब्द – राष्ट्र, अस्मिता, चेतना, उपनिवेश, मुक्ति, साहित्य

राष्ट्र एक विस्तृत संकल्पना होती है, जिसमें भौगोलिक, सामाजिक और राजनीतिक के साथ–साथ सांस्कृतिक आयाम भी सम्मिलित होते हैं। भारत एक राष्ट्र है, जिसकी राजनीतिक सीमाएं यद्यपि पुरातन समय की तुलना में कुछ सीमित हुई हैं परन्तु सांस्कृतिक सीमाओं का विस्तार हुआ है। प्राचीन समय से ही विदेशी आक्रमणों के कारण भारत के सांस्कृतिक मूल्यों में भी परिवर्तन आया है परन्तु सत्यम, शिवम् और सुन्दरम की मान्यता यथावत कायम रही है। विश्व में सर्वप्रथम राष्ट्र की संकल्पना का उदय आर्यव्रत के रूप में भारत से हुआ। मगध साम्राज्य के रूप में विश्व का प्रथम साम्राज्य भारत में विकसित हुआ वहीं दुनिया का पहला गणराज्य भी भारत में विकसित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। भारत की यह मूल्यवादी व्यवस्था इसे दुनिया में विशिष्ट राष्ट्र बनाती है। यूनानी, शक, कुषाण, हूण, तुर्क, मंगोल, मुग़ल आदि विदेशी आक्रान्ताओं ने भारत भूमि को समय–समय पर गहरे घाव दिए परन्तु वे भी अंततः इसी संस्कृति के विशाल फलक में समा गए। अपनी समृद्ध संस्कृति और सम्पदा के कारण भारत सदैव से पश्चिमी शक्तियों के लिए भी आकर्षण का केंद्र रहा है। वास्कोडिगामा द्वारा वैकल्पिक मार्ग द्वारा भारत पहुंचना और फिर पश्चिम के देशों में भारत से व्यापार के लिए आपसी प्रतिस्पर्धा भारत की इसी समृद्धि के चलते हुई। ब्रिटिश, पुर्तगाली और फ्रेंच शक्तियों के बीच भारत को लेकर भारतभूमि पर अनेक टकराव भी हुए और अंततः अंग्रेजी शक्तियां इस में विजयी हुई। भारत में एक शक्तिशाली केन्द्रीय

* सह आचार्य, हिंदी विभाग, पंजाब केन्द्रीय विश्वविद्यालय, बठिंडा
ईमेल : rajinderkumar-sen@gmail-com

शासन के अभाव का अंग्रेजों ने लाभ उठाया और ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारतीय राजाओं से एक–एक करके युद्ध और मैत्री संधि (सहायक संधि) के रूप में भारत भूमि में अपने पैर पसारने आरंभ कर दिए। 1757 ई. में प्लासी के युद्ध से यह विस्तार आरंभ हुआ और 1849 ई. में पंजाब विलय के साथ ही ईस्ट इण्डिया कंपनी ने भारत के एक बड़े भूभाग पर अपना कब्ज़ा कर लिया और शेष रियासतों को अपने अधीन संरक्षण देकर परोक्ष रूप से हस्तगत कर लिया। अंग्रेजों ने भारत के आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन में हस्तक्षेप करना आरंभ कर दिया।

प्लासी विजय के उपरांत अंग्रेजों ने धीरे–धीरे भारतीय रियासतों को एक–एक कर अपने अधीन करना आरंभ कर दिया था। लॉर्ड वैल्जली की सहायक संधि और लॉर्ड डलहौजी के दत्तक सिद्धांत के कारण भारतीय रियासतें अंग्रेजी शासन के अधिकार क्षेत्र में सम्मिलित होती गयी। इसके साथ–साथ अंग्रेजो ने भारत की कृषि व्यवस्था में परिवर्तन करके नवीन भू–राजस्व निति के द्वारा औपनिवेशिक शासन को मजबूत करने का कार्य किया तथा औपनिवेशिक शासन के हित में कम्पनी की प्रशसनिक नीतियां धीरे–धीरे असंतोष का कारण बनती गयी जिसकी परिणति 1857 की क्रांति के रूप में हुई। "1757 से 1857 के बीच ब्रिटिश नीतियों में कई बदलाव देखने को मिलते हैं। ददनी पद्धति 1770, तक संविदा पद्धति या खेत बंदी नियमन 1777 से 1780 के बीच, प्रत्यक्ष साधन पद्धति 1793 से 1814 के बाद मुक्त व्यापर प्रचलन में रही। ये सभी चरण यादगार घटनाएँ इसलिए हैं क्योंकि इन्हीं के कारण भारतीय प्रशासक वर्ग, व्यापारी, साहूकार, औद्योगिक कार्यशक्ति, उद्योग तथा शहरों का निष्ठुरतापूर्ण विनाश होता चला गया।"[1] यद्यपि इस क्रांति को केवल सैनिक विद्रोह कहकर अंग्रेजों इसके प्रभाव को कम करके दिखाने का प्रयास किया परन्तु भारतीय विद्वानों ने इस क्रांति के व्यापक विश्लेषण द्वारा इसके दूरगामी प्रभावों का उल्लेख किया है। इस क्रांति के विविध पहलुओं पर विस्तार से विश्लेषण करने के उपरांत प्रोफेसर विपिन चन्द्र इसके विषय में कहते हैं– "विदेशी शासन से राष्ट्र को मुक्त कराने की उनकी कोशिश एक देशभक्तिपूर्ण और इसलिए प्रगतिशील कार्रवाई थी। यदि किसी ऐतिहासिक घटना का महत्त्व उसकी तात्कालिक उपलब्धियों तक सीमित नहीं होता, तो 1857 का विद्रोह भी महज एक ऐतिहासिक ट्रैज्डी नहीं थी। अपनी विफलता में भी इसने एक महान उद्देश्य की पूर्ति की। यह उस राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन का प्रेरणास्रोत बन गया, जिसने वह हासिल कर दिखाया, जो विद्रोह हासिल नहीं कर सका।"[2] 1857 की क्रांति के नायकों में झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई का विशेष समरण किया जाता है। झाँसी का जबरन विलय झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई को पसंद नहीं आया उन्होंने लॉर्ड डलहौजी के वार्तालाप भी की परन्तु कोई परिणाम नहीं निकला और अंततः रानी लक्ष्मीबाई को अंग्रेजों के विरुद्ध तलवार उठानी पड़ी। इस क्रांति में उनकी भूमिका बहुत महत्पूर्ण और प्रेरणादायनी सिद्ध हुई। सुभद्राकुमारी चौहान की कविता 'झाँसी की रानी' के माध्यम से उनके महत्त्व को समझा जा सकता है–

चमक उठी सन सत्तावन में, वह तलवार पुरानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,

खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।[3]

1857 की क्रांति के अतिरिक्त अनेक अन्य विद्रोह भी हुए। बल्कि यह क्रांति उन विद्रोहों की परिणति भी कही जा सकती है। बंगाल की सत्ता हस्तगत करने के उपरांत अंग्रेजों ने भारतियों का उत्पीड़न आरम्भ कर दिया जिसके परिणाम स्वरुप लोगों में असंतोष बढ़ता गया और विद्रोह होने आरम्भ हो गए। इसके सन्दर्भ में विपिन चन्द्र लिखते हैं– "1763 से 1856 के बीच देश भर में अंग्रेजों के खिलाफ़ 40 से भी ज्यादा बड़े विद्रोह हुए। छोटे पैमाने पर होने विद्रोहों की तो कोई गिनती ही नहीं।"[4]

1858 ई. में कंपनी का राज्य समाप्त हो गया और भारत पर ब्रिटिश सरकार का प्रत्यक्ष नियंत्रण हो गया । अंग्रेजी सरकार ने भारतीय सम्पदा को लूटने के लिए अनेक नवीन कानून पास किए जिससे गंगा की संपदा को थेम्स में प्रवाहित किया जा सके। भारत के बुद्धिजीवियों ने इस मुद्दे का जोर–शोर से विरोध किया। अंग्रेजों ने भारतीयों को गोरों की तुलना में निकृष्ट सिद्ध करने का प्रयास किया और इस मामले में प्राच्यवादी और उपयोगितावादी इतिहास लेखन स्कूलों के विद्वानों ने अग्रिम भूमिका निभाई। भारत को सपेरों और नटों का देश घोषित करने का प्रयास किया गया। भारत की प्राचीन समृद्ध परम्परा को धूमिल करने का प्रयास किया। जहां और आर्थिक लूट जारी थी वहीं सांस्कृतिक दूषण भी जारी था। भारत को एक असभ्य और पिछड़ा देश बताकर यहां की गौरवशाली परंपरा को मिटाने का प्रयास किया गया। परन्तु राष्ट्रवादी स्कूल के विद्वानों ने जनमानस के समक्ष भारत के वास्तविक तस्वीर रखने का प्रयास किया जिसमें अतीत का गौरवगान और अंग्रेजों की लूट को उभारा गया।

विद्वानों के साथ–साथ हिंदी कवियों और साहित्यकारों ने भी अपनी भूमिका के महत्त्व को समझते हुए अपनी लेखनी के माध्यम से जनमानस को जागृत करने का कार्य किया। जहाँ एक और कवियों और साहित्यकारों ने अंग्रेजों के द्वारा किए जा रहे आर्थिक शोषण, सामाजिक और धार्मिक हस्तक्षेप, सांस्कृतिक प्रदूषण और राजनीतिक विभाजन के प्रति लोगों को अवगत करवाया वहीं दूसरी ओर भारत की गौरवशाली परंपरा से भी जनमानस को अवगत करवाने का कार्य किया। "साहित्य में वह शक्ति है जो व्यक्ति की चेतना को समूह तक पहुंचाकर सामूहिक राष्ट्रीय चेतना का स्वरुप विकसित करती है। इस चेतना को संजीवनी के रूप में साहित्य में ही संजोकर रखा जाता है, जो आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणादायी सिद्ध होती है। साहित्य से बढ़कर और कोई स्थान नहीं जहाँ राष्ट्रीय चेतना का प्रतिबिम्ब सुरक्षित रखा जा सके।"[5]

देश के बुद्धिजीवियों ने अंग्रेजों की शोषणपूर्ण नीतियों का खुलकर विरोध किया तथा तथ्यपरक विश्लेषण करते हुए जनमानस को इसके विषय में जागृत करने का प्रयास किया। "दादाभाई नौरोजी, महादेव गोविन्द रानाडे, रोमेश चन्द्र दत्त, जी.वी. जोशी, पी. सुब्रमण्यम अय्यर, गोपालकृष्ण गोखले आदि राष्ट्रवादी नेताओं ने तत्कालीन अर्थव्यवस्था का गहराई से अन्वेषण करके औपनिवेशिक शासन की नीतियों को देश की खस्ता हालत के लिए जिम्मेदार ठहराया। "भारत की गरीबी के कारणों की छानबीन के बाद इन नेताओं ने

उन कारणों और शक्तियों की पहचान की जिन्हें औपनिवेशिक शासन ने जन्म दिया था और अपने फायदे के लिए जिनका वह इस्तेमाल कर रहा था।"[6] आधुनिक हिंदी कविता के प्रथम सोपान में ही कवियों ने देश की दुर्दशा से अवगत करवाने का कार्य आरंभ कर दिया। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 'भारत दुर्दशा' नाटक के माध्यम से भारत की हो रही आर्थिक लूट को उभारा।

रोवहु सब मिलि आवहु भारत भाई
हा हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई।[7]

राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी श्भारत भारतीश में भारत की अंग्रेजों के द्वारा हो रही शोषणपूर्ण अवस्था पर लोगों को जागृत करने का कार्य किया –

हम कौन थे, क्या हो गए, और क्या होंगे अभी
आओ विचारें आज मिलकर, ये समस्याएँ सभी।[8]

अंग्रेजी शासन का मुख्य उद्देश्य भारत को आर्थिक रूप से पंगु बनाकर एक उपनिवेश के रूप में स्थायी गुलामी प्रदान करना था। इसके सम्बन्ध में कहा गया है "ब्रिटिश आर्थिक साम्राज्यवाद का उद्देश्य भारत की अर्थव्यवस्था को ब्रिटेन के अधीनस्थ करना था। भारत को कच्चे माल के पूरक देश का रूप देना, ब्रिटिश उत्पादनों की मंडी बनाना तथा विदेशी पूँजी के निवेश का क्षेत्र बनाना है।"[9] अतः कवियों और साहित्यकारों ने जनमानस के सम्मुख इस तथ्य को उजागर करके जागृति का शंखनाद किया है।

कवियों और साहित्यकारों के सम्मुख दूसरी बड़ी चुनौती अंग्रेजों द्वारा भारत की सांस्कृतिक विरासत के हो रहे दूषण को रोकना था। अंग्रेजों ने भारत की छवि को धूमिल करना आरंभ कर दिया था। प्राच्वादी और उपयोगितावादी इतिहास लेखकों ने पश्चिम के समक्ष भारत के लिए एक अजनबीपन का भाव प्रसारित करने का प्रयास किया। "साम्राज्यवादी इतिहास–लेखन की प्रवृति का मूल इस सर्वविदित अभिधारणा में दृष्टिगोचर होता है। यह अभिधारणा यूरोपीय लोगों को एशियाई लोगों की अपेक्षा श्रेष्ठ एवं उच्चतर उद्देश्यों से काम करने वाला ठहराती है तथा एशियाई लोगों को निहित स्वार्थ से काम करने वाला सिद्ध करती है।"[10]

भारतीय को अपने से कमतर सिद्ध करने के साथ–साथ औपनिवेशिक इतिहासकारों ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया भारतीय जनमानस अनेक प्रकार की हीन भावनाओं से ग्रस्त और असभ्य है जिसे केवल तानाशाही के द्वारा ही विकसित किया जा सकता है। इस विचारधारा के लेखकों में जे. एस. मिल. अग्रणी थे जिसका मानना था कि "भारतीय समाज जाति–पाति की संकीर्ण भावना, विशेषाधिकार एवं पूर्वाग्रहों से रुग्ण था और इसका विकास एक प्रबुद्ध तानाशाही के द्वारा ही संभव था।"[11]

इसके प्रतिकार में जहाँ राष्ट्रवादी लेखकों ने प्राचीन भारत के स्वर्णिम इतिहास का गौरवगान किया वहीं जयशंकर प्रसाद ने अपने ऐतिहासिक नाटकों के माध्यम से प्राचीन

भारत की समृद्ध संस्कृति और स्वर्णिम इतिहास को उभारा है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक के माध्यम से प्रसाद ने सिकंदर के समय के भारतीय परिवेश की समृद्ध संस्कृति को उभारा है–

अरुण यह मधुमय देश हमारा!
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।"[12]

कवियों और साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में भारतभूमि के प्रति प्रेम का भाव जगाया और जन्मभूमि को मातृभूमि की संज्ञा देकर इसके लिए जनमानस में श्रद्धाभाव जागृत किया वहीं भारत की समृद्ध सांस्कृतिक परंपरा और अतीत के गौरवगान द्वारा अपनी ऐतिहासिक अस्मिता का बोध भी करवाया।

नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुंदर है
सूर्य–चन्द्र युग–मुकुट मेखला रत्नाकर है
नदियाँ प्रेम–प्रवाह, फूल तारे मंडन हैं
बंदीजन खगवृन्द, शेषफन सिंहासन हैं
करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस वेश की
हे मातृभूमि ! तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की।"[13]

साम्राज्यवादी लेखकों भारत को एक राष्ट्र मानने की अवधारणा का खंडन करते हुए इसके इतिहास की मनमानी व्याख्या करते हुए अनेक भ्रामक अवधारणाओं को जन्म दिया। "साम्राज्यवादी इतिहासकार नहीं मानते थे कि भारत राष्ट्र बनने की प्रक्रिया में था। उनका मानना था कि जिसे भारत कहा जाता है वास्तव में वह धर्मों, जातियों, समुदायों और अलग–अलग हितों का समुच्चय भर था। इस तरह भारतीय राज्य व्यवस्थाओं के वर्गीकरण को ये इतिहासकार श्भारतीय राष्ट्र" अथवा 'भारतीय जाति' या सामाजिक वर्गों की अवधारणाओं के रूप में स्वीकार नहीं करते।"[14]

परन्तु राष्ट्रवादी लेखकों के साथ–साथ साहित्यकारों और कवियों ने भारत को एक राष्ट्र के रूप में स्थापित करते हुए भारत की राष्ट्रीय अस्मिता के भाव को प्रबल किया। कवियों ने भारत को दुनिया के सभी देशों से अधिक पुण्य भूमि के रूप में जनमानस के समक्ष प्रस्तुत किया–

भू–लोक का गौरव, प्रकृति का पुण्य–लीला–स्थल कहाँ?
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगाजल जहाँ
सम्पूर्ण देशों में अधिक किस देश का उत्कर्ष है?
उसका कि जो ऋषिभूमि है, वह कौन? भारतवर्ष है।।"[15]

कवियों ने अंग्रेजों की कटु नीतियों और अंग्रेजों के शोषण के विरुद्ध भी जनमानस को अवगत करवाया। 1919 में अंग्रेजों ने 'रौलेट एक्ट' के द्वारा भारतियों की आवाज को दबाने का प्रयास किया। आतंकवादी गतिविधियों को रोकने के नाम पर भारतीयों को दबाने वाले इस काले क़ानून के विरुद्ध पूरा देश उठ खड़ा हुआ। अखिल भारतीय स्तर पर

सत्याग्रह का प्रयोग 'रौलेट एक्ट' के विरुद्ध किया गया। इसी क्रम में 13 अप्रैल 1919 को अमृतसर के जलियांवाला बाग़ में एक जन सभा का आयोजन किया गया। "13 अप्रैल बैसाखी के दिन एक सभा के आयोजन के दौरान जनरल डायर ने अपने आदेश के उल्लंघन के तहत निहत्थी जनता पर बिना पूर्व चेतावनी के गोली चलाने का आदेश दे दिया। एक ही रास्ता व ऊँची दीवारें होने की वजह से हज़ारों लोग मारे गए। अंग्रेजी सरकार की वहशी क्रूरता ने देश को स्तब्ध कर दिया"[16] जलियावाला बाग़ के इस हत्याकांड से पूरे देश में जहाँ एक ओर शोक की लहर दौड़ गयी वहीं दूसरी ओर अंग्रेजों के प्रति घृणा का भाव भर गया। सुभद्राकुमार चौहान ने इस भाव को अपनी कविताओं में अभिव्यक्त किया है।

यहाँ कोकिला नहीं, काग हैं, शोर मचाते
काले काले कीट, भ्रमर का भ्रम उपजाते
कलियाँ भी अधखिली, मिली है कंटक–कुल से
वे पौधे, व पुष्प शुष्क हैं अथवा झुलसे।"[17]

अंग्रेजों के प्रति बढ़ते क्रोध के कारण देश के नवयुवकों में क्रांति के पथ पर चलने और देश के लिए बलिदान होने की भावना बलवती होने लगी। बंगभंग के उपरांत देश में क्रांतिकारी आन्दोलन प्रभावी होने लगा। कांग्रेस में भी गर्म विचारधारा का प्रभाव अधिक बढ़ने लगा। बाल गंगाधर तिलक इस क्रांतिकारी विचारधारा के पोषक थे। "तिलक एक संघर्षशील राजनेता थे। उन्होंने उस युग की राजनीति में अपने जीवन की आहुति दी, जबकि भारत में अंग्रेज लोग निरंकुश होकर शासन कर रहे थे। राजनीति में उनकी आस्था 'जैसे को तैसा' की नीति में थी।"[18] पंजाब और बंगाल इस क्रांतिकारी विचारधारा के गढ़ बनने लगे। पंजाब में करतार सिंह साराभा और बंगाल में खुदी राम बोस युवाओं के प्रेरणास्रोत बन गए। इनकी प्रेरणा से देश के नवयुवक अपने देश की आज़ादी के लिए जीवन बलिदान करने के लिए निकल पड़े। रामप्रसाद बिस्मिल, भगत सिंह, राजगुरु, सुखदेव, चंद्रशेखर आज़ाद लोगों के नायक बन गए। साहित्यकारों ने भी अपने नैतिक उत्तरदायित्व को समझते हुए जनमानस में देश हित बलिदान की भावना को सर्वोपरि मानते हुए अपने उदगार व्यक्त किए तथा अपने नायकों को श्रद्धासुमन अर्पित किए –

चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूंथा जाऊं
चाह नहीं प्रेमी–माला में बिंध प्यार को ललचाऊं
चाह नहीं सम्राटों के शव पर हे हरि डाला जाऊं
चाह नहीं देवों के शिर पर चढ़ूं भाग्य पर इठलाऊं
मुझे तोड़लेना वनमाली ! देना तुम उस पथ पर फेंक,
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जायें वीर अनेक।"[19]

हिंदी के छायावाद के प्रमुख जयशंकर प्रसाद ने भी स्वतंत्रता के इस अभियान को आगे बढ़ाने में अपना योगदान दिया। "अपने युग के अन्य साहित्यकारों की भांति प्रसाद के हृदय में भी भारत की पराधीनता को लेकर गहरी व्यथा थी। इससे मुक्ति के लिए उन्होंने

भारत की प्राचीन सभ्यता, संस्कृति और गौरव को मूलमंत्र समझा। मुख्यतः अपने नाटकों में उन्होंने भारतीय संस्कृति, समृद्धि, शक्ति और औदात्य का भास्वर चित्र उपस्थित कर भारतवासियों को राष्ट्रीयता का आधार दिया। इतिहास के प्रसिद्ध पात्रों को नवीन रूप देकर उनके और घटनाओं के माध्यम उन्होंने देशवासियों के अन्दर देशप्रेम को जगाया और उनको देश की स्वतंत्रता के लिए लड़ने को प्रेरित किया।"[20]

हिमाद्री तुंग श्रृंग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं प्रभा समुज्वला
स्वतंत्रता पुकारती
अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो
प्रस्तुत पुण्य पंथ है– बढ़े चलो, बढ़े चलो।"[21]

महात्मा गाँधी का भारतीय राजनीति में प्रवेश एक युगांतकारी घटना के रूप में देखा जा सकता है जिसने आजादी के आन्दोलन को जन आन्दोलन में परिवर्तित कर दिया। महात्मा गाँधी के सत्याग्रह का प्रयोग अत्यंत सफल रहा। उनके असहयोग आन्दोलन के प्रभाव से तो अंग्रेजों की नींद उड़कर रख दी थी। फ़रवरी 1922 को वायसराय द्वारा लन्दन लिखे गए एक पत्र में इसका स्पष्ट उल्लेख किया गया– "शहरों के निम्न वर्गों पर असहयोग आन्दोलन का बहुत बड़ा असर पड़ा है। कुछ क्षेत्रों में, ख़ासकर असम घाटी, संयुक्त प्रान्त, बिहार, उड़ीसा और बंगाल में किसानों पर असर पड़ा है। जहाँ तक पंजाब की बात है अकाली आन्दोलन देहात के सिखों के अन्दर तक पहुँच गया है। सारे देश के मुसलमानों का बड़ा हिस्सा कटु और क्रुद्ध है। ... संभावनाएं गंभीर हैं। ... पिछले दिनों जो अशांति हुई, उससे भी ज्यादा बड़ी अशांति का मुकाबला करने को भारत सरकार तैयार है, लेकिन वह इस सच्चाई को किसी भी तरह कम कर दिखाना नहीं चाहती कि परिस्थिति बड़ी चिंताजनक है।"[22]

महात्मा गाँधी के इस सत्याग्रह का प्रभाव साहित्य और साहित्यकारों पर भी पड़ा। "संयुक्त प्रान्त के बुद्धिजीवी वर्ग पर गांधीजी का कितना गहरा प्रभाव पड़ा था, यह प्रेमचंद के उपन्यासों में स्पष्ट दिखाई देता है। स्वयं प्रेमचंद ने फ़रवरी 1922 में गोरखपुर के एक सरकारी विद्यालय में अपने पद से त्यागपत्र दे दिया था ताकि वे राष्ट्रवादी अखबार 'आज' और काशी विद्यापीठ के लिए कार्य कर सकें।"[23] हिंदी कवियों ने भी सत्याग्रह के इस भाव को जनमानस तक पहुंचकर उन्हें राष्ट्र हित में जुड़ने के लिए प्रेरित किया–

राष्ट्रों में हो स्थान हमारा
हो प्रभाव सब कार्यों में
शांतिपूर्ण आन्दोलन करने
का बल आवे आर्यों में।"[24]

हिंदी कवियों में जयशंकर प्रसाद ने भारत के पौराणिक और ऐतिहासिक पात्रों को आधार बनाकर वर्तमान भारत की दुर्दशा को इंगित कर साहित्य लेखन किया जो जनमानस को जागृत करने के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। "चन्द्रगुप्त की वीरता और चाणक्य की कूटनीति ने तत्कालीन भारत को पराधीनता से मुक्ति दिलायी थी। प्रसाद चाणक्य और बुद्ध में गाँधी को देख रहे थे और उन्हें अपनी आज़ादी बहुत दूर नहीं दिखाई पड़ रही थी। यह आज़ादी न केवल राजनीतिक थी, वरन सांस्कृतिक और सामाजिक भी थी।"[25]

स्कंदगुप्त नाटक के माध्यम से देश की दुर्दशा को उजागर करके राष्ट्र को स्वतंत्र करवाने के लिए आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया है–

देश की दुर्दशा निहारोगे
डूबते को कभी उबारोगे
शरते ही रहे, न है कुछ अब
दांव पर आपको न हारोगे ।
कुछ करोगे कि बस सदा ही रो कर
दीन हो दैव को पुकारोगे
दीन जीवन बिता रहे अब तक
क्या हुए जा रहे, विचरोगे।"[26]

अंग्रेजों ने भारत में पनपती राष्ट्रीयता के भाव को भलीभांति भांप लिया था। उन्हें पता था कि राष्ट्रीयता के इस भाव को अधिक समय तक नहीं दबाया जा सकता। 1929 के कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वतंत्रता की मांग की गयी। इस अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए जवाहरलाल नेहरु ने कहा "आज हमारा एक लक्ष्य है, स्वाधीनता का लक्ष्य। उन्होंने कहा, हमारे लिए स्वाधीनता के माने हैं ब्रिटिश आधिपत्य और ब्रिटिश साम्राज्यवाद से पूर्ण स्वतंत्रता।"[27]

हिंदी कवियों ने भी खुलकर अपनी कविताओं और गीतों के माध्यम से पूर्ण स्वतंत्रता के इस विचार को प्रसारित करना जारी रखा–

(जनमेजय का नागयज्ञ)
क्या सुना नहीं कुछ, अभी पड़े सोते हो
क्यों निज स्वतंत्रता की लज्जा खोते हो।"[28]

हिंदी कवियों ने भारत भूमि को श्रद्धामयी भूमि के रूप में प्रस्तुत करते हुए इसकी गुण गाथा का गान प्रस्तुत करके अंग्रेजों के झूठे प्रोपेगेंडा को असफल कर दिया–

मैं भारत गुण–गौरव गाता !
श्रद्धा से उसके कण–कण को
उन्नत माथ नवाता।[29]

अतः राष्ट्रीय चेतना का भाव जागृत करने में हिंदी कवियों ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने राष्ट्रवादी इतिहास लेखकों के तथ्यों को अपनी कविताओं के द्वारा पुष्ट करते हुए उनकी स्थापनाओं को दृढ़ता प्रदान की वहीं दूसरी ओर अंग्रेजों के दुष्प्रचार को असफल बनाने का कार्य किया। इस कारण कवियों और साहित्यकारों को भी ब्रिटिश सरकार के दमन का सामना करना पड़ा। अनेक कवियों तथा लेखकों नाम बदल कर लिखना पड़ रहा था वहीं दूसरी ओर अनेक रचनाओं को अंग्रेजों द्वारा प्रतिबंधित कर दिया गया था। हिंदी लेखक प्रेमचंद की सोज़े वतन को जब्त कर लिया गया वहीं अनेक कविताएँ प्रतिबंधित हो गयी।

है देश को स्वाधीन करना ध्येय मम संसार में
तत्पर रहूँगा में सदा अंग्रेज दल संहार में
अन्याय का बदला चुकाना मुख्य मेरा धर्म है
मद दलन अत्याचारियों का मम प्रथम शुचिकर्म है।[30]

इस प्रकार यह कहना समीचीन प्रतीत होता है कि हिंदी साहित्यकारों ने इतिहास के प्रहरी के रूप में अपनी भूमिका का निर्वहन करते हुए अपने साहित्य द्वारा जागृति का शंखनाद किया तथा हिंदी कवियों ने राष्ट्रवादी भावना को जनमानस तक पहुंचाकर राष्ट्रव्यापी आंदोलन चलाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हिंदी कवियों का यह योगदान भारतीय इतिहास के पन्नों में स्वर्णिम अक्षरों में अंकित है, जो युवा पीढ़ी के लिए प्रेरणास्रोत रहेगा।

सन्दर्भ –

1. हिमांशु राय (सं.), भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय,दिल्ली, पृष्ठ 29
2. वही, पृष्ठ 10
3. डॉ. बी.के. कलासवा, हिंदी की राष्ट्रीय चेतना संपन्न कविताएँ, शांति प्रकाशन, रोहतक, पृष्ठ 15
4. बिपिन चंद्र, भारत का स्वतंत्रता संग्राम, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2010, पृष्ठ 14
5. डॉ. बी.के. कलासवा, हिंदी की राष्ट्रीय चेतना संपन्न कविताएँ, शांति प्रकाशन, रोहतक, पृष्ठ 31
6. बिपिन चंद्र, भारत का स्वतंत्रता संग्राम, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2010, पृष्ठ 67
7. रामजी यादव, भारतेंदु संचयन, भारतीय पुस्तक परिषद, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ 237
8. मैथिली शरणगुप्त, भारत–भारती, साहित्य सदन, चिरगांव, दशम संस्करण 1984, अतीत खंड, पृष्ठ 04
9. हिमांशु राय (सं.), भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृष्ठ 100

10. सचिन राय, भारतीय राष्ट्रवाद एवं इतिहास लेखन की प्रवृतियां, अनामिका पब्लिशर्स, दिल्ली, 2013, पृष्ठ 71
11. शेखअली बी, हिस्ट्री, इट्स थ्योरी एंड मेथड, मैकमिलन प्रकाशन, सेकंड एडिशन 1981, पृष्ठ 332
12. जयशंकर प्रसाद, कालजयी नाटक चन्द्रगुप्त, दिव्यम प्रकाशन, मुखर्जी नगर, दिल्ली, संस्करण 2014, पृष्ठ 58
13. डॉ. बी.के. कलासवा, हिंदी की राष्ट्रीय चेतना संपन्न कविताएँ, शांति प्रकाशन, रोहतक, पृष्ठ 47
14. सचिन राय, भारतीय राष्ट्रवाद एवं इतिहास लेखन की प्रवृतियां, अनामिका पब्लिशर्स, दिल्ली, 2013,पृष्ठ 81
15. डॉ. बी.के. कलासवा, हिंदी की राष्ट्रीय चेतना संपन्न कविताएँ, शांति प्रकाशन, रोहतक, पृष्ठ 48
16. हिमांशु राय (सं.), भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृष्ठ 129
17. डॉ. बी.के. कलासवा, हिंदी की राष्ट्रीय चेतना संपन्न कविताएँ, शांति प्रकाशन, रोहतक, पृष्ठ 95
18. डॉ. दिनेश मांडोत, बाल–लाल–पालरू उग्रवादी राष्ट्रवाद के प्रणेता, पॉइंट पब्लिकेशन, जयपुर 2018, पृष्ठ 54
19. डॉ. बी.के. कलासवा, हिंदी की राष्ट्रीय चेतना संपन्न कविताएँ, शांति प्रकाशन, रोहतक, पृष्ठ 71
20. शंभुनाथ, राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन और प्रसाद, नई किताब, दिल्ली, 2013, पृष्ठ 88
21. वही, पृष्ठ 229
22. अयोध्या सिंह, भारत का मुक्ति संग्राम, ग्रन्थ शिल्प प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 376–377
23. सुमित सरकार, आधुनिक भारत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2018, पृष्ठ 242
24. डॉ. बी.के. कलासवा, हिंदी की राष्ट्रीय चेतना संपन्न कविताएँ, शांति प्रकाशन, रोहतक, पृष्ठ 76
25. शंभुनाथ, राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन और प्रसाद, नई किताब, दिल्ली, 2013, पृष्ठ 226
26. वही, पृष्ठ 233
27. अयोध्या सिंह, भारत का मुक्ति संग्राम, ग्रन्थ शिल्पी, 2012, दिल्ली, पृष्ठ 486
28. शंभुनाथ, राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन और प्रसाद, नई किताब, दिल्ली, 2013, पृष्ठ 233
29. सुरेश सलिल, शमशेर चुनी हुई कविताएँ, मेधा बुक्स, शाहदरा दिल्ली, 2012, पृष्ठ 31
30. मधुलिका बेन पटेल, प्रतिबंधित हिंदी कविताएँ सात क्रांतिकारी जब्तशुदा काव्य संग्रह, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 46

राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना के अग्रदूतः गुरु तेग बहादुर

सुरिन्द्र सिंह*

भारतीय इतिहास में सिखों के नवम् गुरु तेग बहादुर का व्यक्तित्व और कृतित्व एक उज्ज्वल नक्षत्र की तरह दैदीप्यमान है। गुरु तेग बहादुर ऐसी महान् शख्सियत थे जिन्होंने मुगल साम्राज्य की नींव को हिला कर रख दिया था। हमारे लिए यह गर्व की बात है कि एक तो भारत वर्ष अपनी स्वतंत्रता की 75वीं वर्षगांठ जहां आजादी का अमृत महोत्सव के रूप में मना रहा है वहीं यह वर्ष गुरु तेग बहादुर हिंद रक्षक के 400वें आगमन वर्ष के रूप में भी मनाया जा रहा है जिन्होंने देश, धर्म और मानवीय अधिकारों की रक्षा हेतु आत्मबलिदान दिया। उस कालखंड में भारत के अधिकांश भू–भाग पर मुगलों ने कब्जा कर रखा था। भारत का जनमानस खास कर हिंदू जनता इनके अत्याचारों व जुर्मों से बुरी तरह त्रस्त थी। इनका सामना कर पाने की हिम्मत किसी में नहीं थी। ऐसे अत्याचारी मुगलों को चुनौती देने वाले और इनके जुर्मों से हिन्द की रक्षा कर उसे बचाने वाले केवल तो केवल हिंद की चादरगुरु तेग बहादुर ही थे। उनका व्यक्तित्व तप, त्याग और साधना का प्रतीक है और उनका कृतित्व शारीरिक और मानसिक शौर्य का अद्‌भुत उदाहरण है। इनके द्वारा रचित वाणी मनुष्य के व्यक्तित्व निर्माण का सबसे बड़ा प्रयोग रही है। गुरु जी अपनी वाणी द्वारा ऐसे समाज की रचना कर रहे थे जो सभी प्रकार की चिंताओं और भय से मुक्त होकर धर्म के मार्ग पर चले, मिलजुल कर रहे, निर्भय होकर देश सेवा करे और इसके लिए अपना जीवन समर्पित कर दे। उनकी पूरी जीवन शैली देश और धर्म रक्षा के लिए त्याग व संयम का मार्ग दिखाती है। उन्होंने सफलतापूर्वक अपने परिवार और समाज में उत्कृष्ट मानवीय मूल्यों का संचार किया। उनकादृष्टिकोण संकट काल में भी आशा एवं विश्वास का है। उन्होंने अपने मुख से उच्चारण कियाः

बलु होआ बंधन छुटे सभु किछु होत उपाइ।।[1]

मध्यकाल में गुरु जी ने अकेले मुगलों के खिलाफ आवाज बुलंद की थी। इस भारत देश पर मुगल जो अत्याचार कर रहे थे। उनका जो मनसूबा था कि हिन्दवासियो को जबरदस्ती कलमा पढ़ा मुसलमान बनाना उस पर गुरु जी ने पानी फेर दिया उनकी नींव को देश में से हिला डाला। आगे चलकर जिसको जड़ से उखाड़ फेंकने का महान् कार्य गुरु तेग बहादुर के इकलौते सुपुत्र जिनमें गुरु जी के संस्कार थे गुरु गोबिन्द सिंह और उनके चारों साहिबजादों ने भली भांति किया।

भारत देश शुरू से ही पराधीन रहा है। यहाँ कभी मुगल आए तो कभी अंग्रेज। जिस प्रकार मुगलो के खिलाफ गुरु जी ने आवाज बुलंद की। उसी प्रकार उनकी वाणी से प्रेरणा

* (शोधार्थी), हिंदी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय,चण्डीगढ।

लेकर आधुनिक युग में अंग्रेजों के खिलाफ युवा पीढ़ी ने भी आवाज बुलंद की थी और सन् 1947 में देश को स्वाधीन करवाया था। गुरु तेग बहादुर के पवित्र वचनों **बल होआ बंधन छुटे** जैसी पंक्ति से सचमुच देश में बल का संचार हुआ, बंधन टूट गए और मुक्ति का मार्ग खुला।

भक्तिकाल में साहित्य का मूल उद्देश्य जीवात्मा और परमात्मा तथा भक्त और भगवान् के संबंधों को उजागर करना था लेकिन उसमें भी राष्ट्रीयता का स्वर गूँजता सुनाई पड़ता था। गुरु तेग बहादुर की वाणी और उनका जीवन दोनों ही देश प्रेम, राष्ट्रीय चेतना और एकता की भावना के साथ–साथ त्याग और संयम का उपदेश देते है। उनके अनुसार अन्याय और अत्याचार से लड़ना ही धर्म है। गुरु गोबिन्द सिंह के इस कथन में कितनी महान् सच्चाई है कि–

तेग बहादर सी क्रिआ करी न किनहूं आन।

विश्वभर में शहीदों का इतिहास पढ़ने और सुनने को मिलेगा पर ऐसा अद्‌भुत इतिहास कहीं भी पढ़ने और सुनने को नहीं मिलेगा कि किसी महापुरुष ने किसी दूसरे धर्म की रक्षा हेतु अपना बलिदान दिया हो। ऐसा केवल तो केवल गुरु तेग बहादुर ने किया है। जब औरंगजेब ने यह ठान लिया था कि वो हिन्दुस्तान को दारुल–इस्लाम बना देगा। इसके लिए उसने हिन्दुस्तान के हिन्दुओं को जबरदस्ती कलमा पढ़ा उनका धर्म परिवर्तन करवाया, ऐसा न करने वालो पर खूब अत्याचार किए, उनके मंदिर गिरा उनकी जगह मस्जिदें बनाई जाने लगी, देवमूर्तिया तोड़ी जाने लगी, पूज्य महापुरुषों का अपमान किया जाने लगा। ऐसा सब देख कश्मीरी पंडित गुरु तेग बहादुर की शरण में आनंदपुर साहिब आए और उनके आगे रक्षा करने की गुहार लगायी। उन्होंने बताया कि औरंगजेब कहता है कि अगर कोई महापुरुष देश और धर्म की रक्षा हेतु आत्मबलिदान दे तभी वो उन्हें छोड़ेगा वर्ना उन्हें इस्लाम धारण करना ही पड़ेगा। ऐसे में प्रश्न था कि बलिदान देगा कौन? पास बैठे गुरु जी के नौ वर्षीय सुपुत्र गोबिन्द राय ने पिता से कहा कि इस समय देश में आपसे बड़ा महापुरुष कौन है? ऐसा सुन गुरु जी ने कश्मीरी पंडितो की मदद करने और उनके धर्म और देश की रक्षा हेतु आत्मबलिदान देने के लिए हां कर दी। औरंगजेब को ऐसा लगता था कि वो गुरु जी को भयभीत कर उन्हें भी इस्लाम धारण करने पर मजबूर कर देगा। फिर मजबूर होकर पूरे देश को इस्लाम मत धारण करना ही पड़ेगा। लेकिन उसका यह भ्रम था। गुरु जी को उनके तीन साथियों भाई दिआला, सतीदास और मतीदास समेत गिरफ्तार किया गया। उन पर बहुत अत्याचार किए गए। भाई दिआला जी को देग में गर्म पानी में उबाला गया, सतीदास और मतीदास को आरे से चीर दिया गया। उन्हें गुरु जी के सामने शहीद किया गया कठोर यातनाएं दी गयी तांकि गुरु जी भयभीत हो जाएं और इस्लाम कबूल कर लें। पर ऐसा नहीं हुआ। गुरुबाणी में कथन है कि योद्धा वही है जो युद्ध के मैदान में अपने देश और धर्म की खातिर युद्ध करे, पीठ ना दिखाए। वो दुश्मनों का पुर्जा–पुर्जा काट डाले शहीद हो जाए पर युद्ध के मैदान को छोड़ कर ना भागेः–

सूरा सो पहिचानीऐ जु लरै दीन के हेत।।
पुरजा पुरजा कटि मरै कबहू न छाडै खेतु।।[2]

गुरु जी को दिल्ली के चांदनी चौंक में उनका शीश काट कर शहीद कर दिया गया। पर उसी दिन से दिल्ली का सिंहासन हिल गया, मुगल साम्राज्य की नींव खोखली पड़ गयी। हिन्दुस्तान और हिन्दु धर्म की रक्षा, देश की एकता, अखंडता को बनाए रखने के लिए जो बलिदान गुरु जी ने दिया उसी के लिए उन्हें उसी दिन से हिन्द की चादर कहकर संबोधन किया जाने लगा। उनके इस बलिदान ने पूरे देश में एक नई चेतना पैदा कर दी। जिसने आगे चलकर सन् 1947 में देश को अंग्रेजो से मुक्त करवाने के लिए नवयुवकों में जागृति पैदा की। उनमें बलिदान देने का एक जज्बा और जुनून पैदा किया। गुरु गोबिन्द सिंह ने अपने पिता गुरु तेग बहादुर के बलिदान पर कहाः–

तिलक जंञू राखा प्रभ ताका।
कीनो बड़ो कलू महि साका।
साधनि हेति इती जिनि करी।
सीसु दीआ परु सी न उचरी।।13।।[3]

गुरु तेग बहादुर द्वारा रचित बाणी में प्रभु भक्ति और सांसारिक नश्वरता के साथ–साथ मानवीय मूल्यों की स्थापना पर भी बल दिया गया है। मध्यकाल का वो एक ऐसा दौर जब कोई भी व्यक्ति औरंगजेब मुगल बादशाह के खिलाफ आवाज बुलंद नहीं कर सकता ऐसे समय में आप द्वारा जो आत्मबलिदान दिया गया उसने समस्त भारतीय जनता में अन्याय के विरुद्ध लड़ने की शक्ति पैदा की। आप द्वारा दिया गया आत्मबलिदान केवल हिन्दू धर्म की रक्षा करने हेतु ही नहीं था बल्कि जुल्मी व अत्याचारी मुगलों से भारत देश की रक्षा करने के लिए था। तांकि आने वाले समय में लोगों को इन अत्याचारी मुगलों से मुक्ति मिले और सम्पूर्ण मानवता सुरक्षित रह सके।

ऐसा कर गुरु जी ने भारतीय इतिहास को एक नई दिशा प्रदान की। "नवम गुरु तेग बहादुर दार्शनिक कवि और महापुरुष भी थे। अपने युग की बेहूदगी तथा समाज की दहशत से अनवरत संघर्ष करते हुए वे देश और काल की आत्मोत्तीर्णता को सिद्ध कर गये। उनके दर्शन तथा शहादत दोनों ने ही भारतीय इतिहास को कांतदर्शी ऐसे मोड़ दिये कि उनके सुपुत्र दशमेश गुरु गोबिन्द सिंह ने भारतीय कृषक–विद्रोह को भी उजागर किया"।[4]

मुगल बादशाह औरंगजेब अहंकारी पुरुष था जो किसी की नहीं सुनता था उसे अपनी ताकत और सत्ता पर गर्व था। इन्हीं के बल पर वो हिन्द देश को केवल तो केवल

मुसलमानों का देश बना देना चाहता था। लेकिन गुरु जी ने अपने आत्मबलिदान द्वारा उसके अहंकार को तोड़ा और हिन्दू धर्म की रक्षा कर, देश में सभी धर्मों को एक समान बने रहने दिया। यही अहंकार औरंगजेब के पतन का कारण बना। गुरु जी ने औरंगजेब को अहंकार का त्याग करने के लिए कहा था लेकिन वो नहीं माना। गुरु जी द्वारा उच्चरित बाणी में अहंकार को त्यागने का संदेश पूरी मानवता को मिलता हैः–

जिहि प्रानी हउमै तजी करता रामु पछानि।।
कहु नानक वहु मुकति नरु इह मन साची मानु।।19।।[5]

औरंगजेब मुगल बादशाह ने गुरु जी को करामात दिखाने पर भी मजबूर किया पर वह नहीं माने। उन्होंने करामात को व्यर्थ कहा। वे अपने बचन पर अडिग रहे उन्होंने देश, धर्म की रक्षा हेतु आत्मबलिदान दे दिया पर अपनी प्रतिज्ञा का त्याग नहीं किया। उनके सुपुत्र गुरु गोबिन्द सिंह अपनी आत्मकथा बचित्र नाटक के पातशाही बरननं नामक पंचम अध्याय की अंतिम 13 पंक्तियों में अपने पिता की इस महान् शहादत का वर्णन करते हुए लिखते हैः–

धरम हेत साका जिनि कीआ।।
सीसु दीआ परु सिररु न दीआ।।14।।[6]

उनका यह महान बलिदान देख मातलोक में चारों ओर हाहाकार मच गयी और देवलोक में जय–जयकार होने लगीः–

दोहरा।।
ठीकरि फोरि दिलीसि सिरि प्रभ पुर कीआ पयान।।
तेग बहादर सी क्रिआ करी न किनहूं आन।।15।।
तेग बहादर के चलत भयो जगत को सोक।।
है है है सभ जग भयो जै जै जै सुरलोक।।16।।[7]

उनके द्वारा रचित वाणी में त्याग भावना सबसे ज्यादा देखने को मिलती है, जिसकी स्पष्ट झलक हम उनके जीवन फिर आगे उनके सुपुत्र गुरु गोबिन्द सिंह के जीवन में देख सकते है, जिन्होंने अपना सबकुछ पलभर में पूरे राष्ट्र व मानवता की भलाई व कल्याण हेतु त्याग दिया था। गुरु तेग बहादुर की वाणी में काम, क्रोध, लोभ, मोह व अहंकार के साथ–साथ माया के त्याग पर सबसे ज्यादा बल दिया गया है। इस माया के पंजों से कोई नहीं बच पाया और गुरु जी इसी को त्यागने पर बल देते दिखाई देते है तभी मानव अपने राष्ट्र व अन्य लोगों की भलाई हेतु सोच सकता है। जिसका स्पष्ट प्रमाण गुरु जी का अपना जीवन है। गुरु तेग बहादुर जी ने अपनी शहादत मानवीय अधिकारों की रक्षा हेतु दी थी। तभी जाकर वे हिंद की चादर बने थे। गुरु जी के व्यक्तित्व के संबंध

में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी लिखते है "गुरु तेग बहादुर एक बहुत वीर और साहसी पुरुष थे और अपने पिता की भांति इन्होंने भी पहले आखेटादि का अभ्यास किया था। किंतु यह सब कुछ होते हुए भी इनका हृदय अत्यंत कोमल था और ये स्वभावतः बड़े क्षमाशील थे"।[8] आपके पिता और दादा महान् योद्धा थे। आपके दादा गुरु अर्जुन देव ने भी धर्म और देशहित में अपनी कुर्बानी दी थी जो आज तक शहीदों के सिरताज नाम से जगत् प्रसिद्ध है। वहीं आपके पिता गुरु हरिगोबिन्द महान् योद्धा हुए है जिन्होंने देश और धर्म की रक्षा के लिए दो तलवारें मीरी और पीरी को धारण किया था और मुगलों के विरुद्ध युद्ध कर देश की रक्षा की थी। इस प्रकार दया, परोपकार, साहस, धैर्य, धर्महित बलिदान देना, शांतमय प्रवृति आदि चारित्रिक गुण विरासत में ही प्राप्त हो गये थे। गुरु तेग बहादुर महान् योद्धा एवं परम तेजस्वी थे। "तत्कालीन मुगल शासक शाहजहां के साथ युद्ध में मात्र चौदह वर्ष के बालक त्यागमल ने प्रशंसनीय वीरता का परिचय दिया। संभवतः इनके इसी सराहनीय शौर्य–प्रदर्शन के कारण ही उनका नाम त्यागमल से तेग बहादुर(तलवार का धनी) रख दिया गया।"[9] एक सशक्त विभूति सांस्कृतिक चेतना के स्वामी गुरु तेग बहादुर द्वारा रचित वाणी मनुष्य के मन में धैर्य, निडरता व आत्मविश्वास के गुण पैदा करती है और मानवीयता का पाठ पढ़ाती है। गुरु तेग बहादुर भारतीय चिंतनधारा और इतिहास की अप्रतिम विभूति है। आपका व्यक्तित्व बहुत महान् एवं विलक्षण था जिसकी महान् विशेषता देश भक्ति है। आपने मुगलों की धार्मिक नीति का खुलेआम विरोध किया। इन मुगलों की सत्ता को समाप्त करने के लिए आपने सिक्खों को संगठित किया। आपके व्यक्तित्व के विशेष गुणों त्याग, तप, बलिदान, करुणा, दया, साधना, भक्ति, वैराग्य, परदुखकातरता, निर्भयता, संयम एवं क्षमा आदि के कारण आप संतों के सिरताज कहे जा सकते है। इसीलिए तो आप विश्व–विख्यात हो गए। मुगलों के अत्याचारो से पीड़ित भारतीय जनता को आपकी वाणी आपके विचारों ने मानसिक शांति प्रदान की। आपने अपनी वाणी द्वारा जनमानस को ईश्वर–प्रेम, संयम, समभाव, सात्विक व्यवहार, मानवतावाद, अहंकार का त्याग, काम, क्रोध और दुर्जन की संगति से दूर रहने का संदेश दिया। उनकी वाणी से यह स्पष्ट पता चलता है कि उन्हें अपने तन, धन, परिवार का बिलकुल भी मोह नहीं था। उनका मोह केवल ईश्वर के प्रति था। इसीलिए उन्होंने अपना सबकुछ ईश्वर द्वारा बनाये लोगों की सेवा के लिए अर्पित कर दिया। उनके लिए सर्वप्रथम ईश्वर, देश–प्रेम, लोक–सेवा व धर्म सर्वप्रमुख थेः–

हरि बिनु तेरो को न सहाई।।
कां की मात पिता सुत बनिता को काहू को भाई।।रहाउ।।[10]

इस प्रकार गुरु जी ने अभय पद को प्राप्त किया जहाँ मृत्यु का भी भय नहीं रहता। तत्कालीन राजसत्ता ने उन्हें अपने दृढ़ संकल्प से विचलित करने के लिए विभिन्न प्रकार से भयभीत करने का प्रयास किया था पंरतु गुरु जी सांसारिक मोह और सब प्रकार के भय से ऊपर उठ चुके थे। ऐसी निर्भयता पर उन्होंने अपनी वाणी में बहुत ज्यादा बल

दिया है और यही आदर्श सिद्धांत उनके आत्म–बलिदान का मूलाधार है। वे ऐसे आदर्श समाज की स्थापना के पक्ष में थे जो भय रहित हो जहाँ ना कोई किसी से भय रखता हो और ना किसी को डराता हो। उनका यह सिद्धांत लोकमंगलकारी है। मानवीय अधिकारों का यह आदि सिद्धांत है और इसी सिद्धांत पर आगे चलकर गुरु गोबिन्द सिंह ने खालसा पंथ की सृजना की। एक राष्ट्रनायक, देश–प्रेमी व शहीद के मन में जो भाव होना चाहिए यह वही भाव है जिसका गुरु जी वर्णन करते हैः–

भै काहू कउ देत नहि नहि भै मानत आनि।।
कहु नानक सुन रे मना गिआनी ताहि बखानि।।[11]

अर्थात् मानवता का सच्चा पुजारी न किसी को भय देता है और न किसी के द्वारा दिये गये भय की परवाह ही करता है।

जब कभी दुनिया में मानवीय अधिकारों का जिक्र होता है तब गुरु तेग बहादुर की विश्व कल्याणकारी दृष्टि सामने दिखाई पड़ती है। मनुष्य के धार्मिक अधिकारों की रक्षा हेतु संपूर्ण संसार को गुरु जी से शिक्षा लेने की आवश्यकता है। केवल अपने नहीं बल्कि दूसरे धर्म के लोगों की रक्षा करना यह केवल किसी महाबली का काम है। अपने बलिदान से पूर्व ही गुरु जी ने यह सिद्ध कर दिया था कि यह संसार नाशमान है। वे इस संसार को मिट्टी समझते थेः–

जो नरु दुख मै दुखु नही मानै।
सुख सनेहु अरु भै नही जा कै कंचन माटी मानै।।रहाउ।।[12]

गुरु जी द्वारा दिया गया यह बलिदान मानवीय एकता व राष्ट्रीय चेतना को लोगों में जागृत करने हेतु **'करी न किनहू आन'** का प्रतिनिधित्व करता है।

'कवि सेनापति लिखते है कि श्री गुरु तेग बहादुर जी प्रकट हुए, पूरे संसार का पर्दा शरीर रूपी–चादर डाल कर ढका और दूसरे धर्म व कर्म की लाज रखी। कलियुग में ऐसा साका किया जो सदैव स्मर्णिय रहेगा। विश्वभर में गुरु जी की उपमा हुई। गुरु जी के पवित्र खून से सभी धर्मों की नींव मजबूत बनी। सभी ओर जय–जयकार हुई और सतिगुरु ने लाज रखी। गुरु जी ने कृपा कर तिलक जंञू और मंदिर को नष्ट होने से बचा लिया। धर्म हेतु गुरु जी ने शहादत प्राप्त की और उन्हीं का रूप श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी थे, जिन्होंने दुष्टो का नाश कर संतों का उद्धार किया। मुगलों से देश की रक्षा कर समदृ ष्टि से जगत् का उद्धार कियाः–

प्रगट भए गुरु तेग बहादर।
सगल स्रिसटि पै ढापी चादर।
करम धरम की जिनि पति राखी।

अटल करी कलयुग में साखी।
सगल स्रिसटि जा का जस भयो।
जिह ते सरब धरम बचयो।
तीन लोक में जै जै भई।
सतिगुरु पैज राखि इम लई।
तिलक जनेउ घरि धरमसाला।
अटल करी गुर भए दइआला।'[13]

गुरु जी ने मौत का भय नहीं माना। उनके अनुसार सूरवीर योद्धा वही है जो मृत्यु का भय अपने मन में ना रखे। एक राष्ट्र व मानवता प्रेमी उनके अनुसार वही हो सकता है जो सभी प्रकार की चिंताओ से मुक्त हो नाशमान जगत के मोह को त्याग देः–

चिंता ता की कीजीऐ जो अनहोनी होइ।।
इहु मारगु संसार को नानक थिरु नही कोइ।।
जो उपजिओ सो बिनसि है परो आजु कै कालि।।
नानक हरि गुन गाइ ले छाड़ि सगल जंजाल।।[14]

गुरु जी ने निर्भीक हो औरंगजेब का खूब विरोध किया। उसकी नीतियों को गलत बताया और उसके विरुद्ध अपनी आवाज बुलंद की। गुरु जी को पूर्ण भरोसा था कि उनकी यह कुर्बानी मानवीय ह्रदयो में ओर भी ज्यादा शक्ति भरेगी, जिससे वे केवल अपने अधिकारों की लड़ाई ही नहीं लड़ेंगे बल्कि दूनिया पर हो रहे जुर्म को रोकने के लिए बड़ी से बड़ी कुर्बानी भी दे सकेंगे।

आपकी बाणी से ज्ञात होता है कि आपमें वैराग्य की भावना बहुत ज्यादा थी अर्थात् आपका लोक अथवा परलोक दोनों से मोह नहीं था और यही उपदेश आपने लोगों को दिया। जब तक वैराग्य की भावना मन में प्रबल नहीं होती तब तक भक्ति भी असंभव है। चाहे फिर वो प्रभु भक्ति हो अथवा देश भक्ति। गुरु तेग बहादुर से पूर्व देश की परिस्थितियां विषम, दुखद तथा शोचनीय थी। ऐसे करुणाजनक व दुखद परिवेश में गुरु तेग बहादुर ने अपनी वाणी के द्वारा जन–जन में नवचेतना शक्ति का संचार करके उन्हें उत्साहित किया।

गुरु जी का कर्मण्य जीवन में विश्वास था लेकिन फल प्राप्ति के लिए कोई ललक नहीं दिखती थी। "भले ही मूलतः वे भक्त थे लेकिन मननशील गुरु जी के विचार और चिंतन की रागात्मकता का ऐसा मणिकंचन योग निभाया कि वे आदर्श बलिदानी, सच्चे गुरु, वीर सेनानी तथा भक्त एवं आदर्श मानव कहलाए। उनके अद्भुत बलिदान के कारण उन्हें हिन्द की चादर कहकर सम्मानित किया गया।"[15] उनका सम्पूर्ण जीवन तपस्या व त्याग का था। उनके जीवन का कोई भी ऐसा दिन नहीं था जो प्रभु की याद के बिना गुजरा हो। उन्होंने लोक कल्याण की भावना का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया। लोक जीवन का

विकास शालीनता व त्याग की भावना के बिना संभव नहीं। उनकी वाणी में लोकभावना का प्रबल परिचय मिलता है। गुरु जी मानवीय अधिकारों के रक्षक थे। गुरु जी की धार्मिक स्वतंत्रता के सिद्धांत के प्रति दिखाई दृढ़ता के बारे में भट्ट केशव लिखते हैः–

बांहि जिनहां दी पकडीऐ, सिर दीजै बांहि न छोडीऐ।।
तेग बहादर बोलिआ, धर पईऐ धरम न छोडीऐ।।[16]

आपकी इस कुर्बानी ने आने वाली युवा पीढ़ियो में देश, धर्म और मानवता के लिए मर–मिटने का एक नया जज्बा और जोश पैदा किया। राष्ट्र और राष्ट्रवासियो से प्रेम करने की प्रेरणा आपके जीवन से मिलती है। आपने अपने जीवन सुखों का त्याग मानवता की सेवा हेतु किया।

गुरु तेग बहादुर भारतीय साहित्य में न केवल अद्वितीय सन्त ही थे बल्कि एक विलक्षण काव्य प्रतिभा के स्वामी भी थे। आपने तप और त्याग के आधार पर अपने व्यक्तित्व को इस ढंग से उभारा कि कोई आपका बाल भी बांका न कर सका। आपने अपने अंदर निर्भयता और आत्मविश्वास जैसे गुणों को विकसित किया। "गुरु जी का आत्मबलिदान अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध एक चुनौती थी। उन्होंने आत्म–संयम और निर्भीकता से हर स्थिति का सामना किया। शासक की शक्ति उनकी आवाज को कभी नहीं दबा सकी। जिन महापुरुषों का जीवन उस प्रभु को समर्पित होता है और जिनके ह्रदय में सदैव उस अद्वैत सत्ता का प्रकाश विद्यमान रहता है वे अपने आदर्श से सुदृढ़ रहते है।

गुरु जी की कथनी और करनी एक समान थी। उन्होंने अपनी सतत्–साधना से जो अनुभव अर्जित किया। उसे अपनी वाणी द्वारा जन–जन तक पहुँचाया। गुरु जी के जीवन, व्यवहार और प्रचार का लक्ष्य था धर्म की स्थिरता, जिसे उन्होंने अपने प्राणों की आहुति देकर सत्य सिद्ध कर दिखाया और श्री गुरु तेग बहादुर जी का अमर बलिदान पूरे विश्व में अपनी उदाहरण आप है। उनका बलिदान किसी स्वार्थ हित न होकर पूरे राष्ट्र की रक्षा के लिए था। उनके इस बलिदान की गाथा को सुनकर स्वतः ही शीश उनके आगे श्रद्धा से झुक जाता है।"[17]

सिख धर्म में शहादत के संकल्प का एक अभ्यास दिखाई पड़ता है। जिसका विकास पीढ़ी दर पीढ़ी चलता है। गुरु नानक देश, धर्म व मानवता की रक्षा हेतु मर मिटने के जज्बे को कुछ इस प्रकार प्रस्तुत करते हैः–

जउ तउ प्रेम खेलण का चाउ।। सिरु धरि तली गली मेरी आउ।।
इतु मारगि पैरु धरीजै।। सिरु दीजै काणि न कीजै।।[18]

अर्थात् यह एक ऐसा अद्भुत मार्ग है। जहां पर अपना शीश अपने हाथ पर रख आना पड़ता है। एक कदम आगे बढ़ाने पर अब पीछे नहीं हटना होता। सिर तक की बाजी लगा देनी पड़ती है देश, धर्म और मानवता की रक्षा हेतु।

गुरु जी सामाजिक समानता के प्रबल समर्थक और पक्षधर थे। प्रत्येक मानव को स्वेच्छानुसार सामाजिक जीवन व्यतीत करने एवं धर्म के क्षेत्र में इच्छानुसार विश्वासो का अनुसरण करने की पूर्ण स्वतन्त्रता है। भारतवर्ष की बलिदान परम्परा में गुरु जी का जीवन बलिदान की दृष्टि से शीर्षस्थ स्थान का अधिकारी है। उनका बलिदान भारतवासियो के लिए स्वाभिमान और स्वतन्त्रता की रक्षा हेतु प्रेरणा स्त्रोत है। गुरु जी ने अपने ज्ञान, तप और भक्ति द्वारा अभय पद को प्राप्त किया। उनका जन्म ही मानवता की रक्षा के लिए हुआ था। मानवता की रक्षा के लिए जहां उन्होंने अपने एक हाथ में माला धारण की वहीं दूसरे हाथ में तलवार को धारण किया। मानवता के लिए घातक राजशक्ति का गुरु जी ने शस्त्र के बल पर मुकाबला किया। इतिहास साक्षी है कि वे निःस्वार्थ भाव से मानवता की रक्षा के लिए लड़े। "गुरु तेग बहादुर जी के जीवन की महत्वपूर्ण घटना उनका राजनीति से खुलेआम टक्कर लेना है। क्योंकि शासक में न्याय का अभाव था शासक वर्ग संकीर्ण साम्प्रदायिकता में ग्रस्त होकर मानवता के आदर्श को भूल रहा था। मानव समाज का उद्धार करना महापुरुषों के गुणों का लक्ष्य रहा है। गुरु तेग बहादुर जी का बलिदान मानवता के इतिहास की ऐसी घटना है जो सदैव स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगी"।[19] गुरु जी मानव जीवन को निकटता से जान चुके थे और वह उसके उद्धार का उपाय भी जान चुके थे कि–**जो दीसै सो सगल बिनासै जिउ बादर की छाई।।**[20] तभी तो वे इस शरीर का मोह त्याग चुके थे। इतना सब जान लेने वाला महापुरुष कभी भी लोभवश या भयभीत होकर शासक के आगे नहीं झुकेगा। गुरु जी कोरे ज्ञानी गुरु नहीं थे जो मंदिर, मस्जिद में बैठकर उपदेश या कीर्तन करते हो। वे तो सच्चे कर्मयोगी जनहितकारी सन्यासी ईश्वर के अनन्य आस्थावान भक्त और भक्ति मार्ग के सच्चे व्याख्याता थे। "वे सुकरात, ईसा, राम, कृष्ण और बुद्ध की भांति अपने हितों से ऊपर मानव हितों के पक्षधर और तदर्थ जीवन की बाजी लगा देने वाले महापुरुष थे"।[21]

गुरु जी द्वारा रचित वाणी की विचारधारा उनके विलक्षण व्यक्तित्व की द्योतक है। उनकी वाणी का गहराई से अध्ययन करने पर उनके जीवन के अनेक पक्ष उद्घाटित होते है जिनके आधार पर उन्हें सन्त, भक्त, वैरागी, धार्मिक नेता, महान् बलिदानी, त्यागी, परोपकारी और वीर सेनानी कहा जा सकता है। उन्होंने मानवता की रक्षा के लिए अपना सिर देने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं की। उनकी वाणी की एक खास विशेषता यह है कि हर बार पढ़ने पर उनके व्यक्तित्व का एक नया रूप हमारे सामने आता है। गुरु जी परदुखकातर सन्त थे। आपके द्वारा रचित वाणी से पता चलता है कि कैसा मनुष्य देश, धर्म और मानवता की सेवा कर सकता हैः–

आसा मनसा सगल तिआगै जग ते रहै निरासा।।[22]

निर्भीक प्राणी जो अपनी सभी इच्छाओं और मोह को त्याग दे केवल वही सेवा के लिए समर्पित हो सकता है। गुरु जी ने अपने व्यक्तिगत जीवन में धर्म और कर्म को प्रमुख स्थान दिया तथा मोह और तृष्णा को छोड़ा। उनके जीवन में बलिदान की कहानी से बढ़कर इसका और अच्छा प्रमाण क्या हो सकता है?

त्याग और धैर्य दो ऐसे गुण है जिनके द्वारा आत्मविजय प्राप्त की जा सकती है। गुरु तेग बहादुर ने इन दोनों गुणों को अपने जीवन में धारण किया। त्याग द्वारा जीवन में सेवा भावना जागृत होती है और मनुष्य अपने कर्तव्यपालन में तत्पर हो जाता है। धैर्य मनुष्य को दृढ़मन बनाता है। संकट झेलने की शक्ति धैर्य द्वारा आती है। विपत्ति में धैर्य रखना भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण सन्देश है। गुरु जी द्वारा अपने शिष्यों पर हो रहे अत्याचारों को आंखों के सामने देखना धैर्य का ही काम था। गुरु जी तनिक भी विचलित नहीं हुए। जिस सन्तोष और संयम के सहारे उन्होंने यह आत्मनियंत्रण और धैर्य विकसित किया था वह अद्‌भुत था। इन्हीं गुणों ने उन्हें प्रतिकूल परिस्थितियों में भी समभाव बनाये रखने की शक्ति दीः–

उसतति निंदा ए सम जा कै लोभु मोहु फुनि तैसा।।[23]

"गुरु जी की आन्तिरक चेतना का अनन्य गुण उनकी उदारता और स्पष्टवादिता है। उनकी उदारता उनकी सरलता, सादगी आपके आडम्बरहीन जीवन व्यतीत करने में परिलक्षित होती है। उनकी स्पष्टवादिता संदेशात्मक वाणी में तथा शासक वर्ग के प्रति न झुकने में अधिक मुखरित हुई है"।[24] गुरु जी ने केवल कहा ही नहीं बल्कि करके भी दिखाया है। "उन्होंने अपने आन्तरिक गुणों से ऐसी शक्ति पैदा कर ली थी जिसने उन्हें धर्मप्रवण महामानव बना दिया था। जिससे उनकी चेतना स्वतः सांस्कृत हो चुकी थी। इसी चेतना को इन्होंने जीवन और वाणी के माध्यम से प्रसारित किया है और इसी चेतना के बल पर वह अनायास ही धर्म की बलि वेदी पर चढ़ कर इस धर्मपरायण देश को अमर सन्देश व आलोक प्रदान कर गए"।[25]गुरु तेग बहादुर भारतीय इतिहास के उन अद्वितीय एवं अप्रतिम व्यक्तित्वों में से एक है जिन्होंने विभिन्न युगो में लोगों को सहयोग, विश्वास, दृढता, साहस एवं सच्चाई को अपनाकर जीवन मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी है। "उन्होंने तप, त्याग और संयम द्वारा भक्ति और ज्ञान का समन्वय करके समाज का नेतृत्व किया और जीवन यापन में नैतिक मार्ग पर चलने की चेतना एवं रूचि उत्पन्न की"।[26] मानव धर्म हेतु अपने जीवन की आहुति देने में गुरु जी ने तनिक भी संकोच नहीं किया। उनके द्वारा दिया गया यह महान् बलिदान मानव धर्म की स्वतन्त्रता के सिद्धांत की स्थापना हेतु था। यह किसी बाह्य अथवा आंतरिक शक्ति के प्रभाव अधीन नहीं। उन्होंने उदारता एवं सहनशीलता द्वारा विश्व व्याप्त भातृभाव हेतु अपने बलिदान का आदर्श प्रस्तुत किया। गुरु

जी ने मानव जाति में निर्भयता का तत्व लाने हेतु मोक्ष को निर्भय पद से अभिहित किया। उनकी वाणी में निर्भय पद भले ही लौकिक अर्थ में हो या अलौकिक अर्थ में मानव जीवन में उसका अत्यंत महत्व है। गुरु जी का दर्शन निर्भयता के संकल्प पर आधारित निर्भय व्यक्ति का आदर्श प्रस्तुत करता है।

गुरु जी मानवता के सच्चे पुजारी थे। वे सामाजिक तथा धार्मिक क्षेत्र में स्वेच्छानुसार मानव की पूर्ण स्वतन्त्रता के पक्षधर थे। समाजिक अन्याय के प्रबल विरोधी थे। "उन्होंने मानवता के दमन को खुलेआम ललकारा था और मानव को धार्मिक रूढियों, आडम्बरों, कट्टरता एवं राजनैतिक उत्पीड़नों से बचाने हेतु एक नया सन्देश दिया था। जो ज्ञानी अथवा महापुरुष की सही व्याख्या प्रस्तुत करने में सार्थक सिद्ध हुआ है"।[27] काश्मीर के ब्राह्मणों को गुरु जी ने अभय का दान दिया था। शरणागत की रक्षा के लिए निडरता का इससे पुष्ट प्रमाण क्या हो सकता है कि वह समूचे साम्राज्य के साथ निहत्थे टकरा गये और आत्मबलिदान तक दे डाला। यदि वे चाहते तो औरंगजेब के द्वारा दिए गए लालचों को अपना सकते थे लेकिन वे शासक के आतंक के आगे झुकने वाले न थे और न ही वे अपनी किसी आध्यात्मिक शक्ति के चमत्कार से दूसरों को भयभीत करना चाहते थे। उनका मानना था कि मनुष्य को कोई अधिकार नहीं कि किसी को डराये। "अत्याचारो से विमुख न हो कर उनके निवारण का उचित समाधान बताना उपास्य महापुरुषों के जीवन–चिन्ह हुआ करते है, जो गुरु जी के चरित्र में अनायास ही मिल जाते है"।[28]

आपके उज्ज्वल एवं प्रखर व्यक्तित्व ने समस्त भारतीय जनता को नवीन दिशा प्रदान की। गुरुवर ने धार्मिक आधार पर न केवल राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक जन जीवन को ही परिचालित किया अपितु हिन्दु धर्म एवं जाति में नवीन राष्ट्रीय चेतना का भी संचार किया। पश्चिम में जो कार्य वीर पुरुष शिवा जी कर रहे थे वही कार्य उत्तर में गुरु जी ने और भी सुदृढ़ ढंग से किया। गुरु जी ने संपूर्ण भारतीय जनता में नई जीवन्त शक्ति का संचार किया। आपने आत्मबलिदान देकर यह सिद्ध कर दिया कि धर्म की रक्षा करके अन्याय और अत्याचार से टक्कर लेना मनुष्य का सर्वोपरि कर्तव्य है।

सत्य, धर्म, न्याय, निर्भयता, सदाचार तथा मानव मूल्यों की रक्षा हेतु दिया गया यह बलिदान विश्व के इतिहास में सदैव गुरु जी की याद दिलाता रहेगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूचीः–

1. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, सलोक महला 9, पृ॰ 1429
2. वही, सलोक कबीर, पृ॰ 1105
3. ज्ञानी नरैण सिंह(टीकाकार), बचित्र नाटक सटीक, अमृतसर, भाई चतर सिंह जीवन सिंह बाजार माई सेवा प्रकाशक, 2007, पृ॰ 94

4. रमेश कुंतल मेघ (संपा॰), नवम गुरु पर बारह निबन्ध, अमृतसरः गुरु नानक देव विश्वविद्यालय 1982, पृ॰ भूमिका से
5. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, सलोक महला 9, पृ॰ 1427
6. ज्ञानी नरैण सिंह(टीकाकार), बचित्र नाटक सटीक, अमृतसर, भाई चतर सिंह जीवन सिंह बाजार माई सेवा प्रकाशक, 2007, पृ॰ 94
7. ज्ञानी नरैण सिंह(टीकाकार), बचित्र नाटक सटीक, अमृतसर, भाई चतर सिंह जीवन सिंह बाजार माई सेवा प्रकाशक, 2007, पृ॰ 95
8. परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत–परंपरा, इलाहाबाद, लोक भारती प्रकाशन, 2019, पृ॰ 232
9. डॉ॰ अशोक सभ्रवाल, आस्था और विचार(खण्ड–1), चण्डीगढ़,न्यू एरा प्रकाशन, 2014, पृ॰ 12
10. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, राग सारंग महला 9, पृ॰ 1231
11. वही, सलोक महला 9, पृ॰ 1427
12. वही, सोरठि महला 9, पृ॰ 633
13. https://www.punjabijagran.com
14. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, सलोक महला 9, पृ॰ 1429
15. डॉ॰ अशोक सभ्रवाल, आस्था और विचार(खण्ड–1), चण्डीगढ़,न्यू एरा प्रकाशन, 2014, पृ॰ 16
16. क्रिपाल सिंह चंदन, गुरमीत सिंह कुराली, जीवन गाथा ते उपदेश गुरु तेग बहादर जी, लुधियाना, सिख मिशनरी कॉलेज, पृ॰ 6
17. डॉ॰ निर्मल कौशिक, कामायनी कौशिक, हिन्द रक्षक श्री गुरु तेग बहादुर जी, फिरोजपुर, कादम्बरी प्रकाशन,1993, पृ॰ 8
18. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, महला 1, पृ॰ 1412
19. डॉ॰ निर्मल कौशिक, कामायनी कौशिक, हिन्द रक्षक श्री गुरु तेग बहादुर जी, फिरोजपुर, कादम्बरी प्रकाशन, 1993, पृ॰ 12
20. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, राग गउडी महला 9, पृ॰ 219
21. डॉ॰ निर्मल कौशिक, कामायनी कौशिक, हिन्द रक्षक श्री गुरु तेग बहादुर जी, फिरोजपुर, कादम्बरी प्रकाशन, 1993, पृ॰ 14
22. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, सोरठि महला 9, पृ॰ 633
23. वही, गउड़ी महला 9, पृ॰ 220

24. डॉ॰ निर्मल कौशिक, कामायनी कौशिक, हिन्द रक्षक श्री गुरु तेग बहादुर जी, फिरोजपुर, कादम्बरी प्रकाशन, 1993, पृ॰ 29
25. डॉ॰ निर्मल कौशिक, कामायनी कौशिक, हिन्द रक्षक श्री गुरु तेग बहादुर जी, फिरोजपुर, कादम्बरी प्रकाशन, 1993, पृ॰ 29
26. डॉ॰ निर्मल कौशिक, कामायनी कौशिक, हिन्द रक्षक श्री गुरु तेग बहादुर जी, फिरोजपुर, कादम्बरी प्रकाशन, 1993, पृ॰ 30
27. डॉ॰ निर्मल कौशिक, कामायनी कौशिक, हिन्द रक्षक श्री गुरु तेग बहादुर जी, फिरोजपुर, कादम्बरी प्रकाशन, 1993, पृ॰ 31
28. डॉ॰ शमीर सिंह, गुरु तेग बहादुर जीः जीवन, काव्य व चिन्तन, अमृतसर, आर्थज फोरम, 1988, पृ॰ 48

रीतिकालीन कवि भूषण के वीरपरक काव्य में राष्ट्रीयता का स्वर

स्वर्ण कौर*

भाषा के साहित्य में वीरता एवं राष्ट्रीयता की भावना सदैव विद्यमान रही है। हिन्दी भाषा के साहित्य की प्रत्येक विद्या में वीरता एवं राष्ट्रीय चेतना का स्वर, एक पावन सरिता की भांति प्रवाहित होता रहा है। डॉ॰ बहादुर सिंह अपने हिंदी साहित्य के इतिहास में लिखते हैं, ''आदिकालीन रासो काव्यों में जिस प्रकार श्रृंगार एवं वीर रस का परिपाक गर्वोक्तियों एवं अतिश्योक्तियों में हुआ, उसकी परम्परा भक्तिकाल से आगे आ कर रीतिकाल में भी दिखाई पडी। हाँ, रीतिकालीन वीर रसात्मक काव्य एवं आदिकालीन रासो वीर रसात्मक काव्य में अंतर यह हुआ कि रीतिकालीन काव्य में वीरता राष्ट्रीय भावना की एकता को लेकर प्रक्ट हुई।''[1] इस प्रकार हिन्दी साहित्य में वीरता एवं राष्ट्रीयता का पौधा आदिकाल से ही अंकुरित हो गया था, जो भक्तिकाल, रीतिकाल में अपनी जड़ों को परिपक्व कर आधुनिक काल में एक विशाल वृक्ष का रूप धारण कर गया। लेकिन रीतिकालिन काव्य में राष्ट्रीयता स्वरूप दूसरे कालों से अलग था। इस काल की राष्ट्रीयता के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि वह भौगोलिक दृष्टि से वीरगाथा काल की अपेक्षा अधिक परिधि लिए हुए थी, किन्तु उसमें भक्तिकालीन समन्वय की भावना का अभाव था, अतः इसे व्यापक राष्ट्रीयता न कह कर हिन्दू राष्ट्रीय चेतना कहना अधिक उपयुक्त होगा। इस काल के कवियों की राष्ट्रीयता की भावना जातीय गौरव तक ही सीमित रह गई। क्योंकि उस समय भारत पर छोटे–छोटे राजाओं का राज्य था। जो अपने अधीन भू–भाग को ही राष्ट्र की संज्ञा देते थे। और ''यह वह समय था जब मुसलमानी शासन के विरुद्ध मराठे हिन्दू और सिक्ख राजा विद्रोह करने लगे थे। मुसलमानों के अत्याचारों का विरोध करने के लिए दक्षिण में शिवाजी, पंजाब में गुरू गोबिंद सिंह, राजस्थान में महाराणा राज सिंह और जसवंत सिंह का सेनापति दूर्गादास तथा मध्यप्रदेश में छत्रसाल जैसे वीर उठ खड़े हुए।''[2]

ऐसी परिस्थितियों में जब रीतिकालीन कवियों के काव्य में श्रृंगार चित्रण और स्वयं को आचार्य बनाने के उद्देश्य से भांति–भांति के लक्षण ग्रंथों की रचना कर रहे थे ऐसे समय में वीरता और राष्ट्रीयता का चित्रण करने वाला कवि सच्चे हृदय से राष्ट्रभक्त ही होगा। डॉ॰ उषा यादव के मतानुसार रीतिकाल के कवि राजाओं और सामन्तों के आश्रय में रहने के कारण उनके मनोरंजन हेतु काव्य रचना करते थे। किन्तु इस काल में मुगलों की कट्टर सांप्रदायिकता से जो परिस्थितियां उत्पन्न हुई, उन्होंने कुछ कवियों को वीरकाव्य के सृजन की प्रेरणा दी। इस लिए इस समय श्रृंगार काव्य के साथ–साथ वीर काव्य की भी रचना हुई।''[3]

* सहायक प्रध्यापक हिन्दी, गुरूनानक कॉलेज, श्री मुक्तसर साहिब

रीतिकालीन कवियों में से हिन्दू जाति में जनसाधारण में राष्ट्रीय चेतना को पैदा करने श्रेय प्रमुख रूप से कवि भूषण को जाता हैं। यदि राष्ट्रीयता शब्द के विषय में बात करें तो राष्ट्र के प्रति श्रद्धा, प्रेम और आस्था तथा उसकी समृद्धि एवं प्रगति की कामना ही राष्ट्रीयता है। बाबू गुलाबराय के अनुसार, "एक सम्मिलित राजनीतिक ध्येय में बंधे हुए किसी विशिष्ट भौगोलिक इकाई के जन–समुदाय के परस्पर सहयोग और उन्नति की अभिलाषा से प्रेरित उस भू–भाग के लिए प्रेम और गर्व की भावना को राष्ट्रीयता कहते हैं।"[4] अतः कवि भूषण का समपूर्ण काव्य शिवाजी एवं छत्रसाल जैसे वीर योद्धाओं को समर्पित है, जिन्होंने धर्म, जाति, भारतीय संस्कृति एवं अपने देश की स्वतंत्रता की रक्षा हेतु मुगलों से लोहा लिया। उनके नायक शिवाजी एवं छत्रसाल हिन्दू धर्म के संरक्षक, अन्याय का नाश करने वाले एवं हिन्दू जाति के गौरव थे और इन नायकों के साथ सम्पूर्ण हिन्दू जाति की भावनाएँ संबद्ध थी।

भूषण ने शिवराज भूषण, छत्रसाल दशक, शिवा बावनी एवं कुछ फुटकल वीर कव्य की रचना की है। शिवराज भूषण एक अलंकार ग्रंथ है। जिसमें अलंकारों के लक्षणों का प्रतिपादन करते हुए शिवाजी की प्रशंसा में कुछ छंद प्रस्तुत किये हैं। छत्रसाल दशक में उनके केवल दस पद मिलते हैं, जिनमें महाराजा छत्रसाल के पराक्रम एवं उनकी तलवार की प्रशंसा की गई है। एक जनश्रुति के अनुसार कवि भूषण अपने कवित शिवाजी को सुनाना चाहते थे। एक दिन शिवाजी वेश बदल कर इनसे मिलने आए और कवित सुनाने का आग्रह किया। तभी भूषण ने छत्रपति शिवाजी के गुणगान करते हुए कुछ पंक्तियां सुनाने लगे–भूषण ने छत्रपति शिवाजी को अपने 52 छंद सुनाए। शिवाजी इन छंदों को सुनकर भूषण से अत्यंत प्रसन्न हुए और भूषण को 52 गांव, 52 हाथी भेंट किए। शिवाबावनी में भूषण द्वारा रचित इन्ही 52 छंदों को संपादित किया गया है। भूषण 'शिवराज भूषण'' में शिवाजी की कीर्ति और दानवीरता का वर्णन करते हुए इस विषय में लिखते हैं–

एकै कहै मार मार समहरि समर एकै,
म्लेच्छ गिरे मार बीच वेसम्हार तन के।
कुंडन के ऊपर कड़ाके उठै ठौर–ठौर,
जीरन के ऊपर खड़ाके खड़गन के।
आगे आगे तरुन तरायले चलत चले,
तिनके अमोद मंद मंद मोद सकसै।
अडदार बड़े गड़दारण की हांके सुनि,
अड़े गैर–गैर माहिं रोस रस अकसै।।
तुंडनाय सुनि गरजत गुंजरत भौर,
भूपन भनत तेऊ महामद छकसै।
कीरति के काज महाराज सिवराज सब,
ऐसे गजराज कविराजन को वकसै।
शिवराज भूषण

भूषण को कुछ लोग केवल जातीय कवि (National Poet) मानते हैं, क्योंकि उन्होंने हिंदू–पति शिवाजी की प्रशंसा और मुसलमानों की निंदा की है। किन्तु हमारे विचार से कवि भूषण को 'राष्ट्रीय कवि' मानना उचित होगा।[5] सत्य तो यह है कि भूषण किसी धर्म अथवा जाति के विरोधी नहीं थें वह तो केवल उस अन्याय और अत्याचार के विरोधी थे, जो मुगल बादशाह द्वारा जन–मानस पर किया जा रहा था। यदि भूषण की दृष्टि जातीय होती तो वह अपने पिता को कैद करने वाले ओर भाईओं के साथ छल करने वाले औरंगजेब को यह ना कहते कि उसके घृणित और जघन्य कृत्यों से उसकी कीर्ति कलंकित हुई है। –

'किबले के ठौर बाप बादशाह शाहजहाँ,
ताको कैद कीन्हों मानो मक्के आग लगाई है।'
बडो भाई दारा वाको पकरिकै मारि डारियो,
मेहरहू नाहिं मां को जायो सगो भाई है।।
खाइकै कसम त्यों मुराद को मनाइ लियो,
फेरि ताहू साथ अति कीन्हीं तै ठगाई है।
भूषण सुकवि कहे, सुनो नवरंगजेब,
ऐसे ही अनीत करि पातसाही पाई है।।
भूषण ग्रथावली (फुटकल)

इस प्रकार भूषण को सम्प्रदायवादी कहना अनुचित हैं। औरंगजेब का विरोध उन्होंने इसलिए नहीं किया कि वह मुसलमान था अपितु इसलिए कि वह निर्दयी, अत्याचारी एवं दुराचारी था। जिससे उसका अपना परिवार भी नहीं बच सका। अतः जो शक्ति देशोन्नति में बाधक थी उसका विरोध करना भूषण जैसे राष्ट्रभक्त कवि का लक्ष्य था। अगर उसने औरंगजेब की विषैली नीति के कारण उसे मलेच्छ जैसे निंदनीय शब्द का प्रयोग किया। वहीं बाबर और अकबर की प्रशंसा भी की। जो उसकी सामान्य राष्ट्रीय भावनाओं को पुष्ट करती है। औरंगजेब के प्रति उनका जातीय वैमनस्य न हो कर शासक के रूप में उसकी अनीतियों के विरुद्ध है। यदि वह जातीय होते तो औरंगजेब के पूर्वजो को भी वैसे ही खरी खोटी सुनाते जैसे औरंगजेब को सुनाई। भूषण लिखते हैं–

1. दौलत दिली की पाय कहाए आलमगीर,
   बब्बर अकबर के बिरद बिसारे तै।
2. बब्बर अकबर हिमायुँ हद बाँधि गए,
   हिंदूओं तुरक की कुरान–वेद–ढब की
   भूषण ग्रंथावली

वीर काव्य के उच्च प्रस्तोता भूषण राष्ट्रीय चेतना के प्रतीक कवि रहे हैं। उन्होंने अपने आश्रयदाताओं शिवाजी एवं छत्रसाल की वीरता का ऐसा चमत्कारिक वर्णन किया, जिसे पढ़, सुन कर कायर के हृदय में वीरता और राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न होना स्वाभाविक था। इसी राष्ट्रीयता की भावना का सम्मान करते हुए छत्रसाल ने भूषण की

पालकी को कंधा लगाया। कोई भी राजा किसी कवि को धन, सम्पत्ति तो दे सकता है, किन्तु पालकी को कंधा लगाने का कार्य कोई राष्ट्रभक्त राजा ही कर सकता है। यह असल में यह भूषण के उस राष्ट्रीय काव्य का असाधारण सम्मान था, जो वीरों में इतना उत्साह भर देता था कि उनके लिए मातृभूमि हेतु बलिदान देने हेतु तत्पर हो जाते थे। शिवा बावनी में भूषण ने अपने आश्रयदाताओं की वीरता का अतिश्योक्ति वर्णन सेना एवं वीरों के शौर्य का निरूपण बड़े ही संजीव ढ़ंग से किया। वीर शिवाजी की विशाल सेना का चमत्कारी वर्णन में शिवाजी की युद्ध के लिए प्रस्थान करती सजी हुई सेना, ढ़ोल, नगारों की गूंज, हाथियों की मस्त चाल, पैदल सैनिकों के पैरों की धूल के कारण सूर्य भी तारे के भांति दिखाई देना, अर्थात सम्पूर्ण वातावरण धूल–धूसरित हो गया। भूषण द्वारा किया गया सेना का अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन मन मस्तिष्क व्यापक प्रभाव डालता है। जिसे पढ़–सुन कर निर्बल मनुष्य भी देशोदार के लिए उठ खड़ा होगा।

''साजि चतुरंग वीर रंग में तुरंग चढ़ि,
सरजा शिवाजी जंग जीतन चलत है।
'भूषण' भनत नाद बिहद नागारन के,
नदी–नदी मद गैवरन के रलत है।।
ऐल–फैल खैल–भैल खलक में गैल–गैल,
गन की ठैल–पैल सैल उसरत है।
तरा सो तरनि धूरि धारा में लगत जिमि,
थारा पर पारा पारावार यों हलत है।।
शिवा बावनी

इस प्रकार जब देश के वीरों में राष्ट्रभक्ति लुप्त हो गई थी उस समय भूषण के काव्य ने राष्ट्र की सुषुप्त चेतना को जगाने का कार्य किया। उनके द्वारा शिवाजी और छत्रसाल दोनो वीर नायकों की वीरता का जो वर्णन किया गया, वह सत्य पर आधारित था।

सिवराज तेरे त्रास दिल्ली भयो भुवकंप,
थर–थर काँपति बिलायत अरब की।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं, ''शिवाजी और छत्रसाल की वीरता के वर्णनों को कोई कवियों की झूठी खुशामद नहीं कह सकता है। वे आश्रयदाताओं की प्रशंसा की प्रथा के अनुसरण मात्र नहीं हैं। दो वीरों का जिस उत्साह के साथ सारी हिन्दू जनता स्मरण करती है उसी की व्यंजना भूषण ने की है। वे हिन्दू जाति के प्रतिनिधि है।''[6] 'छत्रसाल दशक' में छत्रसाल के पराक्रम का गुणगान करते हुए लिखते हैं–

भुज भुजगेस की वै संगिनी–सी,
खोदि–खोदि खाती दीह दारुन दलन के।
पखतर पाखरनि बीच धँसि जाति मौन,

पैरि जात परवाहु ज्यों जलन के।।
रैया राय चंपति को छत्रसाल महाराज,
'भूषण' सकत की बखानियों बलन के।
पच्छी परछीने ऐसे परै पर छीने वीर,
तेरी बरछी ने बर छीने हैं खलन के।।
छत्रसाल दशक

स्वदेश प्रेम और राष्ट्रीयता भूषण जी के काव्य में प्रत्येक स्थान पर मुखर हुआ है। वह अपने धर्म और संस्कृति के अनन्य भक्त थे। उस समय मुगल के द्वारा मंदिरों को तोड़ उनके स्थान पर मस्जिदें बनाई जा रही थी और लोगों का जबरदस्ती धर्म परिवर्तन किया जा रहा था। भारतीय संस्कृति की इस दशा को देख कवि भूषण का हृदय कर रूदन कर रहा था और इन अत्याचारों को केवल शिवाजी ने रोका। कवि भूषण लिखते हैं–

देवल गिरावते फिरवते निसान अली,
ऐसे समै राव–राने सबै गए लबकी।
गौरा गनपत्ति आप, औरंग को देखि ताप,
अपने मुकाम सब मारि गए दबकी।
पीरा पयगम्बरा दिगम्बरा दिखाई देत,
सिद्ध की सिधाई गई रही बात रब की।
कासीहू की कला गई मथुरा मसीद भई,
सिवाजी न होतो तो सुनति होती सबकी।।
शिवाबावनी

उस समय भूषण को अपनी टूटती हुई संस्कृति को बचाने का एकमात्र साधन राष्ट्रीय चेतना नज़र आयी। इसलिए उन्होंने छत्रपति शिवाजी और महाराजा छत्रसाल जैसे वीर नायकों को अपने काव्य के नायक के रूप में चित्रित कर लिया। इस प्रकार लोगों में अपने धर्म और संस्कृति के प्रति मोह और आस्था जगाने का महान कार्य किया। कवि भूषण छत्रपति शिवाजी का गुणगान करते हुए लिखते हैं कि उनकी तलवार के बल से ही हिंदू धर्म के महान ग्रंथों, और हिन्दू धर्म के रीति–रिवाजों के साथ–साथ, हिंदू देवी–देवताओं के मंदिरों की रक्षा संभव हो सकी है। मुगलो के प्रति घृणा का भाव प्रदर्षित करते हुए भूषण अपने नायक शिवाजी को प्रोत्साहन देते हुए कहते हैं–

बेद राखे विदित पुरान परसिद्ध राखे
राम–नाम राख्यो अति रसना सुघर मैं।
हिन्दुन की चोटी रोटी राखी है सिपाहिन की,?
काँधे में जनेऊ राख्यो माला राखी गर मैं।।
मीड़ि राखे मुगल मरोड़ि राखे पातषाह,
वैरी पीसि राखे वरदान राख्यो कर में।
राजन की हद्द राखी तेग–बल सिवराज,

देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर मैं।।
शिवाबावनी

शिवाजी के चरित्र को इतिहासकारों ने भी महान बताया है। जिसने कभी किसी धार्मिक पुस्तक एवं किसी स्त्री का अपमान नहीं किया, चाहे वह किसी भी जाति एवं धर्म की क्यों न हो। ''शिवाजी का उद्देश्य देश में राजनैतिक स्वतंत्रता स्थापित करना था। उन्होंने राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर ही राष्ट्रीय सेना बनाई और जीवन–पर्यन्त राष्ट्र–हित के लिए संघर्ष करते रहे।''[7] भूषण के काव्य में संस्कृति के प्रति आस्था के स्वर की प्रखरता का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि उन्होंने भारतीय संस्कृति को नष्ट करने की इच्छा रखने वाले घोर अत्याचारी औरंगजेब को ही नहीं बल्कि उन भारतीय राजाओं का भी विरोध किया जिन्होंने भारतीय संस्कृति का अनुसरण करते हुए शिवाजी का साथ नहीं दिया और मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली थी। वह लिखते हैं–

आपस की फूट ही तें सारे हिंदुवान टूटे,
टूट्यो कुल रावन अनीति–अति करतें।
राम कर छूवन ते टूटयो ज्यो महेष चाप।
टूटी पातशाही शिवराज संग लरतें।
शिवाबावनी

भूषण ने किसी जाति विशेष के लिए काव्य नहीं लिखा उन्होंने सभी धर्मों की रक्षा के लिए आवाज उठाई। यदि उन्होंने अत्याचार के विरूद्ध आवाज न उठाई होती तो भारत राष्ट्र बहुत पहले विदेशी कुचक्र में पिस गया होता। शिवाजी और छत्रसाल उन दिनों समाज और आदेश का पुनर्निर्माण कर रहे थे, जर्जर राष्ट्र को संगठित कर रहे थे। उनके शौर्य के कारण उनका शत्रु पक्ष भयभीत रहता था। भूषण कवि ने वीर शिवाजी के शत्रु पक्ष की दुर्दशा का चित्रण के साथ अपनी अदभुत काव्य कला का प्रर्दशन निम्नलिखित पंक्तियों में किया हैः–

ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहनवारी,
ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहाती हैं।
कन्द मूल भोग करैं कन्द मूल भोग करैं,
तीन बेर खातीं ते वै तीन बेर खाती हैं।।
'भूषण' सिथिल अंग, भूषण सिथिल अंग,
विजन डुलाती ते वै विजन डुलाती हैं।
'भूषण' भनत सिवराज वीर तेरे त्रास,
नगन जड़ाती ते वै नगन जड़ाती हैं।
शिवाबावनी

कवि भूषण ने देशहित और जाति हितार्थ काव्य लिखा, जिसमें राष्ट्रीयता की भावना स्वमेव व्यंजित हो जाती है। कवि भूषण समाज सुधारक थे और अपने धर्म और

जाति के उत्थान को देखना चाहते थे। डॉ॰ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के अनुसार "उस समय की राष्ट्रीयता में स्थानीयता और धार्मिकता का पुट था और वही बातें हमें भूषण की रचनाओं में मिलती हैं। किन्तु आधुनिक राष्ट्रीयता की दृष्टि से उनकी रचनाओं को परखना उनके साथ अन्याय करना होगा।"[8]

इंद्र जिमि जंभ पर, वाडव संअंभ पर।
रावन सदंभ पर, रघुकुल राज है।।1।।
पौन बरिबाह पर, संभू रतिनाह पर।
ज्यों सहसबाह पर, राम द्विजराज है ।।2।।
दावा द्रमदंड पर, चीता मृगझुंड पर।
भूषण वितुण्ड पर, जैसे मृगराज है।।3।।
तेजस अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर।
तयों म्लेच्छ बंस पर, शेर शिवराज है।।4।।
शिवराज भूषण

भूषण का काव्य तो वीरता का वह अनोखा चश्मा है। जो रीतिकाल में प्रचलित श्रृंगारिकता के विलासपूर्ण काव्य और वासनामय परिदृश्य से चुंधियाई आंखों को सकून देता है। भूषण ने अपनी वाणी से जनसाधारण में राष्ट्रभक्ति का ऐसा जज्बा भरने की चेष्ठा की, जो सीधा हृदय पर प्रहार करता था। उसकी वीरता और ओज से भरी शब्दावली से युक्त काव्य को सुनकर औरंगजेब जैसा व्यक्ति भी अपनी मूछों पर ताब देने लगा था। ऐसी रचना को सुनकर निर्बल व्यक्ति भी देशहित में लड़ने मरने को तैयार हो जायेगा। उनकी राष्ट्रीयता उनके धर्म, जाति और स्वतंत्रता पर टिकी हुई थी। जो आधुनिक काल की व्यापक राष्ट्रीयता न हो कर केवल जातिय गौरव तक सीमित थी। ऐसी राष्ट्रीयता आधार देश और जाति का हित करना ही था।

संदर्भ सूची :–

1. डॉ॰ बहादुर सिंह, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ॰ 397
2. मुरारी लाल शर्मा 'सरस', प्रो सत्यपाल चड्ढ़ा, कमलेश्वर प्रसाद, प्रो॰ सत्यदेव 'सरल', साहित्य का इतिहास तथा इतिहास दर्शन, पृ॰ 168
3. डॉ॰ उषा यादव, हिन्दी साहित्य की प्रवृतियाँ
4. बाबू गुलाबराय, राष्ट्रीयता, पृ॰ 2, गयाप्रसाद एण्ड सन्ज, आगरा 1961
5. भूषण ग्रंथावली, प्रधान संपादक विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ॰ 51, साहित्य सेवक कार्यालय, जालिपादेवी, काशी, 199
6. आ॰ रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ॰ 180
7. v.v. joshi, clash with three empires,Allahbad, kitabistan , 1941,p. 58
8. डॉ॰ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ॰ 186

आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद की भूमिका

आदित्य आंगिरस*

भारत में राष्ट्रवाद आज भी जन साधारण के लिये एक बड़ा विवाद का विषय बना हुआ है। सब अपने हिसाब से राष्ट्रवाद की परिभाषा गढ़ रहे है। आखिर वास्तविक राष्ट्रवाद क्या है? भारत में अलग–अलग धर्म, जातियां, संस्कृतियां विद्यमान है लेकिन क्या जो अभी भारतीय भू–भाग में प्रचारित किया जा रहा है क्या वह वातविक राष्ट्रवाद नहीं है। क्या आज राष्ट्रवाद की झूठी तस्वीर लोगो के सामने लाकर उनके विश्वास एव आस्था का विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा दुरूपयोग किया जा रहा है। क्या हमें राजनीतिक दलों द्वारा वर्तमान में प्रतिपादित भारतीय राष्ट्रवाद का छद्म रूप बताया जाता है? ऐसे में राष्ट्रवाद का वास्तविक रूप को समझने का प्रयास इन्हीं संदर्भों में एक आवश्यकता बन जाती है।

राष्ट्रवाद का अर्थ –

आधुनिक मान्यता के अनुसार राष्ट्र का जन्म लेटिन भाषा शब्द नेशों से हुआ है, जो सामूहिक जन्म अथवा वंश के भाव को व्यक्त करता है, परंतु आधुनिक काल में इसका अर्थ राष्ट्रीयता शब्द का समरूपी होने पर 'राष्ट्र' शब्द किसी राष्ट्रीयता की सामान्य राजनीतिक चेतना का घोतक है जो, ए. जिम्मर्न के अनुसार 'किसी सुनिश्चित स्वदेश के साथ जुड़ी विचित्र तीव्रता, घनिष्ठता तथा सम्मान की भावना का संयुक्त रूप है' राष्ट्र का अर्थ लोगों के समूह से है – जिनकी एक जाति, एक तिहास, एक संस्कृति, एक भाषा और एक निश्चित भू–भाग हो, राष्ट्रवाद उस विश्वास को कहते हैं, जिसके द्वारा प्रत्येक राष्ट्र को यह अधिकार है कि, जिस भू–भाग पर वे सदियों से रहते हैं, उस पर वे स्वतंत्र रूप से शासन कर सकें। राष्ट्रीयता मनोवैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक घटकों के उस समूह को दिया गया नाम है, जो राष्ट्र को एकीकृत करने वाले सुसंगत सिद्धांत प्रस्तुत करते हैं। साधारण भाषा में राष्ट्रवाद को मातृभूमि से प्रेम या देश भक्ति का समरूपी माना गया है। यह देश के लिए मर मिटने की भावना का नाम है। ई. बार्कर ने राष्ट्रवाद को कुछ इस तरह परिभाषित किया है – 'राष्ट्र किसी प्रदेश में रहने वाले लोगों का समूह है, जो विभिन्न नस्लों से संबंधित होने पर भी सांझे इतिहास की धारा में अर्जित विचारों व भावनाओं में समान भागीदारी रखते हैं। सांझे विचारों और भावनाओं के अतिरिक्त, सामान्य इच्छा भी रखते हैं और उसके अनुरूप उस इच्छा की अभिव्यक्ति के लिए अपने अलग राष्ट्र का निर्माण करते हैं अथवा उसके निर्माण का प्रयास करते हैं।' बार्कर ने साझे धार्मिक विश्वास तथा सांझी भाषा को आपसी जुड़ाव का तत्व माना है तथापि राष्ट्र की एकता में सबसे महत्वपूर्ण तत्व यह होता है कि लोग एक ही तरह की इच्छा शक्ति को संजोय रखते हैं तथा उसी के अनुसार अपना अलग राज्य निर्माण करते हैं अथवा निर्माण करने की कोशिश करते हैं। इस तरह स्पष्ट है कि साझी इच्छा शक्ति ही राष्ट्र की आत्मा होती है। इस तरीके से गठित राज्य को राष्ट्र की संज्ञा दी जाती है।" प्रोफेसर सिन्डर के अपने शब्दों में राष्ट्र शब्द

* वी वी बी आई एस एण्ड आई एस, साधु आश्रम, होशियारपुर

को व्याख्यायित करते हुए कहते हैं कि "इतिहास के एक खास दौर में राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और बौद्धिक कारकों से उत्पन्न राष्ट्रवाद एक भौगोलिक क्षेत्र में रहने वाले लोगों की मनः स्थिति, भावना अथवा उदभावना का नाम राष्ट्र है। इन्हीं संदर्भों में वे आगे कहते हैं कि "राष्ट्रवाद न तो पूरी तरह से तार्किक है, न ही पूरी तरह से विवेक–सम्मत। इसकी जड़ें अचेतन दुनिया की अतार्किकता एवं फंतासी में ढूंढी जा सकती हैं।" सरल भाषा मे यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रवाद स्थितिजन्य भावना का नाम है जो विभिन्न जाति के लोगों को आपसी मत भेदों की उपस्थिति के बावजूद उन्हें एकसूत्र में बांधती है। राष्ट्रवादी विचारधारा के प्रमुख अध्येताओं मे दो नाम विशेषतः उल्लेखनीय है प्रथम जे. एच. हेमस एवं द्वितीय हान्स कोडन। हेमस इस सम्दर्भ में अपने आशय को स्पष्ट करते हुए कहते है कि राष्ट्रवाद ''आधुनिक भावात्मक एकता बोध के साथ दो पुरानी अवधारणाओं–राष्ट्रीयता एवं राष्ट्रीय भक्ति के अतिशयोक्तिकरण से मिलकर बनता है जब कि कोहन का मानना है कि ''राष्ट्रवाद सबसे पहले और सर्वाधिक रूप से एक मनः स्थिति का नाम है, चेतना का नाम है।'' इन्हीं संदर्भों में वे आगे कहते हैं कि ''राष्ट्रवाद प्रत्येक देश की विशिष्टता ऐतिहासिक स्थितियों तथा सामाजिक संरचना के अनुसार अलग–अलग होता है। जैसे–जैसे राष्ट्रवाद की अवधारणा फैलती गयी है, वैसे वैसे व्यक्ति की अहमियत कम होती गई है।" आधुनिक काल में भारतीय राष्ट्रवाद के यद्यपि कई कारण हो सकते हैं परन्तु विशेषतः यहां उन सभी में से दो विशिष्ट कारणों का विश्लेषण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

1. प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक पृष्ठभूमि –

यह एक प्रचलित अवधारणा है कि साहित्य का मनुष्य जीवन से अभिन्न संबंध है। कवि द्वारा रचित साहित्य जहां एक ओर तत्कालीन समस्याओं के विषय में परिस्थितियों का वर्णन करता है वहीं दूसरी ओर वह सामुदायिक विकास जहां एक ओर में सहायक सिद्ध होता है और वह सामुदायिक चेतना का अंग बनता है। यह एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि भारतवर्ष की संस्कृति के आधार का इतिहास कोई सौ अथवा दो साल का नहीं अपितु यह एक निश्चित एवं सुदीर्घ परम्परा का नाम है जिसे मोहम्द इकबाल ने अपने काव्य के माध्यम से इंगित करने का प्रयास किया। यह कहने में कोई संकोच नहीं होगा कि भारतीय संस्कृति का आरंभ वैदिक काल से माना जाता है एवं वेदों एवं संस्कृत में रचित अन्य ग्रन्थों ने भारत की संस्कृति पर व्यापक प्रभाव डाला एवं यह प्रभाव डालने की प्रक्रिया निरन्तर वर्तमान में चल रही है। इसी कारण विदेशी विद्वानों ने कई संस्कृत ग्रन्थों का चीनी, फ़ारसी एवं अरबी आदि भाषाओं में अनुवाद किया जिसके परिणाम स्वरूप विश्व को प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक जीवन की झलक देखने को मिली। इसी प्रकार अंग्रेज़ी शासन के दौरान विदेशी विद्वानों के द्वारा की गई सांस्कृतिक खोजों ने भी भारतीयों की राष्ट्रीय भावनाओं को बल प्रदान किया। इन संदर्भों में सर विलियम जोन्स, मैक्समूलर, जैकोवी कोल ब्रुक, ए०वी० कीथ, बुनर्फ आदि विदेशी विद्वानों ने भारत की संस्कृत भाषा में लिपिबद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थों का अध्ययन किया और उनका अंग्रेजी भाषा में जहां एक ओर अनुवाद किया वहीं दूसरी ओर भारत की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को भी समझने का प्रयास किया यद्यपि वे अपने प्रयासों में संपूर्ण रूपेण सफ़ल नही हो सके और भारतीय संस्कृति की

व्याख्या अपने पश्चिमी प्रभाव एवं संस्कृति के अनुरूप की। इसके अतिरिक्त, पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय ग्रन्थों का अनुवाद करने के पश्चात् यह बताया कि ये ग्रन्थ संसार की सभ्यता की अमुल्य निधियाँ हैं। पश्चिमी विद्वानों ने प्राचीन भारतीय कलाकृतियों की खोज करने के पश्चात् यह मत व्यक्त किया है कि भारत की सभ्यता और संस्कृति विश्व की प्राचीन और श्रेष्ठ संस्कृति है। इससे विश्व के सम्मुख प्राचीन भारतीय गौरव उपस्थित हुआ। जब भारतीयों को यह पता चला कि पश्चिम के विद्वान भारतीय संस्कृति को इतना श्रेष्ठ बताते हैं, तो उनके मन में आत्महीनता के स्थान पर आत्मविश्वास की भावनाएँ जागृत हुई। और उन्होंने उसकी श्रेष्ठता स्थापित करने का प्रयत्न किया। राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा स्वामी विवेकानन्द ने भी भारतीयों को उनकी संस्कृति की महानता के ज्ञान से अवगत कराया। अतः यह कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय मानसिकता एवं अंग्रेजों द्वारा संस्कृत साहित्य को प्रोत्साहन देने से संस्कृत भाषा का पुनरुद्धार हुआ। इन अनुसंधानों ने भारतीयों के मन में एक नया ज्ञान और उत्साह जागृत किया। इससे उनके मन मे यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि फिर हम पराधीन क्यों हैं? डॉ० आर० सी० मजूमदार के कथनानुसार "यह खोज भारतीयों के मन में चेतना उत्पन्न करने मे असफल नहीं हो सकती थी, जिसके परिणामस्वरूप उसके हृदय राष्ट्रीयता की भावना व देश भक्ति से भर गए।" वहीं दूसरी ओर श्री के० एम० पाणिक्कर मानते है कि इन ऐतिहासिक अनुसंधान ने भारतीयों में आत्मविश्वास जागृत किया और उन्हें अपनी सभ्यता और संस्कृति पर गर्व करना सिखलाया। इन खोजों से अपने भविष्य के सम्बन्ध मे भारतीय आशावादी बन गए।

भारतीय संदर्भों में राष्ट्रवाद एवं राष्ट्रीय भावना की एक सुदीर्घ एवं निश्चित परम्परा रही है। यदि भारतीय वाङ्गमय पर दृष्टिपात करते हैं तो सर्व प्रथम 'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग वैदिक काल से ही हमें देखने को मिलता है उदाहरणतः यजुर्वेद के 'राष्ट्र में देहि' और अथर्वेद के 'त्वा राष्ट्र भृत्याय' में राष्ट्र शब्द इसी संदर्भ में प्रयुक्त हुआ है। इन्हीं उद्धरणों के आधार पर हम मान सकते है कि राष्ट्र शब्द से मेरा आशय उस भूखंड विशेष से हैं जहां के निवासी एक संस्कृति विशेष में आबद्ध होते हैं एवं एक ही प्रकार की विचारधारा से आबद्ध होते हैं। यदि इस को विशेष रूप में कहा जाये तो हम कह सकते हैं कि किसी भी राष्ट्र की अपनी जनसंख्या, भू–भाग, प्रभुसत्ता, सभ्यता, संस्कृति, भाषा, साहित्य, स्वाधीनता और स्वतंत्रता तथा राष्ट्रीय एकता आदि समस्त तत्त्व होते हैं जिनके प्रति उस भूभाग की समस्त प्रजा अपने राष्ट्र के प्रति आस्थावान होती है वह चाहे किसी भी धर्म, जाति, वर्ण अथवा प्रांतीयता का हो। यह एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि प्रांतीयता और धर्म संकुचित होते हुए भी राष्ट्र के प्रति समर्पण की भावना में बाधक नहीं होते हैं क्योंकि भूभाग विशेष कृत एकता ही राष्ट्र का महत्वपूर्ण आधारतत्व है, जो नागरिकों में प्रेम, सहयोग, धर्म, निष्ठा कर्तव्यपरायणता, सहिष्णुता तथा बंधुत्व आदि गुणों का विकास करता है तथा ऐसे में जाति, वर्ण, धर्म तथा प्रांतीयता का भाव गौण हो जाता है क्योंकि इन सभी भावनाओं का निकष राष्ट्र के प्रति समर्पण का भाव ही होता हैं। इन गुणों के विकास के कारण ही कोई भी राष्ट्र स्वस्थ, समृद्ध तथा शक्तिशाली होता है। राष्ट्र की विषय–वस्तु एवं क्षेत्र राष्ट्र के संगठन हेतु किन्ही निश्चित तत्त्वों की आवश्यकता नहीं। अतः समान जाति, धर्म, भाषा,

संस्कृति, भूभाग की अपेक्षा उनमें साथ साथ रहने की इच्छा तथा एकता की भावना होना अति आवश्यक है। अतः राष्ट्र एक कल्पना किसी भी एक निश्चित भूभाग एवं वहां के वासियों में होती है, जिसका आधार किसी भू–भाग के प्रति मानवीय एकता एवं समर्पण का भाव मानवीय चित्त में सन्निहित होता है और यह भाव विशेष समस्त निजी भेदभावों को भुला कर एकत्व की ओर प्रेरित करती है। राष्ट्रीय के लिए जनसंख्या, भू–भाग, सरकार, प्रभुसत्ता आवश्यक नहीं, इसके लिए आवश्यक भू–भाग विशेष के प्रति अनुराग की भावना। क्योंकि राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी जहां कुछ इसी प्रकार के अपने उद्‌गारों को वाणी दी है "जो भरा नहीं है भावों से जिसमें बहती रसधार नहीं। वह हृदय नहीं है पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं"[1] वहीं दूसरी ओर भारतेन्दु ने भी अपने काव्य के माध्यम से भारत की राष्ट्र भावना को द्योतित करने का यत्न किया।

यह माना जाता है कि वैदिक साहित्य संसार में प्राचीनतम हैं, जो संपूर्ण विश्व में प्रचलित विभिन्न विचारधाराओं का आधार है। संसार में जितनी भी उत्तम, सुन्दर और दिव्य विचारधाराएँ हैं वे सब वेद से ही निकली है, क्योंकि वेद सभी धर्मो का मूल है क्योंकि कहा भी गया है कि "वेदो अखिल धर्म मूलम्"। भारतीय मनीषा का यह चिन्तन सूक्ष्म और उदात विचार से सदा ही परिपूर्ण रहा है। अतः उन्होंने जहां विश्व के लिये 'वसुधैव कुटुम्बकम्' मंत्र के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय भातृ–भावना का सूत्रपात किया था वहीं दूसरी ओर वेद राष्ट्रवाद के परिपोषक के रूप में हमारे सामने आता हैं एवं वेदों में राष्ट्र शब्द का प्रयोग बहुधा में हमें देखने को मिलता है उदाहरणतः ऋग्वेद में "राष्ट्रं क्षत्रियस्य"[2] में "राजा राष्ट्रानाम्"[3] "राष्ट्रं गुपितं जत्रियस्य"[4]। इन सभी संदर्भो से हमें ज्ञात होता है कि क्षत्रिय के द्वारा शासित भूभाग को राष्ट्र कहते हैं। अतः राष्ट्र शब्द एक सुनिर्दिष्ट अर्थ और भावना का प्रतीक है। जिस प्रकार यजुर्वेद ने राष्ट्र के कल्याण की कामना कितने सुंदर शब्दों में की है– आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्"[5] अर्थात् हमारे राष्ट्र में क्षत्रिय, वीर, धनुषधारी, लक्ष्यवेधी और महारथी हों। अथर्ववेद में भी राष्ट्र के धन–धान्य दुग्ध आदि से संवर्धन प्राप्ति की कामना की गई है– अभिवर्धताम् पयसाभि राष्ट्रेण वर्धताम्[6] वैदिक साहित्य में राष्ट्र से संबंधित शब्दों का प्रयोग बहुतायत में किया गया है उदाहरण के लिये हमें साम्राज्य, स्वराज्य, राज्य, महाराज्य आदि शब्द राष्ट्र के स्थान पर देखने को मिलते है। परन्तु इन सभी में राष्ट्र शब्द ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। राष्ट्र शब्द से आशय उस भूखंड विशेष से हैं जहां के निवासी एक विशेष संस्कृति के प्रति निष्ठावान होते हैं। एक सुसमृद्ध राष्ट्र के लिए उस का स्वरुप निश्चित होना आवश्यक है। कोई भी भूखण्ड

---

1 राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त संस्कृत परिचायिका, पृष्ठ५९

2 ऋग्-४-४२-१

3 ऋग्-७-३४-११

4 ऋग्-१०-१०९-३

5 यजुर्वेद२८/२२

6 अथर्ववेद६/७८/२

एक राष्ट्र तभी बन सकता है जब उसमें देशेतरवासियों को भी आत्मसात करने की शक्ति हो। उनकी अपनी जनसंख्या, भू–भाग, प्रभुसत्ता, सभ्यता, संस्कृति, भाषा, साहित्य, स्वाधीनता और स्वतंत्रता तथा राष्ट्रीय एकता आदि समस्त तत्त्व हों, जिसकी समस्त प्रजा अपने राष्ट्र के प्रति आस्थावान हो। वह चाहे किसी भी धर्म, जाति तथा प्रांत का हो। प्रांतीयता और धर्म संकुचित होते हुए भी राष्ट्र की उन्नति में बाधक नहीं होते हैं क्योंकि राष्ट्रीय एकता राष्ट्र का महत्वपूर्ण आधारतत्व है, जो नागरिकों में प्रेम, सहयोग, धर्म, निष्ठा कर्तव्यपरायणता, सहिष्णुता तथा बंधुत्व आदि गुणों का विकास करता है।

वैदिक ग्रंथों में राष्ट्र हमें सर्वप्रथम वैदिक ऋषियों की वाणी में राष्ट्रीयता का गौरव गान सुनाई देता है। विश्व को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का राजमार्ग प्रदर्शित करने वाले, आत्मा और परमात्मा का सत्य स्वरूप प्रतिपादित करने वाले तथा ज्ञान, विज्ञान के आलोक से वसुधा को आलोकित करने वाले, वेदों मे यत्र–तत्र सर्वत्र राष्ट्रीयता का स्वर मुखरित होता रहा है। तथा लौकिक कवियों की कृतियों में भी अभिव्यंजित राष्ट्रीयता का स्वर मुखरित होता रहा है। परन्तु लौकिक कवियों की अभिव्यंजित राष्ट्रीयता में तथा वैदिक संहिताओं में अभिव्यक्त राष्ट्रीयता में एक मौलिक अन्तर यह है कि लौकिक कवियों का राष्ट्र प्रेम अपने–अपने राज्यों अथवा देशों और स्वदेशीय प्रजा के कल्याण तक सीमित है, जबकि वैदिक संहिताओं का राष्ट्र–प्रेम सम्पूर्ण वसुधा को और प्राणीमात्र को अपने आंचल में समेटे हुए है। ''यत्र विश्वं भवत्येक नीडम''[7] की व्यापक दृष्टि वेदों में सर्वत्र परिलक्षित होती है। वेदों में अनेक स्थानों पर अपनी मातृभूमि की रक्षा में सर्वस्व समर्पण का सन्देश दिया गया है। वेदों में अनेक स्थानों पर अपनी मातृभूमि की मुक्तकंठ से प्रशंसा की गई है, जिसे पढ़कर या सुनकर प्रत्येक देशवासी के हृदय में अपने देश के लिए, गौरव का भाव पनपता है। वैदिक दृषि अपनी मातृभूमि के वन–पर्वत, सरित–सागर आदि के सौन्दर्य पर मुग्ध हैं, वहां निवास करने वाली प्रजा के सांस्कृतिक जीवन पर भी वे मुग्ध हैं। भिन्न–भिन्न भाषा–भाषी, भिन्न–भिन्न प्रकार की वेशभूषा धारण करने वाले लोगों को देखकर, उनका मन मयूर प्रसन्नता से नृत्य करने लगता है। अथर्ववेद का पृथ्वीसूक्त इस दृष्टि से सम्पूर्ण विश्व साहित्य में अनुपम है। इस सूक्त में राष्ट्र–प्रेम की ऐसी धारा प्रवाहित हो रही है। अथर्ववेद का अपनी जन्म–भूमि के प्रति दिव्य भावों के स्फुरण के लिये कहता है– 'यही वह भूमि है जिसमें हमारे पूर्वजों ने नाना प्रकार के महान कार्य किये। यहीं पर देवों ने असुरों को पराजित किया। यहीं गौ आदि अमृत तुल्य दुग्ध प्रदान करने वाले, अश्वादि द्रुतगति से दौड़ने वाले पशुओं का और मुक्त गगन में उड़ने वाले पक्षियों का सुन्दर निवास है। ऐसी यह मातृभूमि, हमें तेज और ऐश्वर्य से परिपूर्ण कर दे।' 'यस्यां पूर्वे पूर्वजना वि चक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन्। गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु।।'[8] यह मातृभूमि कितनी श्रेष्ठ है जिसकी रक्षा देवों के समान कुशल विद्वान राजा और प्रजा सदैव जागरूक रहकर बिना प्रमाद के करते हैं। 'यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा

7

8 अथर्व. १२/१/५

भूमिं पृथिवीमप्रमादम्'[9] सम्पूर्ण विश्व में स्वर्णाक्षरों में अंकित किये जाने योग्य, वह वाक्य जिसके प्रत्येक वर्ण में देश–प्रेम का ज्वालामुखी छिपा हुआ है, इसी पृथ्वी सूक्त में है– 'माता भूमिः पुत्रोहं पृथिव्याः पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु।'[10] भूमि को माता कहकर पुकारना और पर्जन्य अर्थात् मेघ को पिता कहकर सम्मानित करना, एक ऐसा सिद्धांत है जिससे हमारे नीति निर्माता बहुत कुछ सीख सकते हैं। आज जो हमारे राष्ट्र में कृषि की महत्ता पर बड़े–बड़े सेमिनार हो रहे हैं, कृषिनीति की तैयारियां हो रही हैं, उसका सूत्ररूप वेदों में विद्यमान है। 'विश्वस्वं मातरमाषधीनां ध्रुवां भूमि पृथिवीं धर्मणा धृताम्। शिवा स्योनामनुचरेम विश्वहा।'[11] भूमिसूक्त में भावप्रवण प्रार्थना करते हुए निवेदन किया गया है– हे मातृभूमि! तुम से जो गन्ध उत्पन्न हो रहा है, जिस गन्ध को औषधियां धारण करती हैं, जिसको जल धारण कर रहे हैं, जिसको सुन्दर युवक और युवतियां प्राप्त कर रहे हैं, उस अपने गन्ध से मुझ को भी सुन्दर गन्ध वाला बना दे और कोई भी हमसे द्वेष न करे। 'यस्ते गन्धः पृथिवि संबभूव यं बिभ्रत्योषधयो यमापः। यं गन्धर्वा अप्सरश्च भेजिरे तेन मा सुरभि कृणु। मा नो द्विक्षत कश्चन।'[12] हमारे राष्ट्र की यह भूमि स्थल रूप में देखने पर केवल शिलाओं, पत्थरों और धूल–मिट्टी का ढ़ेर प्रतीत होती है, किन्तु राष्ट्रवासियों द्वारा सम्यक् प्रकार से धारण किये जाने पर तथा इसे प्राणो से भी प्रिय समझ लेने पर, यही धरती राष्ट्रवासियों को आश्रय देने वाली मातृभूमि बन जाती है और हम सबको धारण कर लेती है। इस मां के वक्षः स्थल में हिरण्यादि पदार्थ छिपे हुए है। यह अपने भक्तों को इन सुवर्णादि से परिपूर्ण कर देती है, ऐसी मातृभूमि को हम नमन करते हैं– 'शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमि संधृता धृता। तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः।।'[13] ग्रीष्म, वर्षा, शरद वसन्त, हेमन्त और शिशिर ये 6 ऋतुएं इसकी शोभा बढ़ाती हैं। इस भूमि पर यजुर्विद यज्ञीय–स्तूपों का निर्माण करते हैं, ब्राह्मण ऋग्वेद के मन्त्रों एवं सामवेद के मधुर गान से परमात्मा की अर्चना करते हैं। इसी भूमि में हम मानव गाते हैं, नाचते हैं। योद्धा युद्ध करते हैं, शोर मचाते हैं, दुन्दुभि बजाते हैं, ऐसी यह पृथ्वी माता हमारे शत्रुओं को मार भगावें और हमें शत्रुरहित कर देवें– 'यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलबाः। युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः। सा नो भूमिः प्रणुदतां सपत्नानसपन्न मां पृथिवी कृणोतु।'[14] अथर्ववेद के अतिरिक्तं ऋग्वेद, यजुर्वेद में वर्णित राष्ट्रीयता के दिव्य भाव हृदय आनन्द विभोर कर देते हैं। एक देश में जन्म लेने वाले हम सब देशवासियों में एक रागात्मक सुदृढ़ बन्धुता का उदय होता है, जिससे प्रेरित होकर हम लोग छोटे–बड़े (ज्येष्ठ एवं कनिष्ठ) का भेदभाव भूलकर और

---

9 अथर्व. १२/१/७

10 अथर्व. १२/१/१२

11 अथर्व. १२/१/१७

12 अथर्व. १२/१/२३

13 अथर्व12/1/26

14 अथर्व. 12/1/41

सभी एक ही धरती माता की गोद से उत्पन्न हुए हैं (पृश्निमातरः श, ऐसा मानकर अपनी मातृभूमि के विकास एवं रक्षा में पूर्ण शक्ति से लगने में ही गौरव अनुभव करते हैं– 'अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय।'[15] अनेक पाश्चात्य चिन्तकों तथा उनके अनुगामी, भारतीय राजनीति शास्त्र के लेखकों का विचार है कि राष्ट्र अथवा राष्ट्रीयता भारत को पश्चिम की देन है, किन्तु वैदिक संहिताओं का अध्ययन करने पर, यह धारणा सर्वथा भ्रान्त एवं मिथ्या प्रतीत होती है। वेदों में राष्ट्र की परिकल्पना स्पष्ट रूप से उपलब्ध होती है। राष्ट्र शब्द वेद के अनेक मन्त्रों में प्राप्त होता है। राष्ट्र के सर्वविध कल्याण के लिये राष्ट्र भृत् यज्ञ का वर्णन यजुर्वेद के 9.10 अध्याय में विस्तार से किया गया है। इसी प्रकार यदि पौराणिक साहित्य पर दृष्टिपात करे तो हम देखते हैं कि विष्णुपुराण में तो राष्ट्र के प्रति का श्रद्धाभाव अपने चरमोत्कर्ष पर दिखाई देता है। इस में भारत का यशोगान 'पृथ्वी पर स्वर्ग' के रूप में किया गया है। "अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महागने। यतोहि कर्म भूरेषा ह्यतोऽन्या भोग भूमयः॥ गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारत–भूमि भागे। स्वर्गापस्वर्गास्पदमार्गे भूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ॥"[16] इसी प्रकार वायुपुराण में भारत को अद्वितीय कर्मभूमि बताया है। भागवतपुराण में तो भारतभूमि को सम्पूर्ण विश्व में 'सबसे पवित्र भूमि'[17] कहा है। इस पवित्र भारतभूमि पर तो देवता भी जन्म धारण करने की अभिलाषा रखते हैं, ताकि सत्कर्म करके वैकुण्ठधाम प्राप्त कर सकें। 'कदा वयं हि लप्स्यामो जन्म भारत–भूतले। कदा पुण्येन महता प्राप्यस्यामः परमं पदम्।'[18] महाभारत के भीष्मपर्व में भारतवर्ष की महिमा का गान इस प्रकार किया गया है "अत्र ते कीर्तिष्यामि वर्ष भारत भारतम् प्रियमिन्द्रस्य देवस्य मनोवैवस्वतस्य। अन्येषां च महाराजक्षत्रियारणां बलीयसाम्। सर्वेषामेव राजेन्द्र प्रियं भारत भारताम्॥[19] गरुड पुराण में राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की अभिलाषा कुछ इस प्रकार व्यक्त हुई है– स्वाधीन वृत्तः साफल्यं न पराधीनवृत्तिता। ये पराधीनकर्माणो जीवन्तोऽपि ते मृताः॥[20] रामायण में रावणवध के पश्चात राम, लक्ष्मण से कहते हैं– अपि स्वर्णमयी लङ्का न मे लक्ष्मण रोचते। जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी॥" अर्थात् हे लक्ष्मण ! यद्यपि यह लंका स्वर्णमयी है, तथापि मुझे इसमें

---

15 ऋग्वेद5/60/5

16 विष्णुपुराण 1.34.3

17 भागवतपुराण4.6.9

18 भागवतपुराण12.45.4

19 महाभारत:भीष्मपर्व 13.5.5

20 गरुडपुराण 45.7

रुचि नहीं है क्योंकि जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी महान हैं। संस्कृत वाड्.मय में कई स्थानों पर भारतीय भू–भाग के प्रति श्रद्धा एवं आस्था प्रकट करते हुए मनीषी कवियों ने इसे पुण्य सलिला आदि नामों से भी अभिहित किया गया है जिनका विवरण देने से इस पत्र के कलेवर को और विस्तार मिल जायेगा परन्तु यह कहना सर्वथा उचित ही होगा कि भारत के लिये श्रद्धा, आस्था एवं प्रेम को अभिव्यक्त करने में संस्कृत कवियों और मनीषियों ने कोई कमी नहीं छोडी। वस्तुतः यह वह संस्कार था जो भारतीय जन मानस के किसी कोने मे सुप्तावस्था में विद्यमान था एवं जिसे कालान्तर में मुगल एवं अंग्रेजी शासन हिन्दी कवियों द्वारा जागृत करने का प्रयास किया गया एवं वे अपने इस् उद्देश्य में काफ़ी सफ़ल भी रहे।

अतः संस्कृत काव्य जगत में जहां प्राचीन भारतीय भू–भाग को धर्म की अवधारणा को महिमा मंडित किया गया वहीं दूसरी ओर प्राचीन भारतीय राष्ट्रवाद का स्वरूप भी हमें देखने को मिलता है जो वर्तमान में भी जन साधारण की राष्ट्रीय भावना को प्रेरित करता है एवं भारत के प्रति श्रद्धावान बनाने का प्रयास करता है जो भारतीय राष्ट्रवाद की पृष्ठभूमि के रूप में काम कर रहा था।

2. **राजनीतिक कारण –**

यद्यपि कुछ लोग भारतीय राष्ट्रवाद को एक आधुनिक तत्त्व मानते हैं। इस राष्ट्रवाद का अध्ययन अनेक दृष्टिकोणों से महत्त्वपूर्ण है। राष्ट्रवाद के उदय की प्रक्रिया अत्यन्त जटिल और बहुमुखी रही है। भारत मे अंग्रेजों के आने से पहले देश में ऐसी सामाजिक संरचना थी जो कि संसार के किसी भी अन्य देश मे शायद ही कहीं पाई जाती हो। वह पूर्व मध्यकालीन यूरोपीय समाजों से आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से नितान्त भिन्न थी। महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि भारत विविध भाषा–भाषी और अनेक धर्मों के अनुयायियों वाले विशाल जनसंख्या का देश है एवं इस में सामाजिक दृष्टि से हिन्दू समाज जो कि देश की जनसंख्या का सबसे बड़ा भाग है जो विभिन्न जातियों और उपजातियों में विभाजित रहा है। स्वयं हिन्दू पन्थ में किसी विशिष्ट पूजा पद्धति एवं अवधारणा का नाम नहीं माना जाता है बल्कि उसमें अनेक प्रकार के दर्शन और पूजा पद्धतियाँ सम्मिलित है। प्राचीन सम्भवत हिन्दू समाज अनेक सामाजिक और धार्मिक विभागों में बँटा हुआ है। भारत की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक संरचना तथा विशाल आकार के कारण यहाँ पर राष्ट्रीयता का उदय अन्य देशों की तुलना में संभवतरू कतिपय अधिक कठिनाई से हुआ है। इस विषय में सर जॉन स्ट्रेची मानते है कि "भारतवर्ष के विषय में सर्वप्रथम महत्त्वपूर्ण जानने योग्य बात यह है कि भारतवर्ष न कभी राष्ट्र था, और न है, और न उसमें यूरोपीय विचारों के अनुसार किसी प्रकार की भौगोलिक, राजनैतिक, सामाजिक अथवा धार्मिक एकता थी, न कोई भारतीय राष्ट्र और न कोई भारतीय ही था जिसके विषय में हम बहुत अधिक सुनते

हैं।"[21] इसी सम्बन्ध मे सर जॉन शिले का कहना है कि "यह विचार कि भारतवर्ष एक राष्ट्र है, उस मूल पर आधारित है जिसको राजनीति शास्त्र स्वीकार नहीं करता और दूर करने का प्रयत्न करता है। भारतवर्ष एक राजनीतिक नाम नही हैं वरन एक भौगोलिक नाम है जिस प्रकार यूरोप या अफ्रीका।"[22]

पश्चिमी विचारकों की उपरोक्त विचारों से स्पष्ट हो जाता है कि भारत में राष्ट्रवाद का उदय और विकास उन परिस्थितियों में हुआ जो राष्ट्रवाद के मार्ग में सहायता प्रदान करने के स्थान पर बाधाएँ पैदा करती है। वास्तविकता यह है कि भारतीय समाज की विभिन्नताओं में मौलिक एकता सदैव विद्यमान रही है और समय–समय पर राजनीतिक एकता की भावना भी उदय होती रही है। वी०ए० स्मिथ के शब्दों में "वास्तव मे भारतवर्ष की एकता उसकी विभिन्नताओं में ही निहित है।" ब्रिटिश शासन की स्थापना से भारतीय समाज में नये विचारों तथा नई व्यवस्थाओं को जन्म मिला है इन विचारों तथा व्यवस्थाओं के बीच हुई क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं के परिणामस्वरूप भारत में राष्ट्रीय विचारों को जन्म दिया। ऐसा माना जाता है कि भारत में राष्ट्रवादी विचारधारा का अंकुर सत्रहवीं शताब्दी के मध्य से आया था जो धीरे–धीरे विकसित होता रहा एवं इसका प्रतिफ़लन १८५७ ईस्वी सन हुआ। अतः भारतीय राष्ट्रीय जागृति का काल उन्नीसवीं शताब्दी का मध्य मानना उचित ही होगा। भारत में राष्ट्रवाद के जन्म के कारण जो राष्ट्रीय आन्दोलन प्रारम्भ हुआ वह विश्व में अपने आप में एक अनूठा आन्दोलन था भारत में राजनीतिक जागृति के साथ–साथ सामाजिक तथा धार्मिक जागृति का भी सूत्रपात हुआ। वास्तव मे सामाजिक तथा धार्मिक जागृति के परिणामस्वरूप राजनितिक जागृति का उदय हुआ। इन्हीं संदर्भों में डॉ० जकारिया का मत है कि "भारत का पुनर्जागरण मुख्यतः आध्यात्मिक था। इसने राष्ट्र के राजनीतिक उद्धार के आन्दोलन का रूप धारण करने से बहुत पहले अनेक धार्मिक और सामाजिक सुधारों का सूत्रपात किया।" इस रूप मे भारतीय राष्ट्रीय जागृति यूरोपीय देशों में हुई राष्ट्रीय जागृति से भिन्न है। भारत मे राष्ट्रवादी विचारों के उदय और विनाश के लिए कतिपय कारण कुछ इस प्रकार है।

इन्ही संदर्भों में यह बात महत्त्वपूर्ण है कि अंग्रज़ों के आगमन से पूर्व मध्यकालीन भारत में राजनीतिक एकता का लोप हो चुका था एवं १८वी शती के पूर्वार्ध में लगभग सम्पूर्ण भारत का अंग्रेजी प्रशासन की केन्द्रीय सत्ता के अधीन आ गया था। समस्त साम्राज्य में एक जैसे कानून एवं नियम लागू किए गए। समस्त भारत पर ब्रिटिश सरकार का शासन होने से भारत एकता के सूत्र मे बँध गया। इस प्रकार देश में राजनीतिक एकता स्थापित हुई। यातायात के साधनों तथा अंग्रेजी शिक्षा ने इस एकता की नींव को और अधिक ठोस बना दिया जिससे राष्ट्रीय आन्दोलन को बल मिला। इस प्रकार राजनीतिक दृष्टि से भारत का

---

21 भारतीय स्वाधीनता संग्राम : राजनीतिक चेतना का विकास" मूल से २७ फ़रवरी २०१७ को पुरालेखित

22 भारतीय स्वाधीनता संग्राम : राजनीतिक चेतना का विकास" मूल से २७ फ़रवरी २०१७ को पुरालेखित

एक रूप हो गया। डॉ० के॰वी॰ पुन्निया के शब्दों में "हिमालय से कन्याकुमारी तक सम्पूर्ण भारत एक सरकार के अधीन था और इसने जनता में राजनीतिक एकता को जन्म दिया।"डॉ० आर॰सी॰ मजूमदार ने लिखा है कि १६वीं शताब्दी मे यूरोप में जो स्वाधीनता संग्राम लड़े गए, उन्होंने भी भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को काफी प्रभावित किया। फ्रांस की १८३० ईस्वी एवं १८४८ ईस्वी की क्रान्ति ने भारतीयों में बलिदान की भावना जागृत की। इटली तथा यूनान की स्वाधीनता ने उनके उत्साह में असाधारण वृद्धि की। आयरलैण्ड भी अंग्रेजों की पराधीनता से मुक्त होने का प्रयास कर रहा था, इससे भी भारतीय जनता काफी प्रभावित हुई। इटली, जर्मनी, रुमानिया और सर्विया के राजनीतिक आन्दोलन, इंग्लैण्ड मे सुधार कानूनों का पारित होना एवं अमेरिका का स्वतन्त्रता संग्राम आदि ने भी भारतीयों को उत्साहित किया तथा उनमें साहस पैदा किया। परिणामस्वरूप वे स्वाधीनता प्राप्त करने के संघर्ष में जुट गए। सारांश यह है कि विदेशी आन्दोलनों ने भारतीयों मे देश भक्ति और देश प्रेम की भावना को विकसित करने मे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

यद्यपि यह माना जाता है कि भारत मे राष्ट्रीय जागृति पैदा करने मे १६वीं शताब्दी में हुए सामाजिक तथा धार्मिक आन्दोलनों का बहुत बड़ा हाथ रहा है। यह बात महत्त्वपूर्ण है कि आज़ादी से पूर्व भारतवर्ष की सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियाँ दिन–प्रतिदिन बिगड़ती ही जा रही थी और धर्म के नाम पर समाज मे अन्धविश्वास और कुप्रथाएँ पैदा हो गई थी। कतिपय धार्मिक एवं राजनीतिक आन्दोलनों ने एक ओर जहां धर्म तथा समाज में व्याप्त बुराईयों को दूर करने का प्रयास किया तो वहीं दूसरी ओर इन आदोलनों ने भारतवर्ष की राष्ट्रीयता एकता की भाव भूमि तैयार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस प्रकार के आन्दोलनों मे ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन एवं थियोसोफिकल सोसायटी आदि विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं, जिसके प्रवर्तक क्रमशः राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, एवं श्रीमती एनी बेसेन्ट आदि थे। इन सुधारकों ने जहां एक ओर भारतीयों में आत्मविश्वास जागृत किया तथा उन्हें भारतीय संस्कृति की गौरव गरिमा का ज्ञान कराया वहीं दूसरी ओर उन्हें अपनी संस्कृति की श्रेष्ठता के बारे में पता चला। इन महान व्यक्तियों में राजा राम मोहन राय को भारतीय राष्ट्रीयता का अग्रदूत माना जा सकता है। उन्होंने समाज तथा धर्म मे व्याप्त बुराईयों को दूर करने हेतु अगस्त १८२८ ईस्वी मे ब्रह्म समाज की स्थापना की। राजा राम मोहन राय ने सती प्रथा, छुआ–छूत जाति मे भेदभाव एवं मूर्ति पूजा आदि बुराईयों को दूर करने का प्रयास किया। उनके प्रयासों के कारण आधुनिक भारत का निर्माण सम्भव हो सका। इसलिए उन्हें आधुनिक भारत का निर्माता कहा जाता है। प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता डॉ० आर॰सी॰ मजूमदार ने लिखा है कि राजा राम मोहन राय को बेकन तथा मार्टिन लुकर जैसे प्रसिद्ध सुधारकों की श्रेणी में गिना जा सकता है। ए॰सी॰ सरकार तथा के॰के॰ दत्त का मानना है कि राजा राम मोहन राय के आधुनिक भारतवर्ष में राजनीति जागृति एवं धर्म सुधार का आध्यात्मिक युग प्रारम्भ किया जिन्हें हम एक युग प्रवर्तक के रूप में मान सकते हैं। इसलिए डॉ० जकारिया ने उन्हें सुधारकों का आध्यात्मिक पिता कहा है। बहुत से विद्वान उन्हें आधुनिक 'भारत का पिता' तथा 'नये युग का अग्रदूत' मानते हैं। राजा राममोहन राय ने भारतीयों के लिए राजनीतिक अधिकारों की माँग की। १८२३ ईस्वी में अंग्रेज़ सरकार ने प्रेस आर्डिनेन्स के द्वारा समाचार

पत्रों पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। इस पर राजा राम मोहन राय ने इस आर्डिनेन्स का प्रबल विरोध किया और उसे रद्द करवाने का हर सम्भव किया इसके पश्चात् उन्होंने ज्यूरी एक्ट एक आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। डॉ० आर.सी. मजूमदार के शब्दों में "राजा राम मोहन राय" पहले भारतीय थे जिन्होंने अपने देशवासियों की कठिनाई तथा शिकायतों को ब्रिटिश सरकार के सम्मुख प्रस्तुत किया और भारतीयों को संगठित होकर राजनीतिक आन्दोलन चलाने का मार्ग दिखलाया उन्हें आधुनिक आन्दोलन का अग्रदूत होने का भी श्रेय दिया जा सकता है।"

इसी प्रकार राजा राममोहन राय के बाद स्वामी दयानन्द सरस्वती एक महान सुधारक हुए जिन्होंने १८७५ ईस्वी में बम्बई में 'आर्य समाज' की नींव रखी। आर्य समाज एक साथ ही धार्मिक और राष्ट्रीय नवजागरण का आन्दोलन था इसने भारत और हिन्दू जाति को नवजीवन प्रदान किया। स्वामी दयानन्द ने न केवल हिन्दू धर्म तथा समाज मे व्याप्त बुराईयों का विरोध किया अपितु अपने देशवासियों में राष्ट्रीय चेतना का संचार भी किया।1 उन्होंने ईसाई धर्म कि कमियों पर प्रकाश डाला और हिन्दू धर्म के महत्व का बखान कर भारतीयों का ध्यान अपनी सभ्यता व संस्कृति की ओर आकर्षित किया। उन्होंने वैदिक धर्म की श्रेष्ठता को फिर से स्थापित किया और यह बताया कि हमारी संस्कृति विश्व की प्राचीन एवं महत्त्वपूर्ण संस्कृति है। उनका मानना है कि वेद ज्ञान के भण्डार है और संसार मे सच्चा हिन्दू धर्म है, जिसके बल पर भारत विश्व में अपनी प्रतिष्ठा फिर से स्थापित कर गुरु बन सकता है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' में निर्भीकतापूर्वक लिखा है कि विदेशी राज्य चाहे वह कितना ही अच्छा क्यों न हो, स्वदेशी राज्य की तुलना मे कभी भी अच्छा नहीं हो सकता।[23] वहीं एच. बी. शारदा मानते हैं कि "राजनीतिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति स्वामी दयानन्द का मुख्य उद्देश्य था। वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने 'स्वराज' शब्द का प्रयोग किया और अपने देशवासियों को विदेशी माल के प्रयोग के स्थान पर स्वदेशी माल स्वदेशी माल के प्रयोग की प्रेरणा दी। उन्होंने सबसे पहले हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा स्वीकार किया।" श्रीमती एनी बेसेन्ट इन्हीं संदर्भों में कहती हैं "स्वामी दयानन्द सरस्वती पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने सबसे पहले यह नारा लगाया था, कि भारत भारतीयों के लिए है।" थियोसोफिकल सोसाइटी की नेता श्रीमती एनी बेसेन्ट ने भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। श्रीमती एनी बेसेन्ट एक विदेशी महिला थीं, जब उसके मुँह से भारतीयों ने हिन्दू धर्म की प्रशंसा सुनी तो वे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। जब उन्हें अपनी संस्कृति की श्रेष्ठता का ज्ञान हुआ तो उन्होंने अंग्रेजों के विरुद्ध स्वाधीनता की प्राप्ति हेतु आन्दोलन आरम्भ कर दिया। वहीं दूसरी ओर स्वामी विवेकानन्द ने यूरोप और अमेरिका में भारतीय संस्कृति का प्रचार किया। उन्होंने अंग्रेजों को यह बता दिया कि भारतीय संस्कृति पश्चिमी संस्कृति से महान है और वे बहुत कुछ भारतीय संस्कृति से सीख सकते हैं। इस प्रकार उन्होंने भारत में सांस्कृतिक चेतना जागृत की तथा यहाँ के लोगों को सांस्कृतिक विजय प्राप्त करने की प्रेरणा दी। इस उद्देश्य की

---

[23] संस्कृत परिचायिका, पृष्ठ ५९

प्राप्ति के लिए भारत का स्वतन्त्र होना आवश्यक है। इस प्रकार उन्होंने भारतीयों की राजनीतिक स्वाधीनता का समर्थन किया जिससे राष्ट्रीय भावनाओं को असाधारण बल मिला। भगिनी निवेदिता के अनुसार स्वामी विवेकानन्द भारत का नाम लेकर जीते थे। वे मातृभूमि के अनन्य भक्त थे और उन्होंने भारतीय युवकों को उसकी पूजा करना सिखाया। अंग्रेजों की इस जाति भेदभाव की नीति का भारतीयों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। अब उनके हृदय में ब्रिटिश शासन के प्रति विद्रोह की ज्वाला भड़क उठी। इस तथ्य से राष्ट्रीयता की भावना का तीव्र गति से संचार हुआ। गैरेट ने सही लिखा है, "भारतीय राष्ट्रीयता की बढ़ोत्तरी में उपरोक्त कटुता की भावना एक बहुत बड़ा कारण थी।" यद्यपि राष्ट्रीय भावना को उग्र एवं परिपक्व होने में कई अन्य कारण भी विद्यमान रहे हैं परन्तु उन सभी का क्रमशः विस्तृत वर्णन प्रस्तुत पत्र की सीमा को ध्यान में रखते हुए नहीं दिया जा सकता।

निष्कर्ष –

सारांश यह है कि १६वीं शताब्दी के आन्दोलनों ने भारतीय जनता में राष्ट्रीय जागृति में जहां एक ओर अभिवृद्धि की वहीं दूसरी ओर विश्व को भारतीयता के प्रति श्रद्धावान बनाने का प्रयास किया। उन्होंने ऐसा वातावरण तैयार किया जिसके कारण भारत स्वतन्त्रता के लक्ष्य को प्राप्त कर सका। ए॰ आर॰ देसाई के अनुसार ये आन्दोलन कम अधिक मात्रा मे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और सामाजिक समानता के लिए संन्घर्ष थे और उनका चरम लक्ष्य राष्ट्रवाद था। वस्तुतः राष्ट्रवाद के जन्म के लिए कारणों का विष्लेशण करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत में इसका जन्म ब्रिटिश सरकार की नीतियों के परिणामस्वरूप हुआ परन्तु अधिकांश राष्ट्रीय नेताओं का मत था कि भारत की आर्थिक दुर्दशा का मूल कारण भारत में अंग्रेजी शासन है। भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के दो विरोधी दृष्टिकोण सामने आते हैं– विकासवादी और प्रतिक्रियावादी। लेकिन इन दोनों ही स्वरूपों ने राष्ट्रवाद के जन्म में सहायता प्रदान की। जैसा कि उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है ब्रिटिश शासन में ही भारत में राजनीतिक एकता स्थापित हुई, पाश्चात्य शिक्षा का प्रसार हुआ और यातायात के साधनों का विकास हुआ। इनसे यदि एक ओर ब्रिटिश शासन को लाभ हुआ तो दूसरी ओर अप्रत्यक्ष रूप से अंग्रेज़ी अनीति के कारण भारतीय उप महाद्वीप में राष्ट्रवाद के विकास में भी योगदान मिला।

सन्दर्भ –

1. भारत का सांस्कृतिक इतिहास
2. प्राचीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास
3. आधुनिक भारत का सांस्कृतिक इतिहास
4. भारत में राष्ट्रवादी विचारधारा को आगे बढ़ाने में आर्य समाज का महत्त्वपूर्ण योगदान
5. 'भारतीय स्वाधीनता संग्राम : राजनीतिक चेतना का विकास'

तमसो मा ज्योतिर्गमय:
तमसो मा ज्योतिर्गमय:
तमसो मा ज्योतिर्गमय:
तमसो मा ज्योतिर्गमय:
पंजाब विश्वविद्यालय
तेरी शान-ओ-शौकत सदा रहे
मन में तेरा आदर मान
और मोहब्बत सदा रहे
पंजाब विश्वविद्यालय
तेरी शान-ओ-शौकत सदा रहे
तू है अपना भविष्य विधाता
पंख बिना परवाज़ सिखाता
जीवन पुस्तक रोज़ पढ़ा कर
सही गलत की समझ बढ़ाता
जीवन पुस्तक रोज़ पढ़ा कर
सही गलत की समझ बढ़ाता
तेरी जय का शंख बजायें
रौशन तारे बन जायें
वखरी तेरी शोहरत
तेरी शोहरत सदा सदा रहे
पंजाब विश्वविद्यालय
तेरी शान-ओ-शौकत सदा रहे
पंजाब विश्वविद्यालय
तेरी शान-ओ-शौकत सदा रहे
तमसो मा ज्योतिर्गमय:
तमसो मा ज्योतिर्गमय:

श्री जतिंदर मौदगिल, प्रबंधक, पंजाब विश्वविद्यालय प्रेस द्वारा मुद्रित
एवं
प्रो॰ बैजनाथ प्रसाद, अध्यक्ष, हिन्दी–विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ द्वारा प्रकाशित